GENERAL EDUCATION

(For the Second & Third year of Three years' Degree Course)

Strictly in accordance with the syllabus prescribed by the University of Rajasthan

By

.. P. Vaish, M. A. *(Hist. & Eng.)*
Principal
Agrawal College, JAIPUR.

R.P. Srivastava, M. A.
Head of the Deptt of Economics
Agrawal College, JAIPUR.

B.B. Gupta, M.Sc. (*Zoology & Botany*)
Ex-Head of the Deptt. of Zoology
Maharaja's College, JAIPUR.

K.M. Mathur, M.Sc., Ph. D.
Deptt. of General Education.
Rajasthan University,
JAIPUR.

PRAKASH PUBLISHERS
ALWAR-JAIPUR

भूमिका

विशिष्टीकृत शिक्षा के इस युग में यदि मानव जीवन सामान्य शिक्षा
हो जाये तो वह उस साधारण ज्ञान से जो इस युग के लिये बहुत आवश्य
वंचित ही रह जायेगा। सामान्य शिक्षा आज के मानव जीवन के उसके
रूपों—पुरातन, मध्ययुगीन एवं वर्तमान का एक सामान्य चित्रण है, जिसमें
जिक, राजनैतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक और विशुद्ध वैज्ञानिक स्वरूपों को तुलि
किया गया है। समाज के इन स्वरूपों का विवेचन इस पुस्तक का आधार वि
जिसमें विद्यार्थीवर्ग 'कुछ का सब कुछ' और 'सब का कुछ कुछ' ज्ञान प्राप्त
सामान्य शिक्षा के पाठन के मूल उद्देश्यों की पूर्ति कर लाभान्वित हो सकेगा।

पुस्तक में दोनों सामाजिक एवं वैज्ञानिक पक्षों से विभिन्न स्वरू
उद्गम, विकास तथा पराभव की समीक्षा तैयार करके प्राचीन के प्रति सम्मा
वर्तमान के प्रति जागरूकता जैसा दृष्टिकोण रखा गया है। एक दूसरा दृष्टि
जो विशेष रूप से ध्यान मे रखा गया है वह है कि तीनों कला वाणिज्य
विज्ञान के विभागों के विद्यार्थियों के लिए पुस्तक को समस्त रूप से रुचिकर ब
विज्ञान का विद्यार्थी जो सामाजिक ज्ञान को नीरस समझता है, वह सामाजि
के भाग को समाज की शृंखलाबद्ध कहानी के रूप में ग्रहण करेगा।
विद्यार्थी जिन्हें वैज्ञानिक विषय अरुचिकर लगते हैं, विज्ञान भाग को दैनिक
के रुचिकर एवं सरस उदाहरणों से भरा पायेगे। वाणिज्य के विद्यार्थी भी
सामाजिक एवं विज्ञान—विभागों से अपने सामान्य ज्ञान मे रोचक वृद्धि प्राप्त क

विषय को रोचक और सरस बनाने के लिए सरल तथा सुरुचिपूर्ण भा
प्रयोग तथा विद्वानों की सूक्तियां और उद्धरण द्वारा विषय की पुष्टि का भी
रखा गया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रामाणिक विद्वानों की विचारधाराये
वेष्टित कर पाठ्यसामग्री में विशेषता लाई गई है ताकि विद्यार्थी वर्ग विभिन्न
धाराओं से भी अवगत हो सके।

विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम पर आधारित प्रत्येक अध्याय को समझ
प्रयत्न किया गया है और अन्त मे नये प्रकार के प्रश्न भी दिये गये हैं
विद्यार्थीवर्ग विषय से पूर्ण परिचय प्राप्त कर सकें।

हम उन सभी विद्वानो के आभारी हैं, जिनके बहुमूल्य विचारों की
सहायता ली है। साथ ही हम उन विद्वान् अध्यापकों के भी चिर ऋणी रहे
वे अपने मूल्यवान् सुझावों से हमें कृतार्थ करेंगे।

339
विविध SYLLABUS

Natural Sciences :—

Role of Science and Technology in the modern world.

(a) The evolution of Science :

(i) Ancient Science the parallel growth of practical arts and theoretical speculation-illustrated by the evolution of ideas about elements, the universe and spontenaous generation of life ;

(ii) Newtonian synthesis ;

(iii) Darwin and the ideas of change.

(iv) Modern synthesis-illustrated by the study of the atoms and the theory of the relativity.

(b) The method of science : Objective study of facts and formation of hypothesis and theory and their verification as illustrated by a few case histories ; changing patterns and concepts of science ; The Scienctific outlook.

(c) Science and Society :—

(i) Constructive and destructive applications of Science.

(ii) Energy and its applications-idea of matter and energy; its different forms, convertible into each other; Sources of energy-from fire to atomic energy.

(iii) Fight against diseases.

(iv) Science and Culture.

(v) The Social responsibility of Science.

Social Sciences :—

Cultural Heritage of India.

(a) Cultural synthesis in ancient India--Prevedic Aryan and Budhist influence; Fundamental teachings of the principle religions of India and their contribution to our common heritage.

(b) Cultural sysnthesis during the medieval period, Impact of Islam on Indian Society ; Bhakti and Sufi Movements.

(c) Cultural Integration in Modern India :

(i) *The impact of the West.*

(ii) *The study of Indian renaissance as a fusion of our traditional values and ideas of indutrialised West.*

(d) *The Freedom Struggle :—*

(i) *The role of the Freedom Movement unifying the country and its people.*

(ii) *Various political trends in the Nationalist Movements; Impact of the National Movements, Socio-Economic life in the country.*

Contemporary Problems :

(a) The Challenge of Economic regeneration-India's needs and Resources ; need for planning in under-developed countries like-ours ; Problems of planning in economic development of India, especially that of agriculture and industry. Fine 4

(b) Problems of emotional integration and national unity—A study of the divise and harmonising forces in contemporary Indian society.

(c) Salient features of Indian Art, Achitecture, Sculupture and Painting. Music and literature

अनुक्रमणिका

प्रथम भाग

सामान्य विज्ञान

(NATURAL SCIENCE)

अध्याय पृष्ठ

१. विज्ञान का विकास

तत्व सम्बन्धी विचारों का विकास—विश्व—स्वयं जनन
न्यूटन की विचार धारा की अन्तिम स्थिति—
डार्विन तथा परिवर्तन के प्रति विचार—
आधुनिक विचार धारा—परमाणु की रचना—अपेक्षावाद सिद्धान्त ।

२. वैज्ञानिक पद्धति

अनुरूपता पर आधारित तर्क—निगामी पद्धति—उद्गामी पद्धति—नि
तथा प्रयोग—तथ्यों का एकत्रीकरण और उनका वर्गीकरण—उद्गामी
और उपकल्पना का निर्माण—निगामी क्रिया—जाँच करना—विज्ञ
बदलती हुई धारायें—वैज्ञानिक दृष्टिकोण ।

३. विज्ञान एवं समाज

विज्ञान के रचनात्मक एवं विध्वंसात्मक उपयोग—रचनात्मक प्रयोग—
मिक आवश्यकतायें—विज्ञान एवं भोजन—विज्ञान एवं आश्रय—विज्ञ
स्वास्थ्य—विज्ञान एवं मनोरंजन—अन्य क्षेत्रों में विज्ञान के रच
प्रयोग—दूरी पर विजय—श्रम पर विजय—विज्ञान के विध्वंसात्मक
शक्ति एवं उसकी उपयुक्ततायें—पदार्थ एवं शक्ति के प्रति विचार—त
द्रव पदार्थ—गैस—शक्ति—शक्ति के रूप—यांत्रिक शक्ति—ताप—प्र
विद्युत—चुम्बकीय—रासायनिक—ध्वनि—परमाणु शक्ति—शक्ति के

अध्याय पृष्ठ संख्या

न्तर—ताप से यांत्रिक शक्ति—रासायनिक शक्ति से शक्ति—रासायनिक शक्ति से विद्युत शक्ति—विद्युत शक्ति से रासायनिक शक्ति—विद्युत शक्ति से ताप और प्रकाश—विद्युत से चुम्बकीय शक्ति—यांत्रिक शक्ति से विद्युत शक्ति—विद्युत शक्ति से ध्वनि शक्ति—ध्वनि शक्ति से विद्युत शक्ति—शक्ति के स्रोत—पानी—कोयला पैट्रोलियम—वायु—परमाणु।

रोगों के विरुद्ध संघर्ष—रोग फैलने के कारण—रोगों की रोक थाम—उन पर नियंत्रण—और उपचार—संक्रामक रोगों पर नियंत्रण।

विज्ञान एवं सांस्कृतिक—विज्ञान एवं परम्परायें—विज्ञान एव धर्म—विज्ञान एवं मान्यतायें—विज्ञान से संस्कृति को विपदा—वैज्ञानिकों का सामाजिक उत्तरदायित्व।

द्वितीय भाग

सामाजिक-ज्ञान

(SOCIAL SCIENCE)

१. प्राचीन भारत में सांस्कृतिक समन्वय १

भारत के सांस्कृतिक निर्माण मे विभिन्न जातियों का योग—प्रारम्भिक अथवा जंगली जातियाँ—अन्य आधुनिक जातियाँ—प्रागैतिहासिक—सांस्कृतिक—प्राचीन पाषाण युग—नवीन पाषाण युग—धातु युग—सिन्धु घाटी की सभ्यता—वैदिक सभ्यता का प्रभाव—महत्व—बौद्ध धर्म तथा उसका प्रभाव—ब्राह्मण धर्म के दोष—महात्मा बुद्ध—धर्म प्रचार—उपदेश।

अध्याय पृष्ठ संख्या

२. प्रमुख भारतीय धर्म तथा इनकी सांस्कृतिक देन २६
धर्म का महत्व—हिन्दू धर्म—लक्ष्य एवं साधन—स्रोत—सिद्धांत—ऐतिहासिक विकास—पुनरुत्थान—समीक्षा—बौद्ध धर्म—शिक्षायें-विकास—उन्नति के कारण—पतन के कारण—जैन धर्म।

३. मध्यकालीन भारत में सांस्कृतिक समन्वय ४५
राजनैतिक जीवन—सामाजिक जीवन—धार्मिक जीवन—भक्ति आन्दोलन—सूफी मत—विशेषतायें।

४. भारत में पाश्चात्य प्रभाव ५८
राजनैतिक प्रभाव—आर्थिक प्रभाव—सांस्कृतिक प्रभाव—धार्मिक और दार्शनिक विचारों में परिवर्तन।

५. भारत में पुनर्जागरण ७३
प्राचीन आध्यात्मिक तथा अर्वाचीन व्यवसायिक भावना का समन्वय-धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आन्दोलन—ब्रह्म समाज—प्रार्थना समाज—आर्य समाज—थियोसोफिकल समाज—रामकृष्ण मिशन—मुस्लिम सुधार आन्दोलन—अलीगढ़ आन्दोलन—अहमदिया आन्दोलन—समाज सुधार आन्दोलन—हिन्दू समाज—स्त्रियों की समस्यायें—महिला सुधार—आधुनिक शिक्षा प्रणाली व संगठन—विश्वविद्यालय कमीशन—औद्योगिक पश्चिम के विचार।

६. स्वातंत्र्य संघर्ष ६३
राष्ट्र और भारतीय जनता के एकीकरण में स्वातंत्र्य आन्दोलन का योग विभिन्नतायें एवं विविधतायें—राष्ट्रीय एकता के प्रयत्न—कांग्रेस—महात्मा गांधी का कांग्रेस में स्थान—राजनैतिक मंच और एकता—अन्य नेतृत्व—स्वतन्त्रता आन्दोलन और एकता।

७. राष्ट्रीय आन्दोलन में विभिन्न राजनैतिक प्रवृत्तियाँ और आन्दोलन का देश के सामाजिक और आर्थिक जीवन पर प्रभाव ११६
स्वातन्त्र्य आन्दोलन—प्रथम—द्वितीय—तृतीय काल—उग्रवाद-क्रान्तिकारी राष्ट्रवाद—स्वराज्य दल—राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभाव—सामाजिक क्षेत्र—आर्थिक क्षेत्र एवं राजनैतिक क्षेत्र में प्रभाव।

अध्याय पृष्ठ

८. आर्थिक पुनः निर्माण—एक चुनौती
आर्थिक स्वातंत्र्य—पिछड़े राष्ट्र एवं समस्यायें—अर्द्ध विकसित रा
आर्थिक प्रगति के साधन–विकास के पथ पर–अर्ध विकसित राष्ट्र एवं नि
हमारा देश—हमारी आवश्यकतायें—पिछड़े राष्ट्र - समाधान—आ
आयोजन—भारत के साधन—प्रकार—प्राकृतिक—मानवीय—वित्त
भारतीय कृषि—समस्यायें—उद्योग और समस्यायें।

९. भावनात्मक एकता एवं राष्ट्रीय एक्य की समस्या
एक्य—एक्य का मूलाधार—एक्य की समस्या और उनके विभिन्न प्रति
एक्य के प्रयास—वैज्ञानिक—शिक्षा सम्बन्धी—सामाजिक एवं आ
संस्थायें और समकालीन संस्थाओं द्वारा किये गये प्रयत्न—समकालीन स
के संदर्भ में राष्ट्रीय एक्य।

१०. भारतीय कलायें–वास्तु, मूर्ति, चित्र कला की प्रमुख विशेषतायें
साहित्य कला—भारतीय भाषायें–इतिहास–हिन्दी–तामिल—तैलगु, क
मलयालम आदि—अन्य कलायें—ललित कलायें— प्राचीन—मध्य,
आधुनिक काल में कलाओं की विशेषतायें—कुछ अन्य विशेषतायें।

प्रथम भाग

सामान्य विज्ञान

(Natural Sciences)

अध्याय १

विज्ञान का विकास

(Evolution of Sciences)

प्राचीन विज्ञान—तत्व, विश्व एवम् स्वयंजनन की व्याख्या युक्त प्रयोगिक कलाएं तथा सिद्धान्तिक कल्पनाओं की समानान्तर वृद्धि।

अब से कुछ लाख वर्ष पूर्व मनुष्य का जीवन पशु जैसा था। भाग्यवश उसे अग्नि उत्पन्न करना मालूम होगया। लकड़ियों को परस्पर जोर से रगड़ कर वह अग्नि पैदा कर लेता था। धीरे-धीरे उसने लकड़ी के नुकीले और चपटे हथियार बनाना, मांस को भूनना और खाल अथवा पत्तियों से तन को ढकना सीख लिया। इसमे हजारो वर्ष लग गए, किन्तु इस प्रकार उसने सभ्यता की जड जमा दी। मानव सभ्यता के विकास के इतिहास मे अग्नि पर विजय प्राप्ति का एक विशिष्ट एवम् महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उसको अपनी आवश्यकताओं का अनुभव होने लगा। लगभग सवालाख वर्ष हुए जब मनुष्य ने इस दशा से कुछ उन्नति करना आरम्भ किया। उस समय लोग पत्थर के औज़ारो और हथियारो से काम लेते थे—हथोड़े, तीर, बरछी, चाकू आदि। इस प्रकार एक लाख वर्ष बीत गए। तत्पश्चात् हड्डी की वस्तुए बनाई और धीरे-धीरे बरमा, आरी, बरछी, भाले आदि बनाए। हाथीदात तथा सीग की बनी वस्तुए अब से लगभग सोलह हजार वर्ष की बनी मिलती हैं। यह अपना जीवन गुफाओ मे रह कर व्यतीत करते थे, और अपनी गुफाओ की दीवारों पर भांति-भांति के चित्र भी बनाने लगे थे—यह चित्र प्राय बारहसिंहों, हाथियों, घोड़ो, भैंसो, सूअरो और रीछो आदि के हैं। कही कही इन्ही जानवरो की पत्थर की मूर्तियां भी मिलती हैं।

अब से सात हजार वर्ष पूर्व पशुओ को पालन और उनसे लाभ उठाने का ज्ञान भी उन्हे होने लगा था, और गाय, बैल, बकरी, भेड घोड़े, कुत्ते आदि पाले जाने लगे। वह खेती भी करने लगे और मिट्टी की ईंटे भी बनाने लगे। पत्तियो और घासों से बुन कर डालियां बनाना और सन बट कर रस्सी बनाना भी उन्हे आ गया था। अपने रहने के लिए झोंपड़ी तथा छप्पर बनाना भी सीख लिया, और पेड़ों के तनो को खोखला करके नावें भी बनाने लगे। इस सब का प्रभाव यह हुआ कि मनुष्य के कुछ समूह खानाबदोशी का जीवन छोड़ कर स्थान विशेष के निवासी बन गए और खेती करने लगे। उनको सम्पत्ति का ज्ञान और उससे लाभ उठाने की विधि मालूम हो गई जिसने व्यापार और समाज के संगठन पर बहुत गहरा प्रभाव

पड़ा—गांवों और बस्तियों का प्रारम्भ हो गया। यह अनुमान किया जाता है कि पाषाण-युग में भी मनुष्य भाषा का उपयोग करते थे और उन्हें नाचने तथा गाने में भी रुचि थी। जादू, भाड़फूंकी, टोटकों और टोनों में वह बड़ा विश्वास रखते थे, और भूत-प्रेत, मृत-आत्माओं, देवी-देवताओं को तो वह बहुत मानते थे। उनमें विवाह-प्रथा भी थी और एक पति अथवा एक पत्नि रखने का नियम सा था। इस काल के मनुष्य ही आगे आने वाले मनुष्यों के पूर्वज थे।

इस प्रकार पाषाण युग के समाप्त होने तक मनुष्य ने सभ्यता और उन्नति के अनेक साधन एकत्रित कर लिए थे परन्तु उसमें तीन चीज़ों की भारी कमी थी; उनको धातुओं का पता नहीं था, उन्हें लिखना नहीं आता था, और न राज संगठन।

सबसे पहिली धातु जो मनुष्य को मिली वह सम्भवतः सोना थी, परन्तु उसने सर्व प्रथम तांबे का ही उपयोग करना सीखा। अब से लगभग आठ हज़ार वर्ष पूर्व तांबे का उपयोग आरम्भ हो गया था। स्विटज़रलैण्ड, मैसोपोटामिया, मिश्र, भारत तथा अमरीका में तांबे के यन्त्रों के अवशेष मिले हैं किन्तु इससे यह निष्कर्ष न निकालना चाहिए कि पाषाण-युग के पश्चात् ताम्रयुग का आगमन हुआ। इसके होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता—उत्तरी भारत में साधारण अस्त्रों व यन्त्रों में बड़ा के भिन्न-भिन्न भागों में समानता नहीं थी, कहीं तांबे का उपयोग हुआ तो कहीं लोहे का, परन्तु दक्षिणी-भारत में पाषाण-युग के ठीक बाद में ही लोहा काम में आने लगा जैसा कि उत्तरी रूस, पोलीनिशिया, फिनलैंड, मध्य-अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, जापान तथा उत्तरी अमरीका में भी हुआ। मनुष्य को शीघ्र ही कांसे का भी पता लग गया, किन्तु वह यथेष्ट मात्रा में नहीं था और धातुओं को मिला कर कांसा बनाने की विधि भी वह नहीं जानता था। इसी कारण छः हज़ार वर्ष से लोहे का ही उपयोग हो रहा है।

लेखन कला का आरम्भ भी कोई छः या सात हज़ार वर्ष से हुआ—पहिले सुमेरिया, मिश्र, और भूमध्य सागर के निकट लोगों ने चित्रों अथवा रेखाओं द्वारा अपने विचार अंकित किए। अक्षरों का आरम्भ लगभग पांच हज़ार वर्ष हुए मिश्र में हुआ—यह लोग चौबीस अक्षरों से काम लेते थे—वहां से यवना क्रीट से उत्तरी अफरीका के निवासी अपने व्यापार के साथ २ उन्हें देश-देशान्तरों में ले गए। इस प्रकार प्राचीनतम मनुष्य जैसे २ अपने पशु-पूर्वज की श्रेणी से पृथक हुआ था वह हरियाले मैदान, गोचर भूमि तथा सुगम खाद्य सामिग्री को ढूंढता हुआ अनेक देशों में फैल गया। जहां कहीं भी उसे भोजन तथा निवास मिल सका वहीं उसने धीरे २ अपने पैर जमा लिए और वहीं सभ्य जीवन का प्रारम्भ हुआ। यही कारण है कि सभ्यता के प्रथम केन्द्र प्रायः नदियों के समीप वाले स्थान ही थे।

प्राचीन काल में सबसे पहिले तीन समकालीन सभ्यताएं थी जो ईसा ४००० वर्ष से ३४०० वर्ष पूर्व में हुई जान पड़ती हैं। इन तीनों सभ्यताओं की प्रकृति भी एक सी ही जान पड़ती है। पहिली मिश्र की नील नदी की घाटी की, दूसरी सुमेरिया निवासियों की जिन्होंने अपनी संस्कृति मैसोपोटामिया में बैबीलोनिया वालों को दी, और तीसरी सिन्धु नदी की घाटी की जिसके प्रति हमें बहुत कम ज्ञान है। इन सभ्यताओं की प्रारम्भिक शताब्दियां बड़ी महान थी और इनकी कला और विद्या ईसा से २४०० वर्ष पूर्व उच्चतम शिखर पर पहुँच गई थी। मिश्र का सबसे पुराना सूच्याग्र-स्तूप (Pyramid) जिस समय बनना आरम्भ हुआ था उस समय सिन्धु नदी की तलहटी में मोहनजोदड़ो उन्नति की चोटी पर पहुंच चुका था। सम्भव है कि सिन्धु नदी के तटवर्ती नगर उस समय मैसोपोटामिया आदि देशों से कुछ व्यापार भी करते हों। मैकडॉनल्ड (Macdonald) की राय में सिन्धु तट वालों ने अपनी सभ्यता सुमेरिया से ली। इसके विपरीत हॉल (Hall) की सम्मति में सुमेरिया वालों ने ही सभ्यता सिन्धु तट वालों से सीखी। चाइल्ड (Child) का मत है कि सिन्धु नदी के तट की सभ्यता सुमेरिया की सभ्यता से प्राचीन है। मोहनजोदड़ो में आज से ५००० वर्ष पूर्व के पक्की ईंटों के बने हुए छोटे तथा बड़े मकान मिले हैं। नगर में बड़े २ कमरे, पक्के और बिटुमन से पुते हुए तालाब, नहाने के लिए गर्म हम्माम आदि बने हुए है। पक्की सड़कें और पानी के निकास के लिए नालियां है। तक्षशिला इस देश का महान प्राचीन विद्याकेन्द्र था जिसका यूनानी इतिहास में कई जगह उल्लेख आता है। यहां कई बौद्ध-स्तूप भी हैं। लोग यहां बढ़ाई का काम करते थे, और खेलन, सिक्के, पत्थर बर्तन, मूर्तियां, चित्र, खिलौने, तथा रंगीन वस्तुएं बनाते थे।

दजला और फरात नदियों के दोआबा तथा तलहटियों में प्राचीनतम सभ्यताओं ने बहुत उन्नति की। इन दोनों नदियों के मुहाने की आसपास की भूमि दोआब के अन्य भागों से अधिक उपजाऊ है—यहीं पर सुमेरिया नामक राज्य था—सुमेरिया वालों में ६००० वर्ष पूर्व कृषि प्रचलित थी। मिट्टी के बर्तन बनाना और पकाना इन्हें मालूम था। इन्होंने ही पहिले पहल साम्राज्य की रचना की, नालियों और नहरों से सिंचाई करने की विधि निकाली, सोने और चांदी से अन्य वस्तुओं का मूल्यांकन करने का आविष्कार किया, लेखन कला की रचना की और लिखा पढ़ी करके व्यापार करने की विधि चलाई, पुस्तकालयों और पाठशालाओं की स्थापना की; आभूषण तथा सौन्दर्य-वर्धक वस्तुएं बनाई; मन्दिर एवम् महलों का बनाना भी आरम्भ किया। इन स्मारकों में सर्वश्रेष्ठ गीज़े का महान सूच्याग्र स्तूप (The Great Pyramid) है, जो ईसा से लगभग ३८०० वर्ष पूर्व राजा की कब्र (as a King's tomb) बनाया गया था। यह तेरह एकड़ भूमि पर बना है, इसकी

ऊंचाई ४८१ फीट, लम्बाई ६५५ फीट और चौड़ाई भी उतनी ही है। इस में पत्थर लगे हैं उन प्रत्येक पत्थर का भार २½ टन और कुछ का ५० टन तक है। मिश्र की यन्त्र-निर्माण विद्या यूनान तथा रोम के अपेक्षाकृत बहुत बढ़ी चढ़ी थी और वैसी यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी तक भी विकसित नहीं हुई। गीजे के निकटवर्ती मैम्फिस नगर में अच्छे २ कारीगर थे। लकड़ी और सुनारी का काम इतना सुन्दर होता था कि जिसकी तुलना आज भी करना कठिन है। चतुर कुम्हार, शिल्पकार, शीशे, तांबे तथा कासे की चीजें बनाने वाले, बारीक कपड़ा बुनने वाले, रंगरेज, सगतराश, चित्रकार, कागज बनाने वाले सभी वहां रहते थे।

मिश्र के लोग कृषि कार्य भी करते थे। वह अनाज मछली और मांस खाते थे—खाद्य विविध ढंग से पकाए जाते थे—अस्सी प्रकार से पकाए हुए साग का और चौबीस प्रकार के पेय पदार्थों का उल्लेख पाया जाता है। गणित, ज्योतिष, चिकित्सा शास्त्र, प्रजनन-विज्ञान, शल्य-शास्त्र का उन्हें ज्ञान था। सन्तान-निरोध की औषधियां उन्हें ईसा से १८०० वर्ष पूर्व ही मालूम थीं।

ईसा से पूर्व छटी शताब्दी में फारस ने मिश्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर दिया था, और ईसा से ३३२ वर्ष पूर्व में यूनान के एलैक्जेन्डर ने सदा के लिए मिश्र की स्वाधीनता का अन्त कर दिया। ईसा से पूर्व ४००० वर्ष से ७०० वर्ष तक के समय में मिश्र तथा बेबीलोनिया वाले ही सर्वाधिक प्रगतिशील मनुष्य थे। भारत और चीन में उस समय की प्रगति के बारे में बहुत कम ज्ञान प्राप्त है कि वह कितने आगे बढ़ चुके थे, परन्तु ईसा से १००० वर्ष पूर्व यहां पृथक २ सभ्यताएं थीं और ईसा से ६०० वर्ष पूर्व तक और कई सभ्यताओं के केन्द्रों ने अपनी संस्कृति अधिकतर मिश्र और बेबीलोनिया वालों से ही प्राप्त की। संस्कृति की दूसरी लहर यूनान में और उसके निकटवर्ती देशों में उठी प्रतीत होती है। ईसा से छ शताब्दी पूर्व आयोनिया के रहने वालों ने जो एशिया-माइनर के किनारे २ रहते थे, अपने विचार इस बात की खोज में लगाए कि इस संसार की उत्पत्ति कैसे हुई तथा उसकी प्रकृति कैसी है। यूनान वालों की इन बातों में कई शताब्दी तक रुचि रही। मिश्र और बेबीलोनिया वालों ने भौतिक संसार के केवल उन्हीं तथ्यों का अध्ययन किया जो तुरन्त ही प्रयोगिक उपयोग के थे अर्थात् यूनान वालों ने समस्त विश्व का मानसिक प्रतिरूप बनाने का प्रयत्न किया। संसार का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने हेतु आवश्यक निरीक्षण करना, उन तथ्यों पर प्रयोग कर उनका ठीक ठीक विवरण रखना यूनानियों की रुचि से परे था। प्रयोगिक उपयोग से उन्हें घृणा थी और पदार्थों का ज्ञान केवल इस लिए करना चाहते थे कि वह संसार के क्रम, व्यवस्था एवम् अनवरत संगति (harmony and order) से परिचित होने का एक मात्र साधन था। वह कौतूहल से भरे थे और उनमें चमत्कार सम्बन्धी बड़ी दक्षता थी, परन्तु उनको वस्तुओं का प्रयोगिक

(८)

ा से माप तथा भार लेने और उनको नीरस सामान्य व्याख्या करने के अतिरिक्त द्धातमक अथवा भाववाचक परामर्श करना, अधिक रुचिकर था। अस्त्रों, पात्रो या यात्रिक उपायों से साधारण प्रयोग करना वह तुच्छ व नीच समझते थे। सत्य खोज के लिए तो वह व्याकुल थे परन्तु उन्हे वैज्ञानिक सामर्थ्य एवम् साधन उपलब्ध नहीं थे। अतएव वह तर्क वितर्क द्वारा गहरे विचारो मे लीन हो। र सत्य क पहुंचने की चेष्टा करने लगे। इस प्रकार इस समय के मनुष्य दार्शनिक म परिणत हो गए और इसी कारण इस समय को "दार्शनिक युग" कहते हैं। कपिल, णाद, प्लेटो, अरस्तु, टॉल्मी आदि महापुरुष इस युग के महान प्रतिनिधि हैं। जो छ भी वैज्ञानिक अथवा आधिभौतिक सत्य मनुष्य इस युग मे उपलब्ध कर सका ह सब अपने निरीक्षण तथा दार्शनिक तर्क वितर्कों के बल पर ही, अन्य किसी ज्ञानिक साधन के सहारे नहीं।

तत्व सम्बन्धी विचारों का विकास (Evolution of Ideasa bout Elements)—

इस युग मे जब मनुष्य के दार्शनिक चक्षु सर्व प्रथम सृष्टि के प्रति खुले तो से सृष्टि के द्रव्यों मे भौतिक गुणों की विभिन्नता का अनुभव हुआ। इसके फलस्वरूप उसके समक्ष पांच विभिन्न वस्तुएं अपने महान अस्तित्व का विज्ञापन करने गीं—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश। उसने देखा कि सारी सृष्टि का निर्माण इन्हीं पांच प्रकार की वस्तुओं से हुआ है—अतएव यह पांचों सृष्टि के मूल तत्त्व कहलाए। पृथ्वी ठोस वस्तुओं का मूल तत्त्व समझी गई, जल तरल पदार्थों का, वायु गैसीय वस्तुओं का, अग्नि शक्ति का, और आकाश उस शून्य का जिसमे सारी सृष्टि विस्तृत है। सृष्टि के सारे द्रव्य का अस्तित्व तीन अवस्थाओं में होता है—गैस, द्रव अथवा ठोस; इसके अतिरिक्त उसमे जो कुछ है वह या तो शक्ति के रूप मे है अथवा ईथर के रूप में शून्य में विस्तृत है। कपिल के सांख्य-दर्शन में इन मूल तत्त्वों का वर्णन विस्तार पूर्वक मिलता है। आयोनिया वालों का विचार था कि ससार की उत्पत्ति केवल एक ही पदार्थ से हुई—जल अथवा वायु; परन्तु यूनान के अरस्तु और उसके पहिले के दार्शनिक एम्पीडोकिल्स ने कहा था कि ससार चार तत्त्वोंका बना हुआ है—जल, वायु, अग्नि, और पृथ्वी; और मनुष्य का मांस और रक्त इन्हीं चार तत्वों की बराबर मात्रा से बना हुआ है—हड्डियां आधा भाग अग्नि चौथाई भाग जल और चौथाई भाग पृथ्वी से बनी। यह विचार कि विश्व इन्हीं स्थिर तत्वों मे तोड़ा जा सकता है आधुनिक सिद्धान्त की जड़ था। प्लेटो भी इसी से सहमत था और यह विश्वास रखता था कि यह चारों मूल तत्त्व इस कारण पृथक २ हैं कि उनके परमाणु भिन्न भिन्न रूप के हैं। अरस्तु ने बतलाया कि इन चार मूल तत्वों के साथ साथ चार ही विशेष गुण हैं—ठण्डा, नम, गर्म तथा सूखा—इनमें कोई दो गुण मिल कर तत्व का निर्माण करते हैं, जैसे जल नम व ठण्डा है

वायु नम व गर्म है, पृथ्वी सूखी व ठन्डी है, अग्नि सूखी व गर्म है। परन्तु परमाणुओं के अस्तित्व को नहीं मानता था। वह प्रत्येक वस्तु को द्रव्य (Matter) और रूप (Form) का सम्मिलन समझता था [रूप से उसका अभिप्राय वस्तु के गुण से था और द्रव्य से उस वस्तु का जिसमें वह गुण हों] चीन के दार्शनिक पांच मूल तत्वों पृथ्वी, जल, अग्नि, काष्ठ और धातु—की स्थिति में ही विश्वास करते थे।

भौतिक दृष्टि से भारतीयों का वर्गीकरण सब से बढ़ा चढ़ा था, किन्तु रसायनिक दृष्टि से इन सारी मूल तत्व सम्बन्धी कल्पनाओं का कोई आधार न था। ईसा से कई सौ वर्ष पहले से ही मूल तत्व सम्बन्धी यही धारणाएं ज्ञानियों में प्रचलित थीं, और यद्यपि आज विज्ञान-जगत में यह मूल तत्व केवल ऐतिहासिक महत्व के रह गए हैं, तथापि कवियों और कलाविदों में अब भी उनके प्रति आदर है। अपनी विचार शक्तियों द्वारा हमारे प्राचीन दार्शनिक केवल पंच तत्व तक ही नहीं अणुओं और परमाणुओं तक पहुंच गए थे। जैन व बौद्ध शास्त्रों ने अणु को पदार्थ का सब से छोटा व स्वतन्त्र कण बतलाया है। प्राचीन भारत के दर्शन-शास्त्री कणाद के अनुसार प्रकृति में परमाणु बिना सहयोग के नहीं रह सकते। कणाद कण (Particle) सिद्धान्त के प्रतिपादक होने के कारण कणाद नाम से जाने गए। कणाद का सिद्धान्त (आधुनिक भौतिक-शास्त्र के उस सिद्धान्त से मिलता है जिसमें यह कहा गया है कि हम जैसे जैसे पदार्थ का विभाजन करते हैं एक ऐसी इकाई पर पहुंच जाते हैं, जिसका आगे और विभाजन सम्भव नहीं होता। इसको 'अणु' कहा गया है।) विश्व अणु के संयोग से बना है। कणाद का सिद्धान्त डाल्टन के परमाणु सिद्धान्त से बहुत कुछ मिलता है। कणाद के सिद्धान्त में यह बतलाया है कि पदार्थ अपनी प्रारम्भिक अवस्था में अति सूक्ष्म कणों का बना हुआ है जिन्हें 'परमाणु' कहते हैं। परमाणुओं से मिल कर अणु बनते हैं, और बहुत से अणु मिलकर तत्व का रूप ले लेते हैं। परमाणु ही पदार्थ का सब से सूक्ष्म कण है जो अविभाज्य है।) परमाणु सम्बन्धी खोजें बहुत समय तक होती रहीं और ईसा के पचास वर्ष पूर्व तक जैन शास्त्रज्ञों ने ठोस पदार्थ की रचना में परमाणुओं के उपयुक्त सम्बन्धों का विश्लेषण किया था। भारतवर्ष में परमाणु सिद्धान्त की नींव न्याय तथा वैशेसिका विद्यालयों के दर्शन-शास्त्रियों ने डाली, और यह माना गया है कि इससे भी पूर्व ब्राह्मणों, बौद्ध और जैनियों ने भी इन सिद्धान्तों के बारे में परिकल्पना की थी। यूनानी भी इस विचार धारा से प्रभावित हुए थे और यह सम्भव है कि मिलैटस के डेमोक्रिटस ने भी जब वह फारस में था इस सिद्धान्त के बारे में सुना होगा। डैमोक्रिटसने ईसा से पांच शताब्दी पूर्व यह विचार प्रगट किये थे कि संसार पदार्थ के अति सूक्ष्म कड़े ठोस कणों का बना हुआ है जो

और छोटे कणों में नहीं तोड़े जा सकते। ऐसे टुकड़ों के लिए यूनानी शब्द "atomos" है। डेमोक्रिटस के अनुसार परमाणु एक दूसरे से रूप और आकार मे भिन्न होते हैं—पानी के परमाणु चिकने और गोल हैं जो एक दूसरे पर फिसल जाते है, लोहे के परमाणु कांटे दार और खुरदुरे हैं जो एक दूसरे से चिपक जाते है इत्यादि।

द्रव्य की चार प्रकार की भिन्न भिन्न अवस्थाएं है—ठोस, द्रव, वाष्प तथा अति सूक्ष्म परिवाष्पीय (Ultra Gaseous) विद्युतीय कण, परन्तु यह चारों अवस्थाएं बिल्कुल पृथक पृथक नही है–द्रव्य इनमें से कोई सा भी रूप धारण कर लेता है–जल अपनी गर्मी खोकर ठोस बर्फ बन जाता है और ताप के द्वारा वाष्प रूप मे परिवर्तित होकर उसके कण अदृश्य रूप धारण कर लेते हैं।

किसी वस्तु में एक ही प्रकार का द्रव्य पाया जाता है तो किसी मे द्रव्य के विभिन्न प्रकारो का सयोग। किसी मे एक प्रकार का परिवर्तन होता है तो किसी मे दूसरी प्रकार का। लकडी, कोयला तथा अन्य वस्तुएं जलने से भस्म हो जाती हैं, लोहा खुले में छोड़ देने से मोर्चे में परिवर्तित हो जाता है; दूध रख देने से दही मे परिणत हो जाता है, इत्यादि।

तत्व की सही परिभाषा देने वाले सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में सर्व प्रथम रोबर्ट बॉयल (Robert Boyle) थे जिन्हें रसायन-शास्त्र का जन्मदाता कहा जाता है। इन्होंने ही पहिले पहिल प्राचीन ऋषियों का तिरस्कार किया और कहा कि चार अथवा पांच तत्व उन सब तत्वों का जो हम देखते हैं एक-दसवां भाग भी नहीं बतलाते। इन्होंने ही रासायनिक तत्व, यौगिक तथा मिश्रण की सही परिभाषा दी और बतलाया कि जो वस्तु द्रव्य के दो अथवा अधिक प्रकारो मे पृथक न हो सके और जिसमें एक ही प्रकार का द्रव्य पाया जाता है, वही मूल तत्व (Element) है, और वह पदार्थ जो द्रव्य के दो या दो से अधिक प्रकारों में प्रथक हो सके अथवा जो दो या दो से अधिक प्रकारो से बना हुआ हो वह संयुक्त पदार्थ (Compound) है।

तत्वों और यौगिक पदार्थों का इस प्रकार अन्तर कर बॉयल ने रसायनशास्त्र मे एक नया युग स्थापित कर दिया। रोबर्ट बॉयल के समय से आज तक ससार मे एक सौ एक मूल तत्वों का अस्तित्व सिद्ध हो चुका है। इनमें से कई मूल तत्वों से हमारे प्राचीन रासायनिक भी परिचित थे, लेकिन उन्हें इनका मूल तत्व होना ज्ञात न था।

विश्व (The Universe)—

प्राचीन यूनानी पृथ्वी को बेलनाकार अथवा चपटी समझते थे, परन्तु पांचवीं शताब्दी से वह यह जानने लगे कि यह गोलाकार है और सभी यूनानी लोगों का यह

विश्वास था कि यह गोलाकार पृथ्वी विश्व का केन्द्र है और गतिहीन है। समस्त नक्षत्र पृथ्वी के समानान्तर केन्द्र के एक बड़े गोले के बाह्य तल पर स्थित हैं। यह दिन में एक बार उदय होते हैं और एक ही बार छिपते हैं और इसी कारण यह बड़ा गोला अपनी धुरी पर चौबीस घण्टों में एक पूरा चक्कर लगाता हुआ समझा जाता था और यह मान्यता थी कि इस गोले से परे कुछ नहीं है। प्राचीन काल की मुख्य समस्या यह थी कि पृथ्वी और नक्षत्रों के बीच के पिण्ड किस प्रकार गति करते हैं और यह पिण्ड चन्द्रमा, सूर्य, बुद्ध, शुक्र, मगल, बृहस्पति और शनि माने जाते थे। यह सब भी उदय होते है और छिपते है परन्तु नक्षत्रों के साथ २ नहीं। चन्द्रमा प्रतिदिन लगभग एक घण्टे पीछे और सूर्य चार मिनट पीछे उदय होते है। यूनानियों ने यह निश्चित रूप से कहा कि इन खगोल पिण्डो का मार्ग एक पूर्ण घेरा है (Perfect figure of a Circle)।

ईसा से पांच शताब्दी पूर्व फिलोलौस (Philolaus) ने यह कहा था कि आकाश में दस भौगोलिक पिण्ड है (Heavenly bodies) और विश्व के बीचों-बीच एक केन्द्रिक अग्नि है (Central fire) जिसके चारो ओर समस्त भौगोलिक पिण्ड चक्कर लगाते है।

प्राचीन आयोनिया के दार्शनिक सब इस बात पर एक मत थे कि विश्व एक साधारण पदार्थ से ही बना। मिलेटस के थेल्स (Thales of Miletus) ने इसे 'पानी' कहा, एनैक्सीमैन्डर ने अमर्दिष्ट (Infinite) और एनैक्सीमाइन्स ने 'वायु' का नाम दिया। तत्पश्चात् उन्होंने यह विचार किया कि इस समानान्तर प्रथम मूल पदार्थ की मात्रा पृथक २ टुकड़ोंमें विभाजित हुई जिनमें कुछ अधिक गर्म तो कुछ अधिक ठण्डे और कुछ भारी तो कुछ हल्के थे, और इस भेद के कारण ही गति उत्पन्न हुई जिसके फलस्वरूप पृथ्वी वर्तमान दशा में आई। आज हम यही विचार करते हैं कि विश्व ब्रह्माण्ड की धूल के समानान्तर बादलों के जमने से ही बना।

एककेन्द्रीय अदृश्य गोलो (Concentric invisible spheres) का विचार, जो अरस्तु ने अपनाया था न कि उसकी खोज की थी, सत्रहवीं शताब्दी तक चलता रहा, परन्तु एक दूसरी और उससे अच्छी पद्धति जिसका उसी समय दूसरी शताब्दी से सातवीं शताब्दी तक ज्योतिषियों ने प्रयोग किया, टॉल्मी की पद्धति (Ptolemaic System) थी, जिसके अनुसार प्रत्येक ग्रह एक घेरे के चारों ओर चक्कर लगाता है जिसको परिधिचक्र (Epicycle) का नाम दिया और बतलाया कि इस परिधिचक्र का केन्द्र एक दूसरे घेरे (Deferent Circle) पर चक्कर लगाता है जो पृथ्वी को चारो ओर से घेरे हुए है परन्तु जिसका केन्द्र पृथ्वी के केन्द्र से हटा हुआ है। पृथ्वी गतिहीन है और इसका केन्द्र विश्व का केन्द्र है। इस परिधिचक्र का केन्द्र सर्वदा समानान्तर रूप से डैफरेंट चक्र पर एक सा

नहीं घूमता परन्तु ऐसी विधि से एक अन्य केन्द्र पर घूमता है कि वह एक तीसरे घेरे (Equant Circle) के अर्धव्यास पर रहता है। इसके साथ में समस्त पद्धति पृथ्वी के चारों ओर आकाश की गति द्वारा एक दिन में घूम जाती है। इस पद्धति से ग्रहों की गति का वर्णन यथेष्ट रूप से प्राप्त हो जाता है।

आधुनिक दृष्टि कोण से यह सब बातें ठीक होने से बहुत परे थीं परन्तु कुछ कम अथवा व्याख्या न होने से तो काफी प्रगति दिखलाती थीं।

सूर्य, चन्द्रमा तथा ग्रहों के आकार व दूरी के बारे में यूनानियों के विचार ठीक न थे, परन्तु फिर भी उन्होंने यह तो बतला ही दिया था कि सूर्य पृथ्वी से कई गुना बड़ा है और चन्द्रमा की अपेक्षाकृत बहुत दूर है। इस बात को जानने की विधि एरिस्टारकस (Aristarchus) ने दूढ़ निकाली थी परन्तु प्राचीन ज्योतिष शास्त्रियों की मूल धारणाएं विशेषतः अरस्तू के विचारों पर ही आधारित थीं। अरस्तू ने यह कहा था कि विश्व एक बन्द गोला है। और उसके केन्द्र पर गतिहीन पृथ्वी है जिसके चारों ओर वलिक रूप से और अन्य गोले चक्कर काटते हैं। पृथ्वी के निकट वाले गोले में चन्द्रमा, उससे परे वाले में सूर्य, उसके आगे ग्रह और फिर स्थिर नक्षत्र हैं। चन्द्रमा के गोले के भीतर समस्त पदार्थ भौतिक (Terrestrial) हैं अर्थात् वह पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि इन चार तत्वों से बने हुए हैं, और इसी कारण वह सब परिवर्तनशील तथा नाशवान हैं, परन्तु चन्द्रमा के गोले के बाहर स्वर्गीय अन्तरिक्ष (Celestial) भाग है जहां प्रत्येक वस्तु एक ऐसे पांचवे तत्व की बनी हुई है जो अपरिवर्तनशील है, नाशहीन है और अनादि है। इसी कारण चन्द्रमा के बाहरी भाग में जो कुछ भी है उसकी न उत्पत्ति होती है और न नाश। वह पिण्ड जो ऐसा करते हैं, जैसे कि धूमकेतु तथा उल्काएं (Comets and Shooting stars) वह स्वर्गीय भाग में न समझे जा कर केवल ऊपर की वायु में स्थित जाने जाते हैं। यह सब आकाशीय पिण्ड अपरिवर्तित समानान्तर रूप से गोलाकार में भ्रमण करते हैं।

यह भूकेन्द्रस्थवादी (Geocentric) सिद्धान्त सब ही महान् धर्मज्ञान-वेत्ता तथा दार्शनिक केवल उसी प्रकार अपनाते थे जिस प्रकार वह आज न्यूटन की मत को इस कारण मान्यता देते हैं क्योंकि उस समय के विशेषज्ञ उसे मानते थे और उसमें विश्वास रखते थे। विश्वविद्यालयों के अध्यापकों के भी यही विचार थे, और वह अपनी विधि को छोड़ कर फिर से ज्योतिष-शास्त्र का अध्ययन नई प्रकार से प्रयोगिक वैज्ञानिकों द्वारा नहीं करना चाहते थे।

ऐसा होते हुए भी यूनान के फिलोलौस (Philolaus) तथा पाईथेगोरस (Pythagoras) और सामोस (Samos) ने दो हजार वर्ष पूर्व यह कहा था कि पृथ्वी विश्व का केन्द्र नहीं है बल्कि अपनी धुरी पर चौबीस घण्टों में घूम जाती है जिस कारण रात और दिन होते हैं, और साथ २ वह सूर्य के चारों ओर भी भ्रमण

करती है। भारतवर्ष में आर्यभट्ट भी इसी सूर्य्य केन्द्रत्ववादी (Helio-centric) सिद्धान्त से सहमत था। इन्हीं के विचारों से प्रभावित होकर सन् १५४३ ई० में कोपरनिकस ने भूकेन्द्रत्ववादी सिद्धान्त के विपरीत दूसरा सिद्धान्त संसार को दिया. जिसमें उसने कहा कि :

१. विश्व का केन्द्र पृथ्वी नहीं है।

२. सारे ग्रह सूर्य्य की परिक्रमा लगाते हैं और इसी कारण सूर्य्य ही सौर-मण्डल का केन्द्र है।

३. हमें जो सूर्य्य चलता हुआ प्रतीत होता है वह सूर्य्य की गति न हो कर पृथ्वी की गति के कारण ही दीख पड़ता है।

४. पृथ्वी अपनी धुरी पर चौबीस घण्टों मे चक्कर काट लेती है, और घूमती हुई कुछ २ डगमगाती भी है।

विश्व महान् है, अनन्त है, सीमा रहित है–इस भाँति की बातें सभी प्रकार के लोगों में प्रचलित है, परन्तु वैज्ञानिकों के प्रयत्नों ने यह प्रमाणित सिद्ध कर दिया है कि यह विचार ज्ञान पर नहीं वरन् अज्ञान पर आश्रित है।

समस्त आकाशीय पिण्ड सूर्य्य से ही प्रकाश प्राप्त करते हैं और इन पर सूर्य्य का वही प्रभाव पड़ता है जो कि पृथ्वी पर। सूर्य्य और उसके चारों ओर चक्कर लगाने वाले पिण्डों को सौर-मण्डल (Solar System) कहते हैं। इस अखिल ब्रह्माण्ड में विचरने वाले करोड़ो नक्षत्र-मण्डल हैं और उन्हीं में से इस विशाल ब्रह्माण्ड का अत्यन्त लघु भाग एक सौर-मण्डल है। अनन्त ब्रह्माण्ड में हमारे सौर मण्डल के सूर्य्य सरीखे और उससे बड़े गुना असंख्य नक्षत्र तो हैं ही, साथ ही पुच्छल तारे, नीहारिकाओं की दूर तक फैली हुई कुण्डलियाँ तथा बड़े बड़े उल्कापिण्ड भी निरन्तर उसमें घूमा करते हैं।

यह अनुमान लगाया गया है कि व्योम में लगभग १० करोड़ विश्व हैं जिनकी भी दृश्य के दूरदर्शक यन्त्र के द्वारा परीक्षा लगाई जा सकती है। पर मालूम किया गया है कि हमारे विश्व की भाँति वह सब भी मन्द गति से भ्रमण कर रहे हैं, और उनमें भी वही द्रव्य की मात्रा है जो हमारे नक्षत्र-पुञ्ज में। नक्षत्र और नक्षत्र-पुंजों (Galaxies) के बीच में रिक्त स्थान है जिसे व्योम (Space) कहते हैं। व्योम में कुछ नक्षत्र तो इतनी दूरी पर हैं कि हम उनकी दूरी की कल्पना भी नहीं कर सकते। व्योम कितना विस्तृत है, इसकी सीमाएं कहां तक फैली हुई हैं ? इस प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर प्रोफेसर आइन्स्टीन (Einstein) तथा उनके साथियों ने दिया है। इनके अनुसार विश्व परिमित (Finite) है परन्तु बहुत विस्तृत (Boundless) है। इसका रूप अद्भुत है जिसमें आकाश है परन्तु उसका कोई छोर नहीं है। इसकी

कल्पना इस विचार से हो सकती है कि यदि हम ६०० मील प्रति घण्टा उड़ने

वाले वायुयान से विश्व की यात्रा करना चाहें तो पूरी यात्रा करने में कम से कम साढ़े चार करोड़ वर्ष लग जाएंगे। नक्षत्रों की दूरी को नापने के लिये ज्योतिषियों ने प्रकाश किरणों को गज बनाया है। यह किरणें प्रति सैकिंड १८६००० मील की गति से चलती हैं, अर्थात् एक वर्ष में १८६०००×६०×६०×२४×३६५ मील। इस दूरी को एक प्रकाश-वर्ष   का नाम दिया।
इस गणना के अनुसार प्रोक्सिमा सैन्टोरी (Proxima Centauri) जो सूर्य के अतिरिक्त सब नक्षत्रों से पृथ्वी के निकट है ४½ प्रकाश वर्ष की दूरी पर है।

निरीक्षण द्वारा यह मालूम किया गया है कि समस्त विश्व फैलता जा रहा है। भांति भांति के तारे-सम्बन्धी विश्व (Stellar Universes) जैसे कि सर्पिलाकार तारामण्डल (Spiral Galaxy) तथा तारा मण्डलों की निहारिकाएं जो प्रकाशमान पत्थरों की धारा जैसी अथवा रूई या फैन के समान दिखलाई पड़ती हैं एक दूसरे से ऐसी गति से दूर होती चली जा रही हैं जो उनकी बीच की दूरी के समानुपात में है—जितनी दूरी पर कोई विश्व है उतनी ही अधिक दूर जाने की उसकी गति है। इस प्रकार इनके दूर जाने का क्रम ऐसा है कि इनकी सारी दूरी तेरह हजार करोड़ वर्षों के काल में दुगनी हो जाती है। इस कारण उस समय जब सौर-मण्डल का निर्माण हुआ था पृथक २ विश्व परस्पर बहुत निकट थे आज के अपेक्षाकृत। यदि हम इस काल से परे जाएं तो हमें पता चलेगा कि वह सब व्योम के थोड़े से आयतन में सकुचित थे और तभी वह समय था जब नक्षत्रों का जन्म हुआ। आरम्भ में केवल एक ही बड़ा परमाणु था, और फिर कुछ ऐसी घटना घटित हुई कि उस परमाणु के विस्फोट से उसके अनेकों सूक्ष्म कण हो गए जो व्योम में सर्व दिशाओं में फैंक दिए गए। वह अपनी प्रायमिक गति के अनुसार ही घूमते रहे और कालान्तर में सब से अधिक तेजी से घूमने वाले कण बड़ी से बड़ी दूरी पर पहुँच गए।

यह सिद्धान्त निरीक्षित तथ्यों की विशेष व्याख्या पर ही आधारित है—यदि कोई विकिरण-शील वस्तु घूमती २ हमारे निकट आती है तो उससे निकले विकिरण सकुचित होते हैं और हमें उनकी तरंग दीर्घता (Wavelength) छोटी प्रतीत होती है, परन्तु यदि वह वस्तु हम से दूर जा रही हो तो उसके विकिरण लम्बी तरंग दीर्घता के होते हैं। दूरस्थित विश्वों से विकिरण, जो प्रकाश का निर्माण करते हैं, भौतिक पदार्थों के विकिरणों की अपेक्षाकृत लम्बी तरंग-दीर्घता के हैं। परन्तु यह कहना कि दूरस्थित पद्धतियों की विकिरणों की तरंग-लम्बाईयों में परिवर्तन उनकी गति के कारण है अथवा प्रकाश के व्योम में चलने से तरंगदीर्घता में मन्द वर्धमान परिवर्तन (Slow progressive Change in wave-length) के फलस्वरूप, एक ऐसा प्रश्न है जो अन्त में निरीक्षण द्वारा ही निर्णय किया जा सकता है।

वयं–जनन (Spontaneous generation of life)—

प्राचीन मनुष्य का यह दृढ विश्वास था कि जीव बहुत से प्राणियों में स्वाभा-
क अपने आप अनेन्द्रिक पदार्थों से उत्पन्न हो जाता है। यूनान देश का प्रसिद्ध
द्विवादी अरस्तु यह मानता था कि मेंढ़क और उसी प्रकार के काफी ऊंची रचना
ाले जीव भी दलदलों में एकाएक पैदा हो जाते है। इसी प्रकार रोम के नामी
खक वर्जिल (Virgil) ने एक जगह मृतक बैल के शरीर से शहद की मक्खियों के झुण्ड
ं झुण्ड निकलते देखे और कहा कि यह मक्खियां मृतक बैल के शरीर से स्वत. उत्पन्न
ो जाती हैं, और इसी प्रकार कीड़े मकोड़े कीचड़ में। होमर (Homer) भी इस
ात मे विश्वास रखता था कि मक्खियां मांस से उत्पन्न हो जाती हैं। पैरासैलसस
Paracelsus) ने मनुष्य की उत्पत्ति की भी विधि बतलाई थी। जीन–वैन–हैमोन्ट
Jean Van Helmont) ने चूहों की उत्पत्ति के प्रति यह कहा था कि एक गन्दी
मीज़ को एक बर्तन मे रख दो जिसमे गेहूं हो और इक्कीस दिन तक अन्धेरे स्थान
रखने के पश्चात् उन दानों की वाष्प और कमीज मे मनुष्य के पसीने अंकुरोद्गमी
त तत्व (germinating principle) चूहे उत्पन्न कर देगा। इस प्रकार कई
ताब्दियों तक कुछ प्रमुख व्यक्तियों तथा वैज्ञानिकों का यह मत रहा कि बहुत से
ीव जैसे वे दिखलाई देते हैं वैसे ही प्रकृति द्वारा गढ़े गये है और स्वत ही पृथ्वी
र पैदा हो जाते है। यह बात उनको ऐसी निर्विवाद सत्य प्रतीत होती थी कि
सके विषय में उनको कभी भ्रम ही नहीं हुआ—यहां तक कि सत्रहवीं शताब्दी के
ाहित्य मे गोबर से गुबरीलों का पैदा होना, तितली अण्डपुटों का घास-फूस अथवा
न्य सड़े गले पदार्थों मे बन जाना, घरतो मे चूहों का उत्पन्न होना, आदि बातों पर
ंदेह करने वालों का लेखक उपहास किया करते थे। मनुष्य अब भी यह समझता
कि पहिले पहल जब वर्षा होती है तो उस वर्षा के साथ २ बीरबहूटी जैसा जीव
ी या तो बरसता है अथवा अकस्मात पैदा हो जाता है, अथवा वर्षा में रखे हुए
ाटे मे सूंडियां मौल से पैदा हो जाती है, नालदानों में रुके हुए पानी में मिट्टी के
ल्ने से ही मूंडे बन जाती है, आदि।

प्राचीन काल मे लोगों का यह स्वभाव था कि वह जो कुछ और लोगों से
नते या पढ़ते थे या जिन बातों पर विश्वास करते थे, उनकी जांच किए बिना ही
न्हें सत्य मान लेते थे। उनमें आज की भांति वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समावेश नहीं
ुआ था। इसी कारण सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक किसी का भी ध्यान इस ओर
ी गया कि इस बात की परीक्षा कर ली जाए कि सड़े हुए मांस मे क्या सचमुच
सूंडियां पैदा हो जाती हैं। इस समय के लोगों का यह विचार था कि वर्षा ऋतु
र बसन्त ऋतु में जो छोटे छोटे जीव और कीड़े मकोड़े एकदम दिखाई पड़ने

मक्खियाँ हैं वह अण्डों से नहीं पैदा होते बल्कि आसपास की मिट्टी तथा अन्य वस्तुओं के सड़ने और गलने से स्वयं पैदा हो जाते हैं।

इस बात की जांच करने को सर्व प्रथम इटली के रेडी नामक प्रकृतिवादी और कवि का ध्यान गया। इसने मांस के कुछ टुकड़े कई पृथक-पृथक बर्तनों में रक्खे। कुछ को उसने खुला रहने दिया और कुछ को कपड़े की जाली से इस प्रकार ढक दिया कि उनमें किसी तरह भी मक्खियां न जा सकें। तब यह देखा गया कि सूंडियां केवल मांस के उन्हीं टुकड़ों में बनी जो खुले रक्खे थे और जिन पर मक्खियों के बैठने के लिए कुछ रोक न थी। इसी प्रकार रेडी ने ही पहिले पहल यह भी पता लगाया कि यह सूंडियां ही बढ़ कर क्रमश: मक्खियां बन जाती हैं। तब उसने और अधिक खोज की और उनके अण्डे भी देख लिए। इससे उसको पूर्ण विश्वास हो गया कि मक्खियों के दिए हुए अण्डों से ही सूंडियां निकलती हैं और वह सड़े हुए मांस से नहीं बनतीं। इस विषय-सम्बन्धी फ्रांसिस्को रेडी के प्रयोगों का पूर्ण विवरण १६६८ ई० में छपा था। तत्पश्चात् नीडम (Needham), और स्पैलैनज़ानी (Spallanzani) आदि दूसरों ने भी इसकी जांच की और उसे सत्य पाया। १८३६ ई० में शूल्ज (Schultze) ने, १८३७ ई० में श्वान (Schwann) ने और फिर १८५३-१८५४ ई० में श्रोडर (Schroeder) तथा डुश (Dusch) ने मांस और सब्जी को एक शीशे के फ्लास्क में उबाल कर उसकी गर्दन में ऊन की डाट लगादी जिससे कि बाहर की वायु का सम्पर्क न हो सके, और यह देखा कि ऐसा करने से सूंडियां पैदा नहीं हुईं। इन्हीं सारी खोजों ने प्रसिद्ध जीव-तत्वज्ञान-वेत्ता पाश्चर को प्रयोग द्वारा स्वयं-जनन की धारणा की जांच करने के लिए उत्साहित किया। उसने यह सिद्ध कर दिया कि जीवों की उत्पत्ति निर्जीव पदार्थों से नहीं होती वरन् जीवधारियों से ही होती है, और यह प्रमाणित कर दिखाया कि घास-पात को भिगोने वाले पानी में अथवा मांस व फल आदि के सड़ने में जो जीव उत्पन्न हो जाते हैं वह स्वयं पैदा नहीं होते। वायु के द्वारा उनके अण्डे, स्पोर या बीज उनमें पहुँच जाते हैं।

बरसात में एकाएक दृष्टिगोचर होने वाले तरह-तरह के जीवाणुओं के अण्डे-बच्चे तथा पेड़ पौधों के बीज किसी-न-किसी रूप में पृथ्वी में पहिले से ही उपस्थित रहते हैं, तथा वर्षा होने के कारण वह तेज़ी से बढ़ने लगते हैं या उग आते हैं। अन्य मौसमों की अपेक्षा अधिक अनुकूल जलवायु पा जाने के कारण ही यह जन्तु इन मौसमों में बहुत तेजी से बढ़ जाते हैं। इस प्रकार ज्यों-ज्यों वैज्ञानिकों को दूसरे प्राणियों के जन्म की कहानी भी मालूम होती गई, और सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के आविष्कार ने छोटे-छोटे कीटाणुओं और जीवाणुओं की एक नई दुनिया ही संसार के समक्ष खोज निकाली, त्यों-त्यों जीवों के स्वयं पैदा होने का विश्वास उनके मन में से उठता गया। प्रयोगों द्वारा उन्होंने स्पष्ट रूप से यह सिद्ध कर दिया कि यदि कीटाणु-विहीन की हुई

ज्ञात सामग्री में हम कीटाणु या उनके बीज का पहुँचना असम्भव कर दें तो फिर नए कीटाणु उत्पन्न नहीं हो सकते ।

इन बातों से सूक्ष्म जीवों में स्वयं-जनन का विचार हमें त्यागना पड़ा । और अब हम ठीक रूप से कह सकते हैं कि हम स्वयंजनन का एक भी उदाहरण नहीं जानते और अभी तक हमें एक भी ऐसी जीवित अथवा मृत प्राणी की उदाहरण नहीं मालूम है जिसके विषय में हम यह समझ सकें कि यह स्वयं पैदा हुआ होगा । तब भी हमें यह विश्वास करना ही पड़ता है कि पृथ्वी की बाल्यावस्था में पहिला जीव-द्रव्य कतिपय अतीन्द्रिक अवयवों से, या उनके सगठन से ही बना होगा ।

न्यूटन की विचारधारा की अन्तिम स्थिति : (Newtonian Synthesis)—

१६६६ ई० में जब न्यूटन केवल २४ वर्ष की आयु का ही था, वह अपने इन मूल विचारों पर पहुंचा कि पदार्थ का हरेक कण प्रत्येक दूसरे कण को अपनी ओर आकर्षित करता है । यह आकर्षण शक्ति दोनों के भार (Mass) और एक दूसरे के बीच की दूरी पर निर्भर है । दूरी जितनी अधिक होगी आकर्षण शक्ति उतनी ही कम हो जाएगी । यदि दूरी दुगनी हो जाती है तो आकर्षण शक्ति चौथाई रह जाती है । उसके मस्तिष्क में यह बात उदय हुई कि वह बल जो वस्तुओं को नीचे गिराता है अर्थात् पदार्थों को पृथ्वी की ओर आकर्षित करता है, और जो प्रत्यक्ष रूप में ऊँचे पर्वतों की चोटी पर भी न न्यून होता है न क्षय होता है, वह निश्चित रूप से चन्द्रमा की दूरी तक भी विस्तृत हो सकता है । चन्द्रमा प्रति सैकिन्ड ठीक उसी प्रकार नीचे गिरता है जैसे कि एक पत्थर । यदि पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति एकदम हटादी जाए तो चन्द्रमा एक सीधी रेखा में चलेगा और पृथ्वी से कितनी ही दूर चला जाएगा । यह पृथ्वी की ओर आकर्षित होता है, पर कई शताब्दियों तक पृथ्वी की ओर गिरता हुआ भी उससे टक्कर नहीं खाता । यह पृथ्वी की ओर इतना ही गिरता है जिससे इसका भ्रमण-पथ मुड़ा हुआ रहे ।

न्यूटन ने फिर यह भी बतलाया कि यदि वह बल जो ग्रहों को अपने अपने कक्ष में ही भ्रमण करने देता है गुरुत्वाकर्षण शक्ति है (Gravitational attraction), जो परस्पर आकर्षित वस्तुओं की बीच की दूरी के वर्ग के विपरीत अनुपात में बदलती है तो वह कक्ष अण्डाकार रूप के होंगे । 196

न्यूटन ने संसार को सौर-मण्डल की योजना की विशेष रूप रेखा से और उन भौतिक सिद्धान्तों से जिनसे कि उसके बारे में ज्ञान प्राप्त किया जाए परिचित कराया ।

न्यूटन ने यह बतलाया कि गति के तीनों नियम सीधे सादे है और केवल सौर परिवार के सदस्य ही नहीं बल्कि व्योम में जो और अन्य पिण्ड तथा नक्षत्र हैं वह सब भी एक दूसरे से आकर्षण शक्ति द्वारा आबद्ध हैं । थोड़े में यह कहा जा

करता है कि समस्त ब्रह्माण्ड को यही शक्ति सम्भाले हुए है । न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के उस महान सिद्धान्त की खोज की जिसके फलस्वरूप विज्ञान के क्षेत्र मे एक नवीन युगान्तर हो गया । विश्व-व्यापी गुरुत्वाकर्षण (Universal Gravitation) शक्ति जिससे सारे आकाशीय पिण्ड बंधे हुए हैं, जो पृथ्वी, ग्रहों तथा चन्द्रमा को अपने अपने मार्गों में घूमने के लिए बाध्य करती है, जो सारे पदार्थों पर, चाहे वह भौमिक हो अथवा स्वर्गीय, छोटे हों अथवा बड़े, अपना प्रभाव डालती है, उसी शक्ति के कारण ही सर्व प्रथम दृष्टिगोचर संसार एकता मे बधा हुआ प्रतीत हुआ-पृथ्वी तथा आकाश एक दूसरे के विपरीत दीखने बन्द हो गए, (Heavens and earth ceased to be opposed to one another)

न्यूटन की खोजो के फलस्वरूप एक ऐसे यांत्रिक विश्व का विकास हुआ जो बल, दवाव, फैलाव, खिचाव, प्रदोलनो तथा तरगों से परिपूर्ण है । प्रकृति की कोई भी विधि ऐसी नही प्रतीत होती जिसका हम साधारण अनुभव द्वारा ही वर्णन न कर सकते हों, और जो न्यूटन के आश्चर्यजनक यथार्थ गतिशास्त्र के नियमो से नियन्त्रित न हो सकें । परन्तु पिछली शताब्दी के समाप्त होते ही इन नियमों में कुछ विचलन प्रत्यक्ष होने लगे—यद्यपि यह बहुत थोडे ही थे फिर भी यह ऐसे मूल सिद्धान्तो को लिए हुए थे कि न्यूटन के सारे यन्त्र-सरीखे विश्व की गणना के विचारों को गहरा धक्का लगा ।

गतिशीलता तथा स्थिरता आपेक्षिक शब्द हैं । वस्तुओं की गति का नियमन किसी विशेष पदार्थ के लिहाज से करना होता है । यदि हम एक ऐसी रेलगाडी मे ऐसे समय जा रहे हों जिसमे अगर बैठे यह मालूम न हो कि वह ठहरी हुई है अथवा गति मे है और हमारे पास मे एक दूसरी गाडी निकल जाए पृथक पटरी के ऊपर से, तो हमें बाहर झांकने पर भी यह नहीं प्रतीत होगा कि कौनसी रेलगाड़ी ठहरी हुई है और कौनसी गति में है, न यही हम बतला सकेंगे कि दोनों में से कौन सी कितने वेग मे चल रही है और किस दशा मे । अपनी स्थिति का केवल एक ही तरह ज्ञान हो सकता है और वह यह है कि हम किसी स्थिर वस्तु को दूसरी ओर देखें जैसे कि स्टेशन का प्लेट फार्म या किसी सिगनल का प्रकाश । न्यूटन गति की इस सापेक्षवाद से परिचित था परन्तु वह केवल जलयानों के बारे मे ही विचार करता था—वह यह जानता था कि ऋतु की निर्वात स्थिति के दिन (on a calm day) एक नाविक (Sailor) उतनी ही सरलता के साथ अपनी दाढ़ी बना सकता है अथवा सूप पी सकता है जितनी कि उस समय जब जलयान बन्दरगाह पर गतिहीन ठहरा हो । उसके पानी में या शोरवे मे नाम मात्र को भी व्यग्रता अथवा हिलान नहीं आती चाहे वह जलयान कितने ही वेग से चले । जब तक कि वह समुद्र को झांक कर नही देखता उसे यह ज्ञान नहीं हो सकता कि उसका जलयान गतिमानसी

है या नहीं। जब तक कि समुद्र शीशे की भांति शान्त रहता है और जल बिल्कुल निःशब्द चलता है तो उसकी छत (Deck) के नीचे जलयान के किसी भी प्रकार का निरीक्षण अथवा यांत्रिक प्रयोग समुद्र में जलयान की गति वेग को नहीं बतला सकता।

इन बातों से सूचित किया हुआ भौतिक सिद्धान्त न्यूटन ने १६८७ ई० प्रतिपादन किया था कि "व्योम में पिण्डों की गतिदा परस्पर एक समान चाहे वह व्योम विराम स्थिति में हो अथवा एकरूपता से सीधी लकीर में आगे रहा हो" इसी को न्यूटन का अपेक्षावादी सिद्धान्त कहते हैं (Newtonion Relativity Principle)। दूसरे शब्दों में इसी को इस प्रकार भी कहा जा सकता कि जो गतिशास्त्र के नियम एक स्थान में सप्रमाण हैं वह अन्य किसी दूसरे स्थान भी जो पहिले की अपेक्षाकृत एक सी गति से गतिमान हो ठीक उसी प्रक सप्रमाणिक हैं।

इस प्रकार पेड़ पर से एक सेब के नीचे गिरने की तुलना सूर्य चारों ओर ग्रहों के भ्रमण करने से देते हुए न्यूटन को एक विश्व व्यापी नि अनायास ही प्राप्त हुआ और यद्यपि उसने अपने सिद्धान्त की व्याख्या समुद्र एक जलयान की आपेक्षित गति की उदाहरण से दी, वह जलयान जो उस मस्तिष्क में था, पृथ्वी थी। विज्ञान की साधारण बातों के लिए पृथ्वी स्थिर पद्धति मानी जा सकती है। परन्तु खगोल विद्या के भौतिक शास्त्र (astrophysicist) को पृथ्वी विराम स्थिति में न होते हुए व्योम में ब पेचीदा तौर से घूमती दीखती है। अपनी धुरी पर १००० मील प्रति घण्टे क्रम से चक्कर लगाने के अतिरिक्त वह सूर्य्य के चारों ओर बीस मील प्र सैकिण्ड के क्रम से भ्रमण करती है। सारा सौर मण्डल स्थानीय नक्षत्र मण्डल भीतर तेरह मील प्रति सैकिण्ड की गति से घूमता है, स्थानीय नक्षत्र मण्ड आकाश गंगा के अन्दर २०० मील प्रति सैकिण्ड की गति से गतिमान है औ आकाश गंगा दूर बाहर स्थित तारा पुञ्जों से १०० मील प्रति सैकिण्ड की गति से दूर हट रहा है और यह सब पृथक पृथक दशाओं में।

न्यूटन उस समय पृथ्वी की पूर्ण सर्वाङ्गीणता को नहीं जान पाया था, औ वह इस स्पन्द विश्व में 'आपेक्षिक गति' और 'पूर्ण स्वच्छ गति' में भेद करने की असमर्थता से चिन्तित थी। उसने यह प्रस्तावित किया था कि स्थिर नक्षत्रों के दूर स्थित स्थानों में अथवा उन से भी परे कोई न कोई वस्तु परम-विराम (absolute rest) पर हो सकती है परन्तु वह मानता था कि मनुष्य की दृष्टि जहां तक जा सकती है वहां तक किसी भी स्वर्गीय पदार्थ के द्वारा वह उसे प्रमाणित नहीं कर सकता। वह व्योम को स्थिर अवस्था में, गतिहीन भौतिक वस्तुविरता

... permeated with an invisible medium in which the
andered and through which light travelled like vibrations in
of jelly was the end product of Newtonian physics. It pro-
mechanical model for all known phenomenon of nature and
led a fixed frame of reference the absolute and immovable
which Newton's cosmology required.

र्विन तथा परिवर्तन के प्रति विचार (Darwin and the idea o
hange)

र्विन का जन्म इंगलैंड के पश्चिम मे श्रूशवरी नगर मे १८०६ ई० ं
इनके पिता एक चिकित्सक थे और उनके यह पाचवें पुत्र थे । बाल्य
भांति २ के जीवित जन्तुओ का निरीक्षण करने मे इनकी बड़ी
और तभी से प्राणी-शास्त्र एव वनस्पति-शास्त्र का अध्ययन करने क
हो गई थी। भिन्न भिन्न प्रकार के कीड़े, मकोड़े एकत्रित करने का इन
ा। इन्होंने तीन वर्ष तक एडिनबरा मे चिकित्सा-शास्त्र का अध्यय
फिर तीन वर्ष कैम्ब्रिज में धर्म-ज्ञान का। यद्यपि इन की योग्यत
शंसनीय था, किन्तु इनकी इन किसी विषय मे भी रुचि न थी। अपने
ाईसवें वर्ष में इसके लिए एक सुवर्ण सयोग मिला। दक्षिण
ा ओर जाने वाले एक जलयान बीगिल (Beagle) पर इन्हें सृष्टि
कार्य करने का स्थान मिला। पाच वर्ष के निरंतर परिश्रमम
अनन्तर अपने विशाल अनुभव से इन्होंने "जातियों का मूल
Species) नामक पुस्तक सरल और सुबोध भाषा मे लिख कर बड़
या।

में विकासवाद के विषय मे अर्वाचीन आचार्य्य डार्विन ही मा
कासवाद का प्रचार इनके मस्तिष्क में मैल्थस (Malthus) नामक
लिखी "जनवृद्धि की मीमांसा", नामक पुस्तक पढ़ते पढ़ते हुआ
भली भांति दिया हुआ था कि मनुष्यों मे जनवृद्धि पृथ्वी के परिमाण
ी है और जीवन के साधन रूपी अन्नादि समस्त खाद्य पदार्थों क
कृत अत्यल्प। इसी पर डार्विन की कल्पना बुद्धि जाग्रत हुई और त
था वनस्पतियों पर भी इन्होंने इस सिद्धान्त को लागू किया। इ
ह निष्कर्ष निकाला कि प्राणियों की संख्यावृद्धि की अपेक्षा ज
न्य अन्नादि की उपज कम होगी तो एक दिन ऐसा अवस
न्न का अभाव जीवन-संघर्ष की वृद्धि का कारण होगा। अत

निर्बल व्यक्ति कुचल दिए जाएंगे और केवल वही जीवित रह सकेंगे जो उस समय की परिस्थिति के योग्य होंगे। इस प्रकार कालान्तर में काट छांट होते होते एक बिल्कुल नई ही जाति बन जाएगी जो अपने मूल पूर्वजों से बिल्कुल भिन्न होगी।

देशकाल के अनुसार प्राणियों तथा वनस्पतियों में परिवर्तन आवश्यक है। हम प्रतिदिन प्रत्येक वस्तु में कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य देखते हैं। संसार परिवर्तनशील है और वातावरण निरन्तर बदलता ही रहता है। जहां कहीं पहिले समुद्र थे आज उनके स्थान में आकाशचुम्बी पर्वत हैं, जहां सूखी भूमि थी वहां गहरे जलगर्त हैं, जहां हरी भरी चरागाहें थीं वहां आज रेगिस्तान हैं, जहां पृथ्वी बर्फ से ढकी रहती थी वहां उष्ण कटिबन्ध हैं। पृथ्वी की रचना का इतिहास बताता है कि लगभग सभी महाद्वीप (भूमिखण्ड) एक न एक समय सागर के भीतर डुबकी लगा चुके हैं। जैसे जैसे पृथ्वी की भौगोलिक दिशा में परिवर्तन हुआ, उस समय के जीवों ने अपने को परिस्थिति के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया। इसी के फलस्वरूप उनके अंगों तथा रहन सहन में भी परिवर्तन होता गया और वे अधिकाधिक विकसित होते गए। परिवर्तित परिस्थिति में टिकने योग्य हो सकने का अर्थ ही विकास है। विकास केवल परिस्थिति परिवर्तन पर ही निर्भर है। यह नहीं हो सकता कि परिस्थिति ज्यों की त्यों बनी रहे और विकास भी होता रहे। विकास का अर्थ सामान्य रूप से प्रगति समझा जाता है और यह कहा जाता है कि विकास से प्रत्येक प्राणी अपेक्षाकृत समुन्नत दशा को प्राप्त होता है, किन्तु बात ऐसी नहीं है। विकास में अवनति भी उतनी ही सम्भव है जितनी कि उन्नति। परिस्थिति यदि इस प्रकार बदले कि अमुक प्राणी का ऊंची ओर जाना उपयोगी हो तो अवश्य ही उसका विकास भी होगा और उन्नति भी, किन्तु यदि नीची ओर जाने से लाभ होता है तो वह प्राणी अवश्यमेव नीची ओर जाएगा। ऊंची नीची श्रेणी केवल हमारी कल्पनाएं हैं।

जिस समय डार्विन ने अपना कार्य आरम्भ किया था उस समय तक इन्हीं विचारों की मान्यता थी कि जीवित जीवों की पृथक पृथक जातियां आदिकाल से ही पृथ्वी पर उनकी आधुनिक अवस्था में ही चली आ रही हैं, परन्तु पृथ्वी की चिप्पड़ के खोदने पर जीवों के पाषाण बने हुए ऐसे अवशेष प्राप्त हुए जिन का रूप तथा आकार आधुनिक समय के जीवों से भिन्न था। इन जीवों की कभी पहिले मृत्यु हो गई थी और फिर नए जीवों की उत्पत्ति हुई जो उन जीवों से कुछ भिन्न थे। डार्विन ने प्रकृति की इसी विलक्षणता पर वैज्ञानिक अनु-सन्धान किए और अनेकों यथार्थताओं एवम् सत्य तथ्यों को एकत्रित किया, जो सब यही प्रमाणित करते हैं कि पृथ्वी पर जीवन सूक्ष्म जीवों से आरम्भ हुआ,

और कालान्तर में प्रगति करते २ उच्च तथा जटिल रूप में पहुंचा, और यह जीवों की सन्तति में थोड़े परिवर्तन होते रहने के तथा योग्य व्यक्तियों के प्रकृति के निरन्तर चयन के प्रभाव के फल स्वरूप हुआ। परिवर्तन का प्रभाव एक दूसरी जाति के निर्माण पर पूरा पूरा पड़ता है। घोड़े, गाय, बैल बकरी, ऊंट, मनुष्य तथा प्रत्येक जाति की अनेकों उपजातियां आज विद्यमान है, किन्तु उन मे से बहुत सी कुछ दिन पहले न थीं। हरे भरे स्थानों में रहने वाले जीवों का रंग प्रायः हरा ही होता है। सूखी घास मे रहने वालों का रंग अपने आस पास के रंग के अनुसार होता है। जिन प्राणियों को रात में विचरना पड़ता है उनका रग काला होता है, भड़कीला नही होता—जैसे उल्लू, चिमगादड़ आदि। आजकल हमे जो प्राणी मिलते हैं विकासवाद के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में वह स्वतन्त्ररूप से पृथक पृथक उत्पन्न नहीं हुए—उनके मूल पूर्वज एक ही थे।

रूपान्तर सहित वंश परम्परा (Descent with modification) का यही अभिप्राय है कि पूर्वजो से नए जीवों की प्रगति उनकी रचना मे अथवा उनके आकार में कुछ परिवर्तन होते के कारण ही होती है। यह परिवर्तित रूप उन जीवों को भिन्न २ वातावरण मे रहने के योग्य बनाता है।

(iv) आधुनिक विचार धारा (Modern Synthesis)
परमाणु की रचना (Study of the Atom)

वैज्ञानिकों का कथन है कि मूल तत्वों के अवयव गेंद की भांति ठोस नहीं होते वरन् उनके भीतर अधिकांश भाग एकदम खोखला रहता है। जिस प्रकार सूर्य के आस पास पृथ्वी, मगल, बृहस्पति आदि ग्रह चक्कर लगाते हैं उसी प्रकार तत्वों के अवयवों भीतर भी एक केन्द्रीय नाभक के चारों ओर इलैक्ट्रोन्स की गति भी अत्यन्त तीव्र होती है। पदार्थों के खोखलेपन का यह हाल है कि यदि समूचे ससार के पदार्थों को भींच कर हम इस प्रकार इन अणु-परमाणुओं को एक दूसरे से मिलादे कि सूक्ष्म से सूक्ष्म खाली स्थान भी उनमें शेष न रहे, तो अन्त मे उन समूचे घनीभूत पदार्थ मे हमें एक मात्र छोटी सी नारगी के बराबर का ही पिण्ड मिलेगा।

परमाणु की रचना का ज्ञान आधुनिक काल की ही देन है। भारतवर्ष में परमाणु-वाद ईसा से लगभग ६०० वर्ष पूर्व प्रचलित था। वहां से ये विचार ईरान पहुचे और फिर ईसा से पूर्व पाँचवी शताब्दी मे यूनान पहुँचे। उस समय वहां यूनानी दार्शनिक डैमोक्राइटस (Democritus) तथा अन्य दार्शनिकों ने भी उसका प्रचार किया। पदार्थ जिन सूक्ष्म कणो मे तोड़ा जा सकता है डैमोक्राइटस ने उनको 'परमाणु' बतलाया और कहा कि इन कणों को आगे विभाजित नहीं किया जा सकता। ठीक यही बात प्रमुख भारतीय दार्शनिक कपिल ने अपने सांख्य में और कणाद ने अपने दर्शन में

मानी है । एक दूसरे यूनानी दार्शनिक एम्पीडोक्लिस ने पदार्थों को तत्त्व का बना हुआ माना और कहा कि चार भिन्न प्रकार के ही परमाणु हैं जो इन चार तत्त्वों के अनुकूल हैं। एम्पीडोक्लिस से विख्यात अरस्तू सहमत था और इसी कारण डेमोक्रिटस के विचारों पर २००० वर्ष तक लोगों ने ध्यान न दिया। तत्पश्चात् योरप के कुछ विद्वानों ने परमाणुवाद के विषय में अपने विचारों को प्रकट किया परन्तु वह कुछ निश्चित परिणाम पर न पहुंचे।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम खण्ड में परमाणुओं के बारे में ठीक ज्ञान प्राप्त करने की वास्तविक खोज हुई । इस समय तक किसी ने यह जानने का प्रयत्न नहीं किया था कि परमाणु किस प्रकार काम करते हैं कितने बड़े हैं, उनकी रचना किस प्रकार की है, और वे होते भी अथवा नहीं। इंग्लैंड के जॉन डाल्टन ने सर्व प्रथम परमाणुओं को वैसा बतलाया जैसा कि हम अब जान गए हैं। उसने कहा था कि —

१. परमाणु तत्त्व का वह सूक्ष्म कण है जो रासायनिक क्रिया में भाग लेता है जैसे कि वह तत्त्व।
२. रासायनिक क्रिया में परमाणुओं में कोई अन्तर नहीं होता।
३. एक ही तत्त्व के परमाणु गुणों में बिल्कुल एक से ही होते हैं। वह दूसरे तत्त्व के परमाणुओं से भिन्न हैं।
४. परमाणुओं का न विभाजन हो सकता है न नाश हो, और न वे हो जा सकते हैं।
५. एक तत्त्व के सभी परमाणुओं का भार एक के बराबर होता है।

परमाणुओं को हम किसी प्रकार भी तोल नहीं सकते । यदि हम अति कोमल तुला के पलड़े में हजारों परमाणु रख दें तो भी उस पर प्रभाव नहीं हो सकता । आक्सीजन के एक परमाणु का भार ०००,०००,०००,०० ०००,०००,०००,०२६ ग्राम होता है । प्रत्येक परमाणु का भार परमाणु के भी जितने भी कण हैं उन सब को मिलाकर जो भार होता है, वही है। धूल के सूक्ष्म कण में दस पदम से भी अधिक परमाणु होते हैं।

डाल्टन के बहुत वर्षों पीछे १८६७ ई० में प्रोफेसर जे.जे.टॉम्सन ने सिद्धान्त निश्चित किया कि परमाणु को अति सूक्ष्म तथा हल्के विद्युतीय कण में भी विभाजित कर सकते हैं। टॉम्सन ने इन्हे कॉर्पसिल्ज़ कहा लेकिन अब इलेक्ट्रॉन्स के नाम से जाने गए हैं और इन में ऋण विद्युत आवेश होता है। टॉम्सन शिष्य रदरफोर्ड ने १९११ ई० के लगभग परमाणु की भीतरी रचना की महत्त्वपू खोज की। प्रत्येक परमाणु के उदर में एक नाभिकण (Nucleus) होता है जिस

हाइड्रोजन परमाणु के अतिरिक्त दो प्रकार के कण होते हैं जो न्यूक्लोन्स (Nucleons) कहलाते हैं—एक प्रोटोन जो धन विद्युतीय होता है, और दूसरा न्यूट्रोन जो विद्युत-उदासीन है। दूसरे कण जो परमाणु रचना में उपस्थित हैं वे इलैक्ट्रोन्स हैं जो प्रोटोन्स और न्यूट्रोन्स से बहुत बड़े है पर इतने बड़े होने पर भी उनसे कहीं अधिक हल्के हैं। प्रोटोन्स में इलैक्ट्रोन्स के अपेक्षाकृत लगभग १८०० गुना अधिक भार होता है और न्यूट्रोन्स से कुछ कम। यह ऋण-विद्युत होते हैं। न्यूक्लोन्स किसी पदार्थ के एक पाउन्ड भार में २७०,०००,०००,०००,०००,०००,०००,०००,००० होते हैं। केन्द्र में प्रोटोन्स की सख्या उतनी ही होनी है जितने कि बाहर के कक्षों में इलैक्ट्रोन्स होते हैं। इसी कारण एक परमाणु में ऋण और धन विद्युत की मात्रा बराबर २ होती है, परन्तु जब एक परमाणु के अन्दर दूसरे परमाणु के ऋण-विद्युतीय कण प्रवेश हो जाते हैं तो उसकी ऋण-विद्युत की मात्रा अधिक हो जाती है। इसी प्रकार जब एक परमाणु के ऋण-विद्युतीय कण बाहर निकल जाते हैं तो धन-केन्द्रक की विद्युत मात्रा अधिक हो जाती है और परमाणु धन-विद्युतमय हो जाता है।

परमाणु के केन्द्र का व्यास एक इंच के दस लाखवे भाग का दस लाखवा भाग है। इलैक्ट्रोन्स इस केन्द्र से महान दूरी पर स्थित हैं। यदि केन्द्र मटर के एक दाने के बराबर हो तो हाइड्रोजन के परमाणु के एक इलैक्ट्रोन को ३०० मील की दूरी पर रखना पड़ेगा और इस चित्र में यह इलैक्ट्रोन ३० फुट व्यास का होगा।

परमाणु की रचना एक छोटे सौर-मण्डल के सदृश है। उसका केन्द्रक सूर्य है और इलैक्ट्रोन्स जो भिन्न २ दूरी पर केन्द्र के चारों ओर चक्कर लगाते हैं, ग्रह हैं। जो इलैक्ट्रोन्स एक सी दूरी पर चक्कर काटते हैं एक ही कक्ष में रहते हैं। हाइड्रोजन के परमाणु में केवल एक ही कक्ष है और एक ही इलैक्ट्रोन है जब कि दूसरे अधिक भार वाले तत्व के परमाणु सात कक्ष रखते हैं। सबसे भीतरी कक्ष में अधिक से अधिक दो इलैक्ट्रोन्स होते हैं, दूसरे कक्ष में आठ, तीसरे में १८, परन्तु पृथक पृथक

कक्ष साधारणतः पूरे भरे हुए नहीं होते। इन इलैक्ट्रोन्स की संख्या $2n^2$ सूत्र से ज्ञात कराई गई है जिसमें n कक्ष की क्रम संख्या है। केन्द्रक और कक्षों के बीच बहुत रिक्त स्थान होता है।

१९३२ ई० मे यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि परमाणु मे इलैक्ट्रोन्स के अतिरिक्त धन-विद्युतीय इलैक्ट्रोन्स भी हैं जिन्हें पोजीट्रोन्स का नाम दिया, और इसी कारण ऋणविद्युतीय इलैक्ट्रोन्स का नाम निगेट्रोन्स रक्खा गया। यह अनुमान किया गया है कि इन दोनों प्रकार के कणों की विद्युत मात्रा बराबर बराबर होती है। पोजीट्रोंस का भार तो इलैक्ट्रोन्स के बराबर ही है, परन्तु ये बहुत अस्थाई हैं और इनका जीवन भी बहुत अल्प है, (.००० ०००, ००० भाग एक सैकिन्ड का)। यह पोजीट्रोंस केन्द्रक में नहीं पाए जाते और ब्रह्माण्ड रश्मियों से उत्पन्न हो जाते हैं अथवा रेडियो-धर्मी पदार्थों की रश्मियो से बन जाते हैं। जब एक पोजीट्रोन किसी भी ऋण-विद्युतीय कण से टक्कर खाता है तो दोनों कण परस्पर मिल जाते हैं और उनसे रश्मियां निकलती हैं।

केन्द्रक मे अन्य अति सूक्ष्म कण मीजोन्स (Mesons) भी पाए गए हैं। यह कई प्रकार के होते है और प्रत्येक मीजोन का भार प्रोटोन के भार से बहुत कम है मगर इलैक्ट्रोन के भार से अधिक। यह माना जाता है कि मीजोन्स धन-विद्युतीय, ऋण-विद्युतीय तथा विद्युत-उदासीन तीनो प्रकार के होते है। इनका आवेश इलैक्ट्रोन्स के आवेश के बराबर ही होता है। ये बहुत अस्थाई हैं। यह कण भी, ब्रह्माण्ड रश्मियों से रासायनिक क्रियाओं के कारण बन जाते है।

परमाणु के सब से बाहरी कक्ष मे घूमने वाले इलैक्ट्रोन्स (Valence

Electrons) के नाम से पुकारे जाते हैं क्योंकि यही रासायनिक क्रियाओं में भाग लेते हैं। यदि इन इलैक्ट्रोन्स को पर्याप्त शक्ति दी जाए तो इनमे अधिक ऊंची गति आ जाती है जिससे वह अपनी उस शक्ति से (Electrostatic Force). जिससे वह एक सीमित अवस्था में बंधे रहते हैं, अधिक शक्ति प्राप्त कर वहा से भाग निकलते हैं। बाहरी कक्ष के इलैक्ट्रोन्स केन्द्र से दूर होने के कारण कुछ कम शक्ति से बंधे रहते हैं और उनको पृथक करने मे अधिक शक्ति लगाने की आवश्यकता नहीं होती। यह कार्य ताप अथवा प्रकाश शक्ति के द्वारा पूरा किया जाता है। ताप लगाने से परमाणु कणों में इतनी तीव्र हलचल अथवा गति उत्पन्न हो जाती है कि बाहर के कुछ इलैक्ट्रोन्स परमाणु से पृथक हो जाते हैं।

इस प्रकार एक परमाणु में इलैक्ट्रोन्स निकल कर भाग भी सकते है और दूसरे परमाणु में प्रवेश भी कर सकते हैं। बाहर भागते समय इनकी गति बड़ी तीव्र होती है। लगभग एक लाख मील प्रति सैकिन्ड—और अपने साथ शक्ति भी लिए होते हैं। यही शक्ति परमाणु-शक्ति कहलाती है।

१९०२ ई० मे पियरे और मैडम क्यूरी ने यह बतलाया था कि रेडियो-धर्मी पदार्थ का प्रत्येक परमाणु एक निरन्तर अपार शक्ति का उद्गम है। १९०३ ई० में रदरफोर्ड और सोडी ने कहा था कि यह शक्ति परमाणु के भीतर से आती है और साधारण रासायनिक परिवर्तनों से स्वतन्त्र की हुई शक्ति से कहीं अधिक महान है। १९०५ ई० मे आइन्सटीन ने द्रव्य और शक्ति सम्बन्धित अपना प्रसिद्ध समीकरण "$E=mc^2$" ससार के सम्मुख रक्खा जिसके द्वारा परमाणु शक्ति जानने की प्रयोगिक विधि बतलाई।

अपेक्षा वाद-सिद्धान्त (Theory of Relativity) :—

जिस प्रकार कोपरनिकस और गैलीलियो ने पुरानी रूढ़ियों का गढ़ तोड़ा था उसी प्रकार आइन्सटीन ने भी अपने सिद्धान्त से संसार की आंखें खोल दी। न्यूटन ने और भी अनेकों अन्वेषण और आविष्कार किए परन्तु उसका गुरुत्वाकर्षण का नियम सबसे अधिक महत्व का था। अभी तक सारा ससार उसे मानता था किन्तु आइन्सटीन ने गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी विचारों में बड़ा भारी परिवर्तन ला दिया। अपने अपेक्षावाद (Relativity) के सिद्धान्त से विज्ञान के निश्चित विचारों को इन्होंने बहुत आघात पहुंचाया।

१९०५ ई० में आइन्सटीन ने वैज्ञानिक ससार को एक बड़ी महत्वशाली देन

थी। इन्होंने कई लेख लिखे जिन में यह बतलाया कि विश्व में सारी गति सापेक्षिक है और देखने वाले की स्थिति पर निर्भर है। इस सापेक्षवाद का साधारण उदाहरण आइन्सटीन ने यह दी कि एक मनुष्य रेलगाड़ी में बैठा हुआ एक पत्थर खिड़की से नीचे फैंकता है। गाड़ी में बैठे हुए मनुष्य को वह सीधी रेखा में नीचे गिरता हुआ दीख पड़ता है, परन्तु उस मनुष्य को जो रेल की पटरी के किनारे खड़ा है वही पत्थर टेढ़ा मार्ग (Parabola) लेता हुआ दीख पड़ता है। आइन्सटीन का सापेक्षवाद सिद्धान्त कोई नई चीज नहीं है। हम सब जानते हैं कि दुःख की एक घड़ी युग के बराबर प्रतीत होती है जब सुख का समय पल में ही बीत जाता है। भारतवर्ष के ठण्डे मुल्क में रहने वालों को ताप असह्य हो जाता है, जबकि किसान उसी ताप में अपना खेती का काम प्रसन्नतापूर्वक करता है। जो वस्तु दूर से छोटी प्रतीत होती है वही निकट से बड़ी लगती है। जो वस्तु एक के लिए विष है, वही दूसरे के लिए अमृत बन जाती है। यदि कोई व्यक्ति हमारे पास आकर केवल १० मिनिट तक ऐसी बातें करता है जिनमें न हमें रुचि है और न उस से बातें करने में हम अपना समय ही व्यतीत करना चाहते हैं, तो उसके चले जाने के पश्चात् अनायास ही हम यही कहते हैं कि वृथा ही उसने हमारा आधा घण्टा नष्ट कर दिया, परन्तु यदि उस व्यक्ति की बातों से हमें प्रसन्नता मिलती है और हमारी यह अभिलाषा होती है कि वह हमारे पास बैठा रहे तो आधा घण्टा बाद भी उसके यह कहने पर कि 'अब मैं चलूं' हम यही कहते हैं कि "अभी पांच ही मिनिट तो हुए हैं चले जाना"। इसी को अपेक्षावाद कहते हैं। पृथ्वी के ऊपर एक निरीक्षक को यह प्रतीत होता है कि पृथ्वी स्थिर है और मंगलग्रह गतिमान है जबकि इसके विपरीत मंगलग्रह के ऊपर एक निरीक्षक इस परिणाम पर पहुंचेगा कि पृथ्वी गतिमान है और मंगलग्रह स्थिर। आइन्सटीन के अनुसार इस अपेक्षाकृत तथा परिवर्तनशाली विश्व में केवल एक ही वस्तु समानता रखती थी और वह है प्रकाश की गति जो सर्वदा १८६२८० मील प्रति सैकिन्ड चलती रहती है।

१९०५ ई० में आइन्सटीन ने जो लेख लिखे उनमें से एक मैक्सप्लैंक (Max Planck) के प्रमात्रा सिद्धान्त (Quantum theory) पर आधारित थी। इस सिद्धान्त में यह बतलाया है कि शक्ति में छोटे छोटे कणों द्वारा गति होती है। प्रकाश की किरण फैलाने वाली शक्ति एक अटूट धारा में नहीं निकलती बल्कि विच्छिन्न कणों में जिनको उसने प्रमात्रा (Quanta) कहा। आइन्सटीन ने भी यह बतलाया था कि प्रकाश शक्ति के छोटे छोटे कणों का समूह है और इन कणों को उसने फोटोन्स (Photons) का नाम दिया। न्यूटन ने इन्हीं को कॉर्पसिल्ज

(Corpuscles) कहते हैं।

आइन्सटीन के अनुसार शक्ति के सारे रूप—प्रकाश, ताप, एक्स-किरण आदि व्योम में पृथक पृथक और विच्छिन्न प्रमात्रा में चलते हैं। यदि हम अग्नि के सामने बैठें तो हमें ताप का आभास हमारी त्वचा पर ताप के विकिरण असंख्य प्रमात्राओं के आघात के फलस्वरूप ही होता है। द्रव्य और शक्ति एक ही वस्तु के दो भिन्न २ रूप हैं और एक दूसरे में परिवर्तित हो सकते हैं। आइन्सटीन के समय तक द्रव्य और शक्ति पृथक पृथक समझे जाते थे। आइन्सटीन ने यह बतलाया कि जैसे एक गतिमान वस्तु की गति का वेग अधिक होता जाता है उसका भार भी बढ़ता जाता है, और क्योंकि गति एक प्रकार की शक्ति है, गतिमान वस्तु का भार उसकी बढ़ी हुई शक्ति के कारण ही बढ़ता है। इससे उसने यह सिद्ध किया कि शक्ति में भी भार होता है। पदार्थ अथवा द्रव्य और शक्ति का सम्बन्ध उसने अपने प्रसिद्ध समीकरण "$E=mc^2$" के द्वारा दिया जिसमें E अर्थ में शक्ति, m द्रव्य की मात्रा और c प्रकाश का वेग है जो १८६२८० मील प्रति सैकिण्ड है। इस समीकरण से स्पष्ट होता है कि द्रव्य और शक्ति पृथक पृथक न होकर एक ही हैं, और यह भी जाना जा सकता है कि द्रव्य की अल्प मात्रा असीमित शक्ति में परिणत हो सकती है—परमाणु बम के निर्माण में जो इस सूत्र ने भाग लिया है वह जन साधारण को विदित ही है।

आइन्सटीन के अनुसार व्योम के तीन विस्तार—लम्बाई, चौड़ाई तथा मोटाई—भौतिक विश्व की व्याख्या यथेष्ट रूप से नहीं कर सकते, क्योंकि इस विश्व के त्रि-विस्तारित व्योम में प्रत्येक घटना एक स्थान विशेष पर ही नहीं घटती, वरन् एक विशेष समय पर भी होती है। इस कारण व्योम और समय में इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि यह दोनों एक चतुर्थ-विस्तार (Fourth Dimension) बना लेते हैं जिसको Space-time का नाम दिया। न्यूटन के अनुसार केवल तीन ही विस्तार समझे जाते थे—लम्बाई, चौड़ाई तथा मोटाई अथवा ऊँचाई। समय का इनमें समावेश नहीं था किन्तु आइन्सटीन ने समय को भी विस्तार का एक रूप माना है।

आइन्सटीन ने गुरुत्वाकर्षण का सर्व माननीय नियम बनाया जो न्यूटन के नियम से कुछ कुछ भिन्न है। इसके अनुसार प्रकाश-रश्मि किसी भी बड़े पिण्ड के निकट से आ जाने पर अपना मार्ग उसी पिण्ड की ओर मोड़ लेती है।

यह सापेक्षतावाद सिद्धांत आइन्स्टीन ने १९४९ ई० के अन्तिम दिनों में प्रतिपादित किया था। इससे पहिले उसने "संगठित-क्षेत्र-सिद्धांत" (United Field Theory) १९२९ ई० में प्रकाशित किया था, और यह बताया कि गुरुत्वाकर्षण तथा विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र एक ही बल के दो रूप हैं।

आइन्स्टीन के अनुसार विज्ञान में कोई निश्चितता नहीं है, न समय का ही परिमाण निश्चित है।

योग्यता प्रश्न

1. Write a brief Essay on the following :—
   निम्नलिखित पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए :—
   - (a) The Universe—old and the modern concept about it.
     विश्व और उसके प्रति प्राचीन तथा आधुनिक विचार।
   - (b) Newton's Synthesis about Universe.
     विश्व के प्रति न्यूटन की विचार धारा।
   - (c) Ancient Science
     प्राचीन विज्ञान।
   - (d) Parallel growth of practical arts and theoretical speculation.
     प्रयोगिक कलाओं तथा सिद्धान्तिक कल्पनाओं की समानान्तर वृद्धि।
   - (e) Development of ideas about Elements.
     तत्त्वों के प्रति विचार धारा की प्रगति।
   - (f) Spontaneous generation of life.
     जीवन की स्वतः उत्पत्ति।
   - (g) Darwin and the idea of change.
     डार्विन और परिवर्तनशीलता।
   - (h) Structure of an atom,
     परमाणु रचना।

(i) Atom for Peace.
शान्तिमय कार्यों के लिए परमाणु ।

(j) Atomic Energy.
परमाणु-शक्ति ।

(k) Theory of Relativity.
अपेक्षा-वाद सिद्धान्त

2. Write short notes on the following.
निम्नलिखित पर टिप्पणियां लिखिए :—

(a) Beliefs Prevalent for the Phenomenon of Nature when there was no Scientific outlook.
प्राकृतिक घटनाओं के प्रति उस समय के विचार जब वैज्ञानिक दृष्टिकोण के समावेश का अभाव था ।

(b) All phenomenon of nature are governed by some regular rules.
प्रकृति के सारे कार्यों में नियमितता है ।

(c) The three contemporary Civilizations in ancient times.
प्राचीन काल की तीन समकालीन सभ्यताए

(d) Aristotlerian idea of Concentre invisible spheres and Ptolemaic System.
एक केन्द्रीय अदृश्य गोलों का विचार तथा टाल्मी की पद्धति ।

(e) The Geocentric and Heliocentric views about the Universe.
विश्व के प्रति भूकेन्द्रवादी तथा सूर्यकेन्द्रवादी सिद्धान्त ।

(f) Universe is expending.
विश्व फैलता जा रहा है ।

(g) Universal Gravitation.
विश्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण शक्ति ।

(h) Newton's Relativity.
न्यूटन का आपेक्षवादी सिद्धान्त ।

(i) Descent with modification.

रूपान्तर सहित वंशपरम्परा ।

(j) The structure of an atom is like a miniature Solar System.
परमाणु की रचना एक छोटे सौर-मण्डल के सदृश है ।

(k) Space-time continuum.
आकाश समय की अविछिन्नता ।

(l) Quantum theory.
प्रमात्रा सिद्धान्त ।

3. Fill in the blanks by selecting a suitable word from the words given with each in brackets :—

उन शब्दों में से जो प्रत्येक वाक्य के साथ कोष्ठकों में दिए गए हैं एक शब्द चुन कर वाक्य की पूर्ति कीजिए।

(i) ....is the heavier of the two particles, Electron and Proton. (Electron Proton.)
इलैक्ट्रोन और प्रोटोन में से..........अधिक भारी है ।
(इलैक्ट्रोन, प्रोटोन)

(ii) All Substances are composed of tiny particles called — — — — — (Cells, Electrons, molecules)
सारे पदार्थ जो छोटे तत्वों से बनते हैं— ....कहलाते हैं ।
(कोष, तत्व, अणु)

(iii) The names associated with our knowledge of the Solar System are Copernicus,.........and Newton.
(Darwin. Dalton, Galileo)

सौर-मण्डल के ज्ञान सम्बन्धी जो नाम हैं वह है कापरनिकस,.........,
तथा न्यूटन, (डार्विन, डाल्टन, गैलीलियो)

(iv) Stars appear to move because of the movement of ...... (Sun, Earth, Galaxy)

नक्षत्र······ के घूमने के कारण घूमते दीख पड़ते हैं।

(सूर्य्य, पृथ्वी, तारापुंज)

(v) The Star nearest to the earth is..........

(Pole Star, Sun, Sirius)

पृथ्वी के सबसे अधिक पास········नक्षत्र है।

(ध्रुवतारा. सूर्य्य, सीरियस)

(vi) ......Is the fastest thing in the world.

(Mercury, light, Sound)

·········संसार में सबसे अधिक वेग से चलने वाली वस्तु है।

(बुद्ध, प्रकाश, ध्वनि)

(vii) The largest planet is called.........
and the one with rings around it.........

(Saturn, Jupiter, Neptune)

सब से बड़े ग्रह का नाम·······है, और जिसके चारों ओर कुण्डलियां हैं·········कहलाता है।

(शनि, वृहस्पति, वरुण)

(viii) $E=mc^2$ is connected with the name of.

(Kepler, Newton, Einstein)

$E=mc^2$·········के नाम से सम्बन्धित है।

(केप्लर, न्यूटन, आइन्सटीन)

(ix) Light is made up of a large number of extremely small particles known as photons was said by............

(Newton, Democritus, Einstein)

"प्रकाश अनेकों सूक्ष्म कणों, फोटोन्स का समूह है"। यह वाक्य कहा·········ने। था (न्यूटन, डेमोक्रिटस, आइन्सटीन)

Answer the following in "Yes" or "No":—

निम्नलिखित का 'हां' अथवा 'ना' में उत्तर दीजिए:—

(i) Astronomy was born after Christ.
ज्योतिष-शास्त्र का जन्म ईसा के पश्चात हुआ।

(ii) Planets are not wandering stars.
ग्रह भ्रमण करते हुए नक्षत्र नहीं है

(iii) The Sun travels from East to West in the sky while the Earth stands still.
सूर्य आकाश में पूर्व से पश्चिम की ओर जाता है जबकि पृथ्वी स्थिर रहती है।

(iv) The Sun is closer to the Earth than the Moon.
चन्द्रमा अपेक्षाकृत सूर्य पृथ्वी के अधिक पास है।

(v) An observer from the Moon would find the Earth a shining object.
चन्द्रमा के ऊपर एक निरीक्षक को पृथ्वी चमकती हुई वस्तु मालूम पड़ेगी।

(vi) Light year is a unit for measuring distance.
दूरी नापने के लिए 'प्रकाश वर्ष' एक इकाई है।

(vii) The Stars appear to be smaller than the Sun because of their longer distances from the Earth.
नक्षत्र सूर्य से छोटे दीख पड़ते हैं क्योंकि वे पृथ्वी से अधिक दूरी पर हैं।

(viii) Einstein is the author of the famous atomic theory.
प्रसिद्ध परमाणु-सिद्धान्त के प्रवर्तक आइन्सटीन थे।

(ix) All things are made of the four elements Earth, Fire, Air and Water.
प्रत्येक पदार्थ पृथ्वी, अग्नि, वायु और जल इन्हीं चार तत्वों का बना हुआ है।

(x) Democritus is the name of a Babylonion Astronomer.
डिमोक्रिटस एक बेबीलोनिया के ज्योतिषी का नाम है।

(xi) An atom can be seen only with a powerful microscope.
परमाणु को हम केवल एक शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शक यंत्र के द्वारा ही देख सकते हैं।

(xii) There are more than hundred elements known to us.
हमें एक सौ से भी अधिक तत्वों की जानकारी है।

अध्याय २

वैज्ञानिक पद्धति

(The Scientific Method)

जिज्ञासा ज्ञान का आधार है। विज्ञान का उदय उस समय होता है जब मानव मस्तिष्क में वस्तुओं की प्रकृति के विषय में प्रश्न उठते हैं और वह उनके सम्बन्ध में उत्तर ढूंढने का प्रयत्न करता है। इसलिये मनुष्य ने ऐसे प्रश्नों को चुना जो उसे अधिक रुचिकर थे और इस प्रकार उसने अनेक वस्तुओं के विषय में ज्ञान बढ़ाया।

विज्ञान का अनेकों प्रकार से स्पष्टीकरण किया गया है, परन्तु उसकी कोई एक सही परिभाषा उपलब्ध नहीं है। किसी वस्तु का सही ज्ञान प्राप्त करना ही विज्ञान है। इस प्रकार विज्ञान किसी वस्तु का सही ज्ञान है, अथवा मनुष्य द्वारा परिक्षित अनुभव है। आज विज्ञान एक सुव्यवस्थित ज्ञान के रूप में जाना जाता है। यदि ज्ञान की तुलना ईंटो से की जाय तो विज्ञान एक कारीगरी है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि एक प्रशिक्षित तथा संगठित ज्ञान है। विज्ञान हमें संसार का, जिसमें हम आज रहते हैं, एक सामान्य ज्ञान प्रदान करता है।

विज्ञान और प्रकृति में एक घनिष्ट पारस्परिक सम्बन्ध है। किसी वस्तु का अध्ययन उस वस्तु की प्रकृति से वैज्ञानिक अध्ययन नहीं बनता, किन्तु एक नियमित पद्धति द्वारा अध्ययन करना ही वैज्ञानिक अध्ययन कहलाता है।

पिछली चार शताब्दियों में विज्ञान ने महत्वपूर्ण प्रगति की है। प्राचीन मनुष्य ने अधिक वैज्ञानिक प्रगति नहीं की; क्योंकि उसने प्रकृति के रहस्यों के समाधान ढूंढने के लिये गलत तरीके अपनाये थे। वह सिर्फ अपनी कल्पना के आधार पर ही इन समाधानों को ढूंढने का प्रयत्न करते थे।

उन्होंने अधिक विचार न करके, अपूर्ण आंकड़ों के आधार पर ही अनेक समस्याओं सम्बन्धी निष्कर्ष निकाले और कभी कभी तो यह सिद्धान्त किसी भी

तथ्य पर आधारित नहीं होते थे। यद्यपि यह सिद्धान्त गलत होते थे फिर भी वह उन्हें गलत स्वीकार करने में हिचकिचाते थे। विज्ञान का इतिहास इस प्रकार की त्रुटियों से भरा पड़ा है और यही कारण है कि प्राचीन दार्शनिक प्राकृतिक रहस्यों को सही रूप से नहीं समझ सके।

इसके विपरीत आधुनिक विज्ञान ने बहुत अधिक उन्नति की है क्योंकि आधुनिक वैज्ञानिकों ने प्रकृति को समझने के लिये एक सही पद्धति को अपनाया है जिसे वैज्ञानिक पद्धति कहा जाता है। वैज्ञानिक पद्धति कोई सीमित एवं निश्चित प्रणाली नहीं है किन्तु यह एक ऐसी प्रणाली है, जिसका निरन्तर विकास होता रहा है और विज्ञान के समान इसकी भी कोई एक निश्चित एवं सही परिभाषा देना कठिन है। इसमें अनेक क्रियायें सम्मिलित हैं जिनमें से कुछ मानसिक एवं कुछ शारीरिक हैं। इन्हीं क्रियाओं द्वारा मनुष्य ने अपने मस्तिष्क में उठने वाले प्रश्नों का हल निकाला। वैज्ञानिक पद्धति मानव मस्तिष्क की कार्यशीलता का प्रतीक है। संयम, चिन्तन तथा कार्यशीलता का यह एक मिलन है। यह एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा सब क्रियाओं के कारण मालूम किये जाते हैं और फिर इन कारणों को निश्चित तथा सही रूप में समझा जाता है। वास्तव में वैज्ञानिक पद्धति और उन साधारण पद्धतियों में अधिक अन्तर नहीं है, जिनसे मनुष्य अपनी दैनिक समस्याओं का हल प्राप्त करता है। इनमें इतना ही अन्तर है जितना एक दुकानदार और एक रसायनज्ञ के द्वारा तोलने की क्रियाओं में होता है। दुकानदार अपनी साधारण तराजू से सामान तोलता है जबकि रसायनज्ञ अपने उपयोग में अत्याधिक सही भार का ज्ञान कराने वाला बैलेन्स प्रयोग में लाता है। वास्तव में एक दुकानदार की तराजू और एक रसायनज्ञ के बैलेन्स के कार्यप्रणाली के सिद्धान्तों में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु रसायनज्ञ द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले बैलेन्स में वस्तु के सूक्ष्म भार का ज्ञान भी अच्छे एवं सही रूप में हो जाता है।

प्राकृतिक क्रियाओं को वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा अध्ययन करने का कार्य फ्रान्सिस बेकन (Fancis Bacon) ने सर्वप्रथम आरम्भ किया, यद्यपि वह एक वैज्ञानिक नहीं था। फ्रान्सिस बेकन (१५६१—१६२६) का जन्म लन्दन के मार्कशायर में जनवरी १५६१ में हुआ था। इनके पिता इंगलेण्ड की प्राशासनिक सेवा के क्षेत्र में एक उच्च अधिकारी थे। फ्रान्सिस बेकन अपनी बाल्यावस्था में काफी बुद्धिमान थे और इसी कारण रानी अलीजबैथ भी उनसे बातें करने में अधिक आनन्दित होती थी। बड़े होकर वह वकालत का कार्य करने लगे। यद्यपि बेकन एक योग्य और

सी सीमा तक एक सफल वकील एवं राजनैतिक थे, लेकिन उनका हृदय उस कार्य नहीं था। उनकी एक सबसे बड़ी अभिलाषा एवं रुचि इसी बात में थी कि वे सी प्रकार एक ऐसी प्रणाली का प्रतिपादन करें जिससे प्राकृतिक शक्तियों पर नुष्य नियन्त्रण प्राप्त कर सके और उन्हें सफलता पूर्वक अपने प्रयोग में ला सके। ज्ञानिक ज्ञान के अभाव के कारण उस समय प्रकृति पर मनुष्य का कोई नियन्त्रण हीं था। बेकन को पूर्ण विश्वास था कि मनुष्य का प्रकृति पर नियन्त्रण इस कारण ही है कि मनुष्य का मस्तिष्क अपूर्ण है या प्राकृतिक क्रियायें अत्यधिक जटिल हैं रन्तु ऐसा इसलिये है कि मनुष्य प्रकृति पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिये गलत रीकों को अपनाता रहा है। उसे इस बात का भी पूर्ण विश्वास था कि उसे ऐसी द्धति का ज्ञान है जिसको बड़े पैमाने पर अपनाने पर मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों पर यन्त्रण प्राप्त कर सकेगा और उसके ज्ञानवर्धन की कोई सीमा नहीं रहेगी।

इस क्षेत्र में बेकन के सर्व प्रथम कार्य उसकी "Advancement of earning" (1603) नामक कृति में उपलब्ध होते हैं। इस पद्धति को बेकन ने पनी दूसरी कृति "Novum Organum" (1620) में अधिक स्पष्ट रूप से मझाया है। "Novum Organum" का अर्थ नये यन्त्र है। इससे पूर्व अरस्तु ने य को भी "Organon" कृति में प्रकृति नियन्त्रण सम्बन्धी विचारों का ल्लेख किया था—वे प्राचीन यन्त्र कहलाते थे। जिस प्रकार विभिन्न यन्त्र हायता पहुंचाते हैं उसी प्रकार वैज्ञानिक पद्धति मस्तिष्क को सहायता पहुंचाने में ार्यशील होती है। इस पद्धति को स्पष्ट करने से पूर्व बेकन ने प्राचीन दार्शनिकों की न त्रुटियों का विश्लेषण किया जो विज्ञान की प्रगति में बाधक थी। बेकन ने इन ुटियों को अनेकों रूप में देखा जैसे प्राचीन दार्शनिकों में क्रियाओं को समझने की मी थी क्योंकि वे विज्ञान के तथ्यों को महत्व नहीं देते थे। वे अपनी व्यक्तिगत चि एवं घृणा के आधार पर प्राकृतिक क्रियाओं सम्बन्धी धारणायें प्रतिपादित रते थे। इन सबका अध्ययन करने के पश्चात् बेकन इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ाकृतिक शक्तियों पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त करने के लिये इन सब त्रुटिपूर्ण प्रणालियों ो हमेशा के लिये त्याग देना होगा और तब ही विज्ञान की प्रगति सम्भव हो केगी। इसी कारण बेकन ने प्राचीन ज्ञान को कोई महत्व नहीं दिया, क्योंकि उसके ाधार पर एक भी वैज्ञानिक खोज नहीं हो सकी थी।

वैज्ञानिक, प्राकृतिक क्रियाओं के पीछे छिपे हुए वैज्ञानिक सिद्धान्त को ज्ञानिक पद्धति द्वारा प्रस्तुत करता है। इस कार्य प्रणाली में उसे कुछ तर्क अपनाने ड़ते हैं। ये वैज्ञानिक तर्क निम्न प्रकार के होते हैं :—

१. अनुरूपता पर आधारित तर्क (Analogical reasoning).

२. निगामी पद्धति (Deductive reasoning).

३. उद्गामी पद्धति (Inductive reasoning).

१. अनुरूपता पर आधारित तर्क :—इस प्रकार के तर्क में वैज्ञानिक प्रकृति में कुछ विशिष्ट क्रियाओं का निरीक्षण करता है और उसके आधार पर एक विशिष्ट निष्कर्ष पर पहुंचता है। वह From particular to particular पर चलता है। इस प्रकार के तर्क से उन भूतकाल की क्रियाओं को समझाने का प्रयत्न किया जाता है जिनका वर्तमान में कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता है। उदाहरणार्थ प्रकृति में उपस्थित चट्टानों में होने वाली विखण्डन (विमोचन) की क्रियाओं का निरीक्षण करके पृथ्वी की उत्पत्ति एवं उसकी आयु के विषय में ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार वैज्ञानिक एक विशिष्ट क्रिया के निरीक्षण के आधार पर एक विशिष्ट निष्कर्ष पर पहुँचता है।

२. निगामी पद्धति :—इस प्रकार के तर्क में एक सामान्य निरीक्षण के आधार पर एक विशिष्ट निष्कर्ष पर पहुँच जाता है। (From general to particular). इस प्रकार के तर्क का सहारा लेकर डारविन ने प्राकृतिक वरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। उसने प्रकृति में सामान्य रूप से जब जगह पाये जाने वाले जीवों का निरीक्षण किया और उसके आधार पर प्राकृतिक चुनाव का विशिष्ट सिद्धान्त बनाया। इस प्रकार के तर्क का गणित में अत्याधिक उपयोग होता है पर इनका सही रूप में उपयोग न करने पर इससे गलत निष्कर्ष निकलते हैं। अरस्तु ने इस प्रकार के तर्क का बहुत दुरुपयोग किया था और इसलिये अनेकों गलत सिद्धान्त प्रतिपादित किये थे।

३. उद्गामी पद्धतिः—यह एक प्रचलित तर्क है जिसमें एक अधिक लम्बी क्रिया सम्मिलित है। इस प्रकार के तर्क में एक विशिष्ट क्रिया के निरीक्षण के आधार पर एक सामान्य निष्कर्ष निकाला जाता है। (From particular to general). यह विशिष्ट क्रिया किसी प्रयोग के रूप में की जाती है। उदाहरणार्थ प्रयोग के द्वारा मालूम किया गया है कि नमक में एक हिस्सा सोडियम तथा एक हिस्सा क्लोरीन होता है। इसका अर्थ है कि इस प्रकार की रचना का कोई भी पदार्थ हमेशा नमक ही होगा।

वैज्ञानिक आज उद्गामी (Induction) तथा निगामी (Deduction) क्रियाओं के द्वारा कार्य करते हैं और इस कार्य के द्वारा वे प्राकृतिक क्रियाओं सम्बन्धी सामान्य नियम (natural laws) प्रतिपादित करते हैं, जिनके आधार पर वह उपकल्पना (hypothesis) और सिद्धान्त (Theories) बनाते हैं। किसी भी वैज्ञानिक खोज में सफलता प्राप्त करने के लिये यह पद्धति अपनाना आवश्यक है। हम इस प्रणाली का अपने दैनिक जीवन में भी उपयोग करते हैं। एक छोटे से उदाहरण से यह स्पष्ट किया जा सकता है कि यदि हम फल खरीदने जायें और किसी सेब को चखने पर खट्टा पायें जो साथ में हरा और कठोर भी हो और दूसरा सेब चखने पर भी हम

पायें कि वह हरा, कठोर और खट्टा है; तो फिर हम इस ही प्रकार के तीसरे सेव को बिना चखे ही छोड़ देते हैं क्योंकि अब हम यह निर्णय निकाल सकेंगे कि यह सेव भी खट्टा होना चाहिये। इस प्रकार इन सेवों को खरीदने की क्रिया में हमने जो पहिला कार्य किया वह उद्गामी क्रिया थी और अपने दो अनुभवों के आधार पर यह मालूम किया कि सेवों में हरेपन और कठोरपन के साथ उनमें खट्टापन भी पाया जाता है। हमारा पहिला अनुभव दूसरे अनुभव के द्वारा ठीक सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार एक सामान्य तथ्य यह निकलता है कि हरे और कठोर सेवों में खट्टापन भी पाया जाना चाहिये। इस प्रकार उद्गामी पद्धति के द्वारा हम एक नियम पर पहुँचे और इसके आधार पर हमने इस उदाहरण में एक विशिष्ट निष्कर्ष निकाला जो निगामी पद्धति पर आधारित था। आज यह प्रगामी इतनी महत्वपूर्ण पद्धति बन गई है कि केवल इसके द्वारा ही मानव अपने तर्क के आधार पर सत्य की खोज कर सकता है। घटनाओं को तो प्रत्येक मनुष्य देखता ही है और उन्हीं के आधार पर कुछ सामान्य धारणा बनाना भी स्वाभाविक ही है, परन्तु ऐसे सामान्य नियमों अथवा उपकल्पनाओं की सत्यता का परीक्षण करना आवश्यक है।

वैज्ञानिक विधि न किसी पुस्तक से न किसी परिचर्चा से सीखी जा सकती है। यह तो केवल किसी दक्ष सिखाने वाले के साथ साथ ही कार्य करने से स्वयं आ जाती है। यह विधि तो यही है कि किसी प्रमुख पहेली को विचाराधीन करके और उसके भिन्न भिन्न पहलुओं को सुलझा कर उसे पूर्ण रूप से हल किया जाए, परन्तु फिर भी इसकी निम्नलिखित अवस्थाएं हैं —

१. समस्या का अनुभव (Relization of a problem).
२. निरीक्षण तथा प्रयोग (Observation and Experiment).
३. तथ्यों को एकत्रित करना और उनका वर्गीकरण (Collection of facts and their classification).
४. उद्गामी क्रिया और उपकल्पना का निर्माण (Induction and formulation of a working hypothesis).
५. निगामी क्रिया (Deduction).
६. जाँच करना (Verification).

१. समस्या का अनुभव—प्रकृति में होने वाली प्रत्येक क्रिया किसी न किसी कारण पर आधारित होती है। एक साधारण मनुष्य को इस बात का अनुभव नहीं होता है और वह सोचता है कि एक प्राकृतिक क्रिया किसी विशेष रूप में इस लिये होती है क्योंकि इसे उस ही रूप में होना चाहिये। यह सोचने का तरीका बहुत ही अवैज्ञानिक है। इसके प्रतिकूल एक वैज्ञानिक अपनी जिज्ञासा के फल स्वरूप प्राकृतिक क्रियाओं के पीछे छिपी हुई समस्याओं को समझने का प्रयत्न करता

है और अपनी खोज के लिये एक समस्या स्वरूप समझता है । मनुष्य ने आदि से ही फलो को वृक्ष से नीचे गिरते हुये देखा है, किन्तु किसी ने भी इनके गिरने के कारणों को जानने की दिशा मे कोई ध्यान नहीं किया । सर्वप्रथम इस क्रिया ने न्यूटन का ध्यान आकर्षित किया और उसने यह जानने का प्रयत्न किया कि सेब टूट कर पृथ्वी की ओर नीचे क्यों गिरा और वह ऊपर आसमान की ओर क्यों नहीं गया । इसका अन्तिम परिणाम प्रसिद्ध गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त के रूप में सामने आया । इस ही प्रकार गेलीलियो के समय से पूर्व ऐसी मान्यता थी कि यदि दो भिन्न भारवाली वस्तुयें एक साथ समान ऊँचाई से गिराई जायें तो वे पृथ्वी पर विभिन्न समय के बाद गिरेंगी । गेलीलियो ने इसे नही माना और सत्य को समझने के लिये उसने पीसा की झुकी मीनार से अपना प्रसिद्ध प्रयोग किया । कभी ऐसा भी होता है कि किसी अमुक पहेली पर कार्य करते हुए एक अन्य नई पहेली उठ खड़ी होती है, जैसे कि क्रूक्स नलिका (Crooks' Tube) पर प्रयोग करते समय रॉंजन (Rontgea) को एक्स किरणों की पहेली सूझ उठी । इसी प्रकार लेवाय ज़ियर (Lavoisler) यह प्रयोग कर रहा था कि जलने की विधि से वायु का क्या सम्बन्ध है और इसी बीच मे उसे यह सूझ पडा कि वायु मे जो इतनी अधिक मात्रा में नाइट्रोजन है उससे नाइट्रोजन यौगिक पदार्थ किस प्रकार बनाए जाऐ—इससे वायु की नाइट्रोजन तथा हाइड्रोजन से रसायनिक विधि से अमोनिया बनाने मे सफलता प्राप्त हुई । रासायनिक नील (Indigo) का रंग पहिले पहल जर्मनी के लोगो ने बनाया था —इसके बनाने मे एक ऐसी अवस्था आ गई कि प्रतिक्रिया की गति अति मन्द होती थी और इन रंगो की व्यापारिक सफलता की आशा न थी । सयोग वश उस क्रिया के होते समय उसमे एक थर्मामीटर टूट गया और उसके टूटते ही प्रतिक्रिया का वेग एकदम तीव्र हो गया जो टूटे हुए थर्मामीटर के पारे की उपस्थिति के कारण हुआ । इसी सफलता से प्रयोगों मे प्रगति होने लगी । सर एलैक्जैण्डर फलेमिंग (Sir Alexanler Fleming) जीवाणुओ की वृद्धि करने के प्रयोग कर रहा था कि उसने यह देखा कि फफूंद की उपस्थिति मे कीटाणुओ की वृद्धि ही नहीं हुई बल्कि वे मृत्यु को भी प्राप्त हो गए । तभी उसने यह मालूम किया कि वह फंफूद एक रासायनिक पदार्थ पैनीसिलिन बनाती है जो अनेको रोगोत्पादक जीवों के लिए विष होती है । इसी से रोगाणु निरोधक औषधियो की खोज हुई । इसी प्रकार ग्रहम् बैल (Grahm Bell) और उनके सहकारी वाटसन (Watson) ध्वनि सम्बन्धी तार पर कुछ कार्य कर रहे थे । वाटसन के कमरे में तारके सिरे वाले यंत्र पर एक कमानी (Spring) खराब हो गई और वह काम नही दे रहा था । उस कमानी को निकाल कर वाटसन उसे हथौड़े से पीटने लगा । यह शब्द उन तार के दूसरे सिरे पर ग्रहम् को अपने कमरे मे सुनाई पड़ा । वह दौड़ कर वाटसन के

पास आया और कहा कि फिर से हथौड़े की चोटें लगाएं । ग्राहम् ने वह शब्द फिर से सुने । उसे यह निश्चय हो गया कि जब निरर्थक शब्द इस प्रकार सुनाई पड़ सकता है तो सार्थक शब्द सुनने में कोई कठिनाई नही होनी चाहिए और इससे टेलीफोन का आविष्कार हुआ ।

२. निरीक्षण तथा प्रयोग.—किसी समस्या को समझ लेने के उपरान्त यह एक दूसरी सीढ़ी है । प्राचीन काल मे मूढ़ विचार और अन्ध विश्वास प्रचलित थे । इसी कारण किसी प्रकार की वैज्ञानिक प्रगति न हो पाई । ऐसे विचारों का विरोध भी करते हुए भय लगता था । आधुनिक समय मे ऐसा विचार बिना निरीक्षण किए नही किया जाता । कोई भी नई घटना पत्रिकाओ मे छपवा दी जाती है जिससे जन साधारण उसकी सत्यता की जाच कर सके । किसी भी पहेली को सुलझाने के लिए उसे छोटे छोटे भागो मे विभाजित कर लिया जाता है और प्रत्येक भाग का उत्तर प्राप्त करने हेतु प्रयोग किए जाते हैं । इन समस्त उत्तरों को फिर सजोजित करके उस पहेली को सुलझाने का प्रयत्न किया जाता है । इन प्रयोगों के लिए यत्रों की भी सहायता लेनी पड़ती है—दूरवीक्षण यत्र से दूर की वस्तुएं इतनी स्पष्ट दिखलाई पड़ती हैं कि नग्न आंखों से वे नहीं दीख पड़ती । इसी प्रकार सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवो को भली प्रकार अणुवीक्षण यंत्र के द्वारा देखा जा सकता है । थर्मामीटर, स्टोप-वाच आदि के द्वारा अल्प भेदों को यथार्थ रूप मे स्पष्ट किया जा सकता है ।

(३) तथ्यों का एकत्री करण और उनका वर्गीकरण :—

वैज्ञानिक अपना जीवन ज्ञान के विकास के हेतु व्यतीत करता है । वह निरीक्षण और व्यवस्थित प्रयोगों के आधार पर तथ्य एकत्रित करता है । वह बड़ी लगन के साथ इस दिशा में प्रयत्नशील रहता है । उसके निरीक्षण और नाप तोल अनेकों प्रकार के प्रयोगों पर आधारित होते हैं और नए तथ्यों को खोजने एवं उनकी वृद्धि करने में वह कोई भी कसर नहीं छोड़ता है । इटली के प्रसिद्ध खगोलशास्त्री टाइकोब्राहो (Tycho Brahe) ने ग्रहों की गति सम्बन्धी बहुत सही आंकड़े एकत्रित किए थे । उसके प्रतिभाशाली शिष्य केंपलर (Kepler) ने उन आंकड़ों मे और अधिक वृद्धि की और उनका उपयोग ग्रहों की गति सम्बन्धी नियमों के प्रतिपादन के लिए किया ।

इस प्रकार एकत्रित किये तथ्यों की सावधानी से जांच की जाती है और फिर उनका वर्गीकरण किया जाता है । वर्गीकरण करने का उद्देश्य यह है कि इसके द्वारा समस्या से सम्बन्धित उपयुक्त तथ्यों को विचाराधीन रख लिया जाता है और अनुपयुक्त तथ्यों को छोड़ दिया जाता है । यदि तथ्यों का वर्गीकरण न किया जाए तो

(Charles Darwin) ने बीगल (H.M.S Beagle) नामक जहाज द्वारा पांच वर्ष तक ससार भ्रमण किया और इस समय मे उस ने जीवधारियों की रचना तथा स्वभाव का अध्ययन किया और उससे सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित किया, परन्तु उनको वर्गीकरण करके उनके पारस्परिक सम्बन्धों को भलीभांति समझने के लिए उसे लगभग बीस वर्ष से भी अधिक समय लगा । इसका परिणाम डारविन की प्रसिद्ध रचना "जीवों का प्राकृतिक वरण द्वारा विकास" (Origin of Species by Natural Selection) नामक पुस्तक के रूप में सामने आया ।

३. **उद्गामी क्रिया और उपकल्पना का निर्माण** .—आधुनिक वैज्ञानिक अपनी समस्या से सम्बन्धित आंकड़े और अच्छी प्रकार निर्धारित, सही तथा उपयुक्त तथ्यों के बारे में निश्चिन्त होकर, उद्गामी क्रिया के द्वारा उनका सामान्यीकरण करने की दिशा में अग्रसर होता है। दूसरे शब्दों मे यह कहा जा सकता है कि वह सब तथ्यों को एक सामान्य घोषणा (General Statement) के रूप में प्रदर्शित करता है, जो उन तथ्यों को ही आवरण प्रदान नहीं करता परन्तु उससे सम्बन्धित अन्य नये तथ्यों को भी सामने लाता है। इस प्रकार की सामान्य घोषणा एक उपकल्पना (Working hypothesis) कहलाती है । यह उपकल्पना एक समस्या का सम्भावित हल होता है, जो जाच करने पर यदि सही सिद्ध न हो तो उसे हटा दिया जाता है और उसके स्थान पर एक नयी उपकल्पना का निर्माण किया जाता है, और यह क्रिया उस समय तक चलती रहती है जब तक एक ऐसी उपकल्पना की स्थापना न हो जाए जो जाच करने पर सही सिद्ध हो। फ्रांस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक लुई पास्चार (Louis Pasteur) ने यह मालूम किया कि रेशम के कीड़ों में रोग कुछ कीटाणुओं द्वारा होते है । इस विचार को लेकर वे आगे बढ़े और इस बात की सम्भावना का अनुभव किया कि मनुष्य के रोग भी ऐसे कीटाणुओं द्वारा ही उत्पन्न होने चाहिए और इस रूप में इन्होंने एक उपकल्पना का निर्माण किया जो आगे चल कर सही सिद्ध हुई, और जिसने रोगों का कीटाणु सिद्धान्त (Germ theory of disease) का रूप ग्रहण किया ।

(५) **निगमनी क्रिया** :—उपकल्पना से तर्क के नियमों के आधार पर विभिन्न निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इन निष्कर्षों का नये प्रयोगों के द्वारा निरीक्षण किया जाता है। यदि ये निष्कर्ष और प्रयोगों के परिणाम मिल जाते हैं तो पूर्वकल्पना ठीक सिद्ध हो जाती है, अन्यथा उसे रद्द कर दिया जाता है और उसके स्थान पर एक नयी सम्बन्धित उपकल्पना का निर्माण किया जाता है।

(६) **जांच करना** (*Verification*) :—जब उपकल्पना से प्राप्त कुछ के निष्कर्ष सही सिद्ध हो जाते हैं तो उस उपकल्पना के सही होने की सम्भावना

बढ़ जाती है। इस प्रकार से सही सिद्ध हुई उपकल्पना सिद्धान्त (Theory) का रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार विज्ञान में सिद्धान्त उस उपकल्पना को कहा जाता है जिसकी सही होने की सम्भावना बहुत अधिक होती है या सिद्धान्त एक सिद्ध की हुई ऐसी सामान्य घोषणा (General Statement) है जो अनेक निरीक्षित एवं प्रयोगिक तथ्यों पर आधारित है। यदि एक उपकल्पना सही सिद्ध न हो तो उसे सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ पदार्थ और उर्जा के सम्बन्ध में आइन्सटीन के प्रसिद्ध विचार जो १६०५ में प्रतिपादित किए गए थे, १६३६ तक उपकल्पना मात्र ही रहे। १६३६ में जर्मन वैज्ञानिक हान (Hahn) तथा स्ट्रासमैन (Strassman) ने परमाणु का विखण्डन करके आइन्सटीन के विचारों को सही सिद्ध किया और इस प्रकार उपकल्पना ने एक सिद्धान्त का रूप लिया।

इसी प्रकार उसी सिद्धान्त से सम्बन्धित और नई खोजें होती रहती हैं और जब हर प्रकार से वह सिद्धान्त ठीक उतरता है तो वह 'नियम' बन जाता है।

उपकल्पना (Hypothesis) तो एक प्रकार का अनुमान है जो यदि ठीक हो तो अनेकों ठीक ठीक बातें उसस ज्ञात हो जाती है। एक सिद्धान्त (Theory) ऐसा अनुमान है जो भली प्रकार ठीक तथा सत्य सिद्ध हो चुका है, और एक नियम (Law) ऐसा अनेक तथ्यों पर लागू होता है जिनकी सत्यता सभी प्रकार सिद्ध हो चुकी है और जो संशय से परे है।

आधुनिक विज्ञान में निम्नलिखित दो बातें सम्मिलित की जाती है जिनमें भ्रम नहीं होना चाहिए :—

(१) विज्ञान के तथ्य

(२) विज्ञान की उपकल्पनाएं एवं सिद्धान्त

विज्ञान के तथ्य हमारे आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के आधार हैं। हम एक उपकल्पना या सिद्धान्त पर आने से पूर्व इन तथ्यों के विषय में खूब विचार करते हैं। इसलिए चाहे हमारे उपकल्पना या सिद्धान्त गलत सिद्ध हो सकते हैं किन्तु विज्ञान के तथ्य कभी नहीं बदलते। एक निश्चित समय पर ही वैज्ञानिक सिद्धान्त सही माना जा सकता है, किन्तु आगे आने वाले समय में इसके गलत सिद्ध होने की सम्भावना भी हो सकती है। डाल्टन का परमाणु सिद्धान्त सर्व विदित है इसे १८१० में सही माना जाता था, पर आगे आने वाले समय में वह सिद्धान्त पूर्ण प्रकार गलत सिद्ध कर दिया गया।

इस प्रकार वरिणत वैज्ञानिक पद्धति ही एक ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा प्रकृति के रहस्यों को समझा जा सकता है। वास्तव में आज की पद्धति बेकन और रेने डेकार्टस (Rene Descartes') की विधियों का निचोड़ है। डेकार्टस ने बेकन के समान ही काम किया था। "Discourse on Method" नामक कृति में भी प्रकृति के नियमों को समझने के नये तरीकों का उल्लेख किया गया है। बेकन ने वकील होने के नाते प्रमाणों पर अधिक बल दिया जबकि डेकार्टस ने एक गणितज्ञ होने के नाते तर्कों पर अधिक बल दिया। इस प्रकार डेकार्ट्स ने एक दिशा मे गलती की और बेकन ने दूसरी दिशा मे। बेकन ने तथ्यों को एकत्र करने के लिए अधिक जोर दिया और गणितीय तर्क की ओर कम या बिलकुल ध्यान नहीं दिया। डेकार्ट्स ने ठीक इससे विपरीत दिशा मे गलती की।

आगे आने वाले समय के प्रायोगिक वैज्ञानिकों ने इन दोनों वैज्ञानिकों के विचारो के आधार पर एक नई शैली को जन्म दिया और चार्ल्स बायल (Charsles Boyle) तथा न्यूटन जैसे महान वैज्ञानिकों ने बेकन द्वारा बताये हुये निरीक्षण और प्रयोगों की क्रिया का, तथा डेकार्ट्स द्वारा बताते हुये गणितीय तर्कों का, बहुत सफलता पूर्वक उपयोग किया।

विज्ञान की बदलती हुई धारणायें—
(The changing concepts and patterns of Science)

विज्ञान का उदय बेकन द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक पद्धति के बहुत समय पूर्व हो चुका था परन्तु विज्ञान की अधिक उन्नति नहीं हो सकी क्योंकि प्राचीन दार्शनिकों ने प्राकृतिक रहस्यों को समझने हेतु गलत तरीके अपनाये थे। वास्तव में विज्ञान का उदय उस समय हुआ जब मनुष्य ने प्रकृति का निरीक्षण किया और उन निरीक्षणों को प्रयोग में लाना प्रारम्भ किया। विज्ञान का इतिहास हस्तकला के इतिहास के साथ ही प्रारम्भ होता है क्योंकि हस्तकला विज्ञान की आधार शिला है। विज्ञान की वृद्धि के साथ ही सभ्यता की भी वृद्धि हुई। प्राचीन मानव विज्ञान का वास्तविक अर्थ न जानते हुये भी अपने पर्यावरण पर साधारण वैज्ञानिक तरीको के द्वारा नियन्त्रण प्राप्त करता था। इस अनजाने विज्ञान का प्रारम्भ इसके द्वारा दिन प्रतिदिन के अनुभवों के आधार पर हुआ था। उदाहरण के तौर पर आदि मनुष्य ने यह देखा कि कुछ घासों के बीज खाने के लिये विशेषतौर पर अच्छे हैं और इन बीजों से और अधिक घास भी उगाई जा सकती है। यदि उपयुक्त भूमि को घास उगाने के लिये काम मे लिया जाये तो घास और भी अधिक उगाई जा सकती है और यदि भूमि को कुछ खोद दिया जाये तो इन घासों की जड़ें भूमि में अधिक प्रवृष्ट करती हैं। इस प्रकार निरीक्षण और अनुभवों के आधार पर कृषि विज्ञान का प्रारम्भ हुआ। इस

प्रकार की क्रियाओं में मनुष्य को अनेकों व्यवहारिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा और इन व्यवहारिक समस्याओं का समाधान प्राप्त करने में मनुष्य के ज्ञान में अधिक वृद्धि हुई। यह ज्ञान वृद्धि निरीक्षण व उनके संग्रह तथा प्रणालियों के निर्माण स्वरूप भी हुई। धीरे-धीरे मानव ने प्राकृतिक रहस्यों को सुलझाने के लिये तर्कों का प्रयोग प्रारम्भ किया। तर्क अपनाने की क्रिया मनुष्य की एक बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जा सकती है। कुछ दार्शनिकों जैसे अरस्तु (Aristotle) ने निरीक्षण एव प्रयोगों को अपनी कार्य प्रणाली में सम्मिलित किया, जिनकी आधुनिक वैज्ञानिक भी सराहना करते है। अपने जीव विज्ञान सम्बन्धी कार्यों मे अरस्तु एक ऐसा वैज्ञानिक था, जिसने उद्गामी पद्धति अपनाई थी। वह इन विशिष्ट क्रियाओं तथा निरीक्षण के आधार पर सामान्य निष्कर्षो पर पहुँचा था, परन्तु ब्रह्माण्ड सम्बन्धी सिद्धान्तों के अध्ययन के लिये उसने निगामी पद्धति का ही अनुकरण किया था।

दार्शनिक तथा सैद्धान्तिक विश्लेषण की उसमे बडी तीव्र शक्ति थी, पर प्रयोगों द्वारा परीक्षा का उसने कभी प्रयत्न ही नही किया था। यह सब कुछ होते हुए भी वह ससार मे गिने चुने विद्वानो मे एक माना जाता था।

अरस्तु (Plato) ने मुख्य तौर पर विज्ञान में गणित का उपयोग किया। इस गणित का प्रयोग उसने केवल व्यवहारिक निष्कर्षों के निकालने के लिये ही नहीं किया, परन्तु इसका उपयोग उसने विचारो मे तर्क (logical thought) के महत्त्व को समझने के लिये भी किया, यद्यपि इन तर्कों का उपयोग उसने गलत रूप में किया, इस प्रकार की प्रवृति समस्त अन्धकार युग (Dark Age) और मध्यकालीन युग (Middle Age) मे प्रचलित रही।

प्रयोगिक विज्ञान की प्रगति की दिशा में कीमियागरों (Alchemists) ने एक महत्वपूर्ण योग दिया। यद्यपि इनके लक्ष्य बडे विचित्र थे, जैसे पारस पत्थर, अमृत एव सर्वघोलक का निर्माण करना परन्तु इनका योग दान महत्वपूर्ण माना जाता है क्योकि उन्होंने इन पदार्थों को प्रयोगो के आधार पर निर्माण करने की चेष्टा की।

सभी प्रारम्भिक वैज्ञानिकों को धर्म के विरोध का सामना करना पड़ा और यही कारण विज्ञान की प्रगति मे बाधक हुआ। धर्म का यह हस्तक्षेप सोलहवी शताब्दी तक चलता रहा पर फिर भी वैज्ञानिक विज्ञान की प्रगति मे लगे रहे। इसके फलस्वरूप कुछ महत्वपूर्ण वस्तुओं जैसे छपाई एव जहाजो का आविष्कार हुआ। जहाजों के उपलब्ध होने से यातायात मे वृद्धि हुई जिसके फलस्वरूप संसार की कुछ ऐसी भौगोलिक परिस्थितियो का ज्ञान हुआ जिनका कोई भी वर्णन उस समय तक नहीं

...ता था। कॉपरनिकस, टायको ब्राहे, केप्लर तथा गैलीलियो ने ब्रह्माण्ड सम्बन्धी
...य तथ्यों को सामने रखा। इसी प्रकार जीव विज्ञान में वेसेलियस तथा हार्वे आदि
...ने नई नई खोजें कीं।

गैलीलियो ने जो कुछ भी किया प्रयोग द्वारा उसे प्रमाणित किया और इसी
...रस्तु अरस्तू के उन भ्रामक सिद्धान्तों का, जिन्होंने मनुष्य के मस्तिष्क को जो प्राकृतिक
संसार की भिन्न भिन्न रीतियों के प्रति असन्तोष अंधेरे और अज्ञान में रखा हुआ था,
खण्डन करके अज्ञान के जाल से निकाला।

फ्रान्सिस बेकन आधुनिक प्रयोगिक विज्ञान के जनक माने जाते हैं, यद्यपि
उन्होंने स्वयं कोई प्रयोग नहीं किये थे। उनकी कृतियों में उन आवश्यक तत्वों की
झलक मिलती है जो आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के सिद्धान्त माने जाते हैं। उन्होंने
निगामी पद्धति को रद्द करके उद्गामी पद्धति का प्रारम्भ किया। उनकी प्रति-
पादित क्रिया में प्रगति के फलस्वरूप ही आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति का निर्माण हुआ।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण (The Scientific outlook)

विज्ञान का अर्थ जो आज अधिक प्रचलित है वह विज्ञान द्वारा सभ्यता को दी
हुई वस्तुयें जैसे मोटर गाड़ी, हवाई जहाज, रेडियो एवं रसायनिक उद्योगों के रूप में
हमारे सम्मुख आता है। इस विचार के फलस्वरूप हम वैज्ञानिकों को, तकनीकी जान-
कारों (Technicians) को तथा स्वयविज्ञान को विभिन्न तकनीकियों का समूह
मानने लगे हैं, लेकिन यह धारणा विज्ञान के मूल तत्व के प्रतिकूल है। ऐसी सीमित
दृष्टिकोण से विज्ञान के मूल स्वभाव को समझना कठिन है। विज्ञान का पहिला
कार्य प्रकृति की क्रियाओं को समझना है, न कि उन पर नियन्त्रण प्राप्त करना।
प्राकृतिक क्रियाओं को समझने की इच्छा रखना एक सर्व व्यापक लक्षण है और जो
मनुष्य ऐसी इच्छा रखता है उसमें एक वैज्ञानिक छिपा हुआ है। चाहे वह मनुष्य
... सामने न आये क्यों कि वह मुख्य रूप से वैज्ञानिक
एक अच्छे वैज्ञानिक/ ... को प्राकृतिक क्रियाओं को समझने से विज्ञान ने
कार्य को नहीं ... कि इसने मनुष्य के समझने की शक्ति में अधिक
बहुत है।
पूर्णता।

...ता फल नहीं रहा। वह मानव वाद की प्रेरणा
... और इसी के सहारे बड़े-बड़े आविष्कार किए।
... राष्ट्रीयता जैसी ... का त्याग करने लगा
... लगा है। उसके ... को ... हो गई
ही बदल गया है। विज्ञान ने मनुष्य को विचार

करने और समझने की एक ऐसी प्रणाली दी है, जिसने सब दूसरी प्रणालियों को पराजित कर दिया है। इस रूप में विज्ञान ने मनुष्यों के विचारों को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया है। यह दृष्टिकोण ही विज्ञान की आत्मा है।

विज्ञान और तकनीकी बहुधा एक दूसरे के पर्यायवाची शब्दों के रूप में समझे गये हैं। वास्तव में तकनीकी क्रियायें विज्ञान के सुव्यवस्थित होने से अनेक शताब्दियों पूर्व ही प्रचलित थीं। तकनीकी का मुख्य प्रयोजन नये आविष्कार करना व इन्हें सुधारने में है, जबकि विज्ञान का कार्य वस्तुओं के स्वभाव को समझते हुये ज्ञान वर्धन करना है। व्यवहारिक विज्ञान जो वैज्ञानिक पद्धति द्वारा प्रभावित हुये हैं, कला विज्ञान (Technologies) हैं और उनसे सम्बन्धित जानकारी रखने वाले तकनीकी जानकार (Technicians) कहलाते हैं। जहाँ तक वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त हैं, वे वैज्ञानिक हैं। एक तकनीकी जानकार को तब ही वैज्ञानिकवादी कहा जा सकता है जब कि उसमें क्रियाओं को प्रारम्भ करने की, उनमें पारस्परिक सम्बन्ध ज्ञात करने की, उनको वस्तुनिष्ठ करने की और उनके अर्थ को समझने की क्षमता उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि एक वैज्ञानिक में विज्ञान की वह मानसिक शक्ति होना आवश्यक है जिसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण कहा जाता है। (A man, with a Scientific outlook is bound to approach every problem with a sense of objectivity and reasonableness) विज्ञान का पण्डित समाज में आगे खोज कर सकता है वह अपने मन के अनुकूल व प्रतिकूल दोनों ही उदाहरण खोजता है, और यदि वह प्रतिकूल उदाहरणों की व्याख्या नहीं कर सकता तो अपने मत को बदलने को भी तत्पर रहता है। वह हठधर्मी नहीं करता—यही वैज्ञानिक दृष्टिकोण है, इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण तर्क करने की ऐसी पद्धतियों को जन्म दिया गया है जिसके आधार पर मनुष्य सब प्रश्नों के हल प्राप्त करता है। वह किसी बात को केवल विश्वास पर ही आधारित करके सन्तुष्ट नहीं होता, बल्कि उसका प्रमाण चाहता है। वह अपने को धोखा नहीं देता, न सहज में दूसरे के भुलावे में आता है। वैज्ञानिक के चित्त की एकाग्रता अर्जुन की सी होती है जिसमे लक्ष्य लगाते समय केवल उस वस्तु के अलावा, जिस पर लक्ष्य लगाया जाए और कुछ दिखाई नहीं देता।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण का एक विशेष लक्षण यह है कि मनुष्य वैज्ञानिक खोज करने के लिये, किसी प्राकृतिक क्रिया के प्रति, निजी स्वार्थ, व्यक्तिगत लगाव तथा घृणा से मुक्त रहता है। वह ईर्षा, द्वेष तथा संकल्प से रहित निष्काम भाव से कार्य करता हुआ केवल फल की ही ओर देखता है। इस कारण वैज्ञानिक दृष्टिकोण विचारों तथा दर्शन (Thought and Philosophy) की एक प्रणाली है। यह हमारी दैनिक क्रियाओं से अधिक सम्बन्धित भी है और उनसे पृथक भी। यह विचार

व्यक्त करने का एक ऐसा माध्यम है, जिसमें कल्पना का भी पूर्ण स्थान है परन्तु कल्पना का सम्बन्ध प्रत्यक्ष से रहता है। प्रत्यक्षक के आधार पर ही वैज्ञानिक की काल्पनिक मनोवृत्तियों में प्रगति होती है। अपनी कल्पना जब तक प्रत्यक्ष होती नहीं देख लेता तब तक उसे चैन नहीं मिलता। उसने केवल कल्पना की ऊंची उडान न उडकर वास्तविकता की कठोर भूमि पर चलना सीखा हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि वैज्ञानिक पद्धति का पूरा लाभ तब ही उपलब्ध हो सकता है जब कि वैज्ञानिक में एक वैज्ञानिकदृष्टिकोण से कार्य करता है। वह प्राचीन विचारों से प्रभावित नहीं होता तथा रूढिग्रस्त विश्वासों व सिद्धान्तों को मान्यता नहीं देता। यह आवश्यक नहीं कि एक वैज्ञानिक में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पाए जाये किन्तु एक साधारण मनुष्य भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण रख सकता है, और वह अपने क्षेत्र में उसका प्रयोग कर सकता है, यद्यपि उसका यह कार्य उसे एक वैज्ञानिक नहीं बनाता। विज्ञान ऊपर से चल कर नीचे नही आता। वह किन्ही विशेष निरीक्षित बातों को लेकर उनके प्रति फिर सामान्य नियम बनाने की खोज करता है। सत्य की खोज में विज्ञान एक विधि है जिसको मनुष्य ने अपनाया है और उसे पथप्रदर्शक समझा है।

योग्यता प्रश्न

1. Write a short essay on :—

निम्नलिखित पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए:—

(i) Methods of science or the scientific methods.

वैज्ञानिक पद्धति पर एक निबन्ध लिखिये।

(ii) The Principles Involved in the modern Scientific discoveries.

आधुनिक वैज्ञानिक खोजों के अन्तर्गत आने वाले सिद्धान्त।

2. Write short notes in about 100 words on the following :—

(a) What is a science ?
(b) Analogical Reasoning.
(c) Deductive Reasoning.
(d) Inductive Reasoning.
(e) Facts of Science.
(f) Theories or hypothesis of Science.
(g) Rene Descartes.
(h) Scientific outlook.
(i) The place of speculation in science.

निम्नलिखित पर लगभग सौ शब्दो में टिप्पणियां लिखिये:—

(क) विज्ञान का अर्थ।

(ग) निगामी पद्धति ।

(घ) उद्‌गामी पद्धति ।

(च) विज्ञान के तथ्य ।

(छ) वैज्ञानिक उपकल्पना अथवा सिद्धान्त ।

(ज) रेने डेकार्ट्स ।

(झ) वैज्ञानिक दृष्टिकोण ।

(ञ) विज्ञान मे कल्पना का स्थान ।

3. Objective Questions.

(i) Fill in the blanks.

(a) Modern scientific methods were propounded by..............

(b) Novum organum were written in 1620 by..........

(c) If novum organum stood for new instruments, then the organum stood for..........

(ii) Who among the three introduced the mathematical resoning in the Scientific methods ?

(a) Francis Bacon.

(b) Galelio.

(c) Rene Descortes.

(d) Issac Newton.

(iii) Who is responsible among the following to give importance to evidences in the Scientific methods ?

(a) Louis Pasteur.

(b) Charles Darvin.

(c) Einstein.

(d) Francis Bacon.

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये ।

(a) आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति का प्रतिपादन......................ने किया था ।

(b) नोवम ओरगेनम नामक कृति १६२० ई० में......................द्वारा लिखी गई थी ।

(c) यदि नोवम-ओरगेनम मे नवीन यन्त्रों की व्याख्या की गई थी तो ओरगैनम से.....................।

(ii) निम्नलिखित वैज्ञानिकों में से किसने वैज्ञानिक पद्धति में गणितीय तर्क का उपयोग किया।

(क) फ्रान्सिस बेकन
(ख) गेलीलियो
(ग) रेने डेकार्ट्स
(घ) आईजक न्यूटन

(iii) निम्नलिखित वैज्ञानिकों में से किसने वैज्ञानिक पद्धति में प्रमाणों के उपयोग पर अधिक बल दिया :—

(क) लुई पाश्चर
(ख) चार्ल्स डार्विन
(ग) आइन्सटीन
(घ) फ्रान्सिस बेकन

4. Answer in "Yes" or "No" :—
केवल 'हां' या 'ना' में उत्तर दीजिए :—

(i) In science speculation is more important than observation.
विज्ञान में निरीक्षण की अपेक्षा कल्पना का अधिक महत्व है।

(ii) Science is a collection of truths and nothing but the truths.
विज्ञान केवल सत्यताओं का ही एकत्रित किया हुआ ज्ञान है।

(iii) Science is chiefly concerned with the world of ideas.
विज्ञान मुख्यत: विचारों के संसार से ही सम्बन्धित है।

(iv) Science makes the Solution of impossible problems possible.
विज्ञान न सुलझनेवाली समस्याओं का सुलझाव सम्भव करता है।

—: ● :—

अध्याय ३

विज्ञान एवम् समाज

(Science and Society)

१. विज्ञान के रचनात्मक एवं विध्वंसात्मक उपयोग :

(Constructive and Destructive application of Science)

आज हम विज्ञान के युग में रहते है। यह सभी क्षेत्रों मे हमारे जीवन को प्रभावित कर रहा है। विज्ञान एवम् तकनीकी के साथ-साथ विज्ञान का हमारे जीवन पर पड़ने वाला प्रभाव भी और भी गहरा होता जा रहा है। विज्ञान ने हमें प्रकृति में कार्य करने वाली शक्तियों पर नियंत्रण करने की क्षमता प्रदान की है। हमे इस नियंत्रण का फल आरामदायक जीवन के रूप मे प्राप्त हुआ है। इसने हमारे सामाजिक एव आर्थिक जीवन को प्रभावित कर अधिक सभ्य समाज के निर्माण मे सहयोग दिया है। वास्तव मे विज्ञान एक ऐसा साधन है जिसे अच्छे एवं बुरे दोनो ही प्रकार के कार्यो के लिए प्रयोग मे लिया जा सकता है। यदि एक ओर विज्ञान ने हमारे जीवन को अधिक सुरक्षित, आरामदायक एव स्वस्थ बनाया है, तो दूसरी ओर इसने मानव समाज को सम्पूर्ण विनाश के कगार पर भी लाकर खड़ा कर दिया है। किन्तु यहा हमे यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि विज्ञान के गलत उपयोग का उत्तरदायित्व, विज्ञान पर न हो कर, उसका प्रयोग करने वाले समाज और विशेषकर वैज्ञानिकों पर है।

विज्ञान का रचनात्मक प्रयोग (Constructive application of Science) :-

विज्ञान को किसी भी मानवीय आवश्यकता की संतुष्टि के लिए आवश्यक ज्ञान प्राप्त करने की एक विधि के रूप में समझा जा सकता है। प्राथमिक आवश्यकताएं विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं जैसे भोजन, आश्रय, स्वास्थ्य, मनोरंजन की आवश्यकताएँ आदि। इन के पश्चात् इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पादक उद्योगों, यातायात एवं संवादवाहन के साधनों तथा एक सभ्य

समाज के लिए उपयुक्त प्रशासनिक, आर्थिक एवं राजनैतिक ढांचे की आवश्यकता आती है। किन्तु हमें यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि समाज केवलमात्र जीवित ही नहीं रहता अपितु विकसित भी होता रहता है। पुरानी आवश्यकताओं को अधिक अच्छी प्रकार से पूरा करना होता है और नई आवश्यकताएं उत्पन्न होती रहती हैं। समाज की ये प्रवैगिक आवश्यकताएं राजनैतिक आन्दोलनों से प्रेरणाशक्ति प्राप्त करती हैं किन्तु अन्त में इन्हें साकार रूप प्रदान करने का कार्य विज्ञान द्वारा ही सम्पादित किया जाता है। इस पृथ्वी पर जहां मानव ने डर, युद्ध, अकाल, रोग तथा अकालिक मृत्यु से परिपूर्ण जीवन व्यतीत किया है वहां आज जीवन रहने योग्य हो गया है।

प्राथमिक आवश्यकतायें (Primary Needs) :—सामान्यतया यह अनुभव किया जाता है कि सामान्य परिस्थितियों में अब तक समाज अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं को भी बड़ी कठिनाई से ही पूरा कर पाता था। किन्तु विज्ञान की सहायता से अभी हाल ही में यह सम्भव हो सका है कि समाज कम परिश्रम एवं सुविधापूर्वक अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा कर सके। यहां तक कि इसे भी आधुनिक विज्ञान के द्वारा समग्र सीमा तक प्राप्त नहीं किया जा सका है और इसका कारण विज्ञान की कोई कमी न होकर हमारी सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में निहित कमियां ही हैं। डा० जे०डी० बरनल के अनुसार "मनुष्य जिस व्यवस्था के अन्तर्गत रहते हैं, वास्तव में, उसी के द्वारा उनकी मृत्यु की जाती है, या इसे अधिक सकारात्मक शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राथमिक आवश्यकताओं की पर्याप्त मात्रा में पूर्ति संसार के प्रत्येक व्यक्ति के औसत जीवन में बीस से लेकर तीस वर्ष तक की वृद्धि कर देगी।"

विज्ञान एवं भोजन (Science and Food) :—भोजन प्रथम एवं प्रमुख मानवीय आवश्यकता है। ऐसी गणना की गई है कि संसार में उपलब्ध अच्छी कृषि योग्य भूमि पर यदि सर्वोत्तम आधुनिक विधियों से कार्य किया जाए तो यह वास्तव में आवश्यक मात्रा के दुगने से लेकर बीस गुने तक खाद्य सामग्री की पूर्ति कर सकती है। इससे यह स्पष्ट है कि आधुनिक विज्ञान का उचित ढंग से उपयोग कर समाज की खाद्य समस्या का सरलता से हल किया जा सकता है। विज्ञान ने इस दिशा में काफी मात्रा में सफलता भी प्राप्त की है, किन्तु हमारे इस अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है।

यद्यपि सभ्यता के प्रारम्भिक काल से ही कृषि व्यवसाय तथा इसके ढंग प्रारम्भ हो गये थे, किन्तु केवल इन विगत सौ वर्षों के समय में ही भूमि, वनस्पति तथा पशु-पालन के सम्बन्ध में वैज्ञानिक अध्ययन किया जाकर तथा कृत्रिम खाद एवं कृषि में काम आने वाले वैज्ञानिक यंत्रों का निर्माण कर संसार के खाद्य-उत्पादन में वृद्धि की जा सकी है। यह वृद्धि केवल प्रति एकड़ उत्पादन बढ़ाकर ही नहीं अपितु कृषि योग्य भूमि के क्षेत्र को बढ़ाकर भी की गई है। शरीर विज्ञान एवं वंशानुक्रमण शास्त्र में होने वाले विकास, भोजन एवं कृषि में काम आने वाले जानवरों की नस्लों में सुधार लाकर, पशुपालन के क्षेत्र में बहुत बड़ा परिवर्तन ला सकते हैं। विज्ञान ने अणु शक्ति के प्रयोग के द्वारा भी पौधों एवं पशुओं की अधिक अच्छी नस्लें विकसित की गई हैं।

रसायनशास्त्रियों ने, फसलों को हानि पहुँचाने वाले जानवरों व कीड़ों तथा संग्रह कर रखे हुए अनाज को नष्ट करने वाले छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ों को मारने के लिए भी, विभिन्न प्रकार की कीटनाशक औषधियों का निर्माण किया है। अणु शक्ति के प्रयोग के द्वारा काफी लम्बे समय तक बहुत बड़ी मात्रा में खाद्यान्न एवं अन्य उपयोग की वस्तुओं को अच्छी हालत में रक्खा जा सकता है। यहाँ यह कहना अप्रासांगिक नहीं होगा कि अब द्रुतगामी यातायात के साधनों के विकास के कारण संसार के किसी भी अभावग्रस्त या पीड़ित क्षेत्र में शीघ्र ही भोजन वितरित किया जा सकता है।

विज्ञान एवं आश्रय (Science and shelter)—आदि काल में मनुष्य अपने शरीर को ढकने के लिए पेड़ों की पत्तियों एवं छालों का उपयोग करते थे तथा गुफाओं में रहा करते थे। आधुनिक युग में हुए इन विभिन्न प्रकार के विकासों के साथ आज व्यक्ति उस स्वरूप की कल्पना भी नहीं कर सकता। इसके बाद मनुष्य ने अपने वस्त्रों के लिए प्राकृतिक रेशों—जैसे सूती, ऊनी, सिल्क—का प्रयोग करना प्रारम्भ किया तथा आगे चलकर वैज्ञानिक तकनीकी के विकास के साथ-साथ इनमें सुधार किया। किन्तु जनसंख्या की वृद्धि के फलस्वरूप उत्पन्न वस्त्रों की माग को प्रकृति पूरा न कर सकी, अत वैज्ञानिकों ने कृत्रिम रेशों के बारे में सोचना प्रारम्भ किया। आजकल हम अपने शरीर को ढकने के लिए कृत्रिम रेशों के रूप में रेयोन, नायलोन तथा टैरीलीन का काफी मात्रा में उपयोग करते हैं।

विज्ञान ने मनुष्य को गुफाओं से निकालकर आधुनिक आरामदायक मकानों में लाकर बिठा दिया है। विज्ञान ने सुविधा एवं सुन्दरता की दृष्टि से मकानों की दशा में परिवर्तन करने के क्षेत्र में काफी मात्रा में कार्य किया है। इसने हमें मकानों के निर्माण के लिए सीमेंट एवं वस्तुओं के रूप में नई सामग्री प्रदान की है। अभी

तक ये सामग्रियाँ भी बिजली के अवरोधन तथा निर्माण कार्य की दृष्टि से पूर्ण विकसित नहीं हुई हैं। हमें वास्तव में ऐसी निर्माण सामग्री की आवश्यकता है जिसमें प्रकाश, ध्वनि एवं अग्नि प्रवेश न हो सके तथा जो वायु के झोकों में खड़ी रह सके और गर्मी एवं आवाज के विरुद्ध एक सुन्दर अवरोधक के रूप में कार्य कर सके। वास्तव में इन सब गुणों को लगभग पूरा करने वाली सामग्री तैयार की जा चुकी हैं।

प्लास्टिक तथा अन्य कृत्रिम वस्तुओं का उपयोग आधुनिक मकानों के निर्माण के विकसित स्तर का प्रतीक है। आकाश को छूती हुई अनेकों गगन-चुम्बी ऊँची ऊँची अट्टालिकाएँ अब वैज्ञानिक युग से पूर्व के व्यक्ति के लिए ही आश्चर्य की वस्तु है, आधुनिक मानव के लिए तो यह सामान्य वस्तु ही है। मकानों के निर्माण के क्षेत्र की यह प्रगति कस्बों एवं नगर योजना की प्रगति से भी सम्बन्धित हैं।

विज्ञान एवं स्वास्थ्य (Science and Health) —

प्रसन्न एवं सुखी जीवन के लिए आवश्यक तत्वों में से स्वास्थ्य एक महत्वपूर्ण तत्व है तथा इसके लिए संतुलित भोजन एवं उपयुक्त आश्रय की अवश्यकता होती है। भोजन एवं आश्रय में होने वाले विकास का हमारे स्वास्थ्य पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। बीमारियाँ जीवनकाल को कम कर स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालती हैं। महान वैज्ञानिक लूई पास्च्योर की खोज से पहिले बीमारियों का वास्तविक कारण अज्ञात था और इस कारण से अनभिज्ञ होने से उन पर नियंत्रण पाना भी कठिन था। इसके परिणामस्वरूप बहुत से व्यक्ति महामारी तथा अन्य बीमारियां से काल के ग्रास बन जाया करते थे। औषधि-विज्ञान तथा शल्य-चिकित्सा विज्ञान के विकास के कारण आज मानव को अनेक भयंकर बीमारियों के शिकंजे से मुक्ति मिल गई है। आधुनिक व्यक्ति अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ हो गया है, इसके परिणामस्वरूप मानव-जीवनकाल में भी पर्याप्त वृद्धि हो गई है। स्वास्थ्य के प्रश्न से निकट रूप से सम्बन्धित दूसरा प्रश्न जनसंख्या पर नियंत्रण पाने का है। इससे एक ओर समाज के जीवन स्तर में वृद्धि करने की दृष्टि से प्रेरणा प्राप्त हुई है। तथा इसके अतिरिक्त अधिक सख्या में बच्चों के जन्म होने से माता के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव होता है। इस प्रकार जन्म नियंत्रण की आधुनिक विधियां न केवल समाज की दृष्टि से ही लाभप्रद हैं अपितु इनसे माता का स्वास्थ्य भी ठीक रहता है।

विज्ञान एवं मनोरंजन (Science and Recreation) :—

विज्ञान के कारण मनुष्य का जीवन अधिकाधिक यन्त्रवत् बनता जा रहा है तथा वह अपने जीवन में नीरसता, थकावट एवं तनाव का अनुभव करता है।

ऐसे व्यक्ति को अपनी नीरसता एवं तनाव से छुटकारा पाने के लिए मनोरंजन के अधिक अच्छे एवं हृदय को प्रभावित करने वाले साधनों की आवश्यकता होती है। विज्ञान ने जीवन की इस कमी की चुनौती को स्वीकार कर रेडियो, टेलीविजन, चलचित्र, आतिशबाजी एवं विभिन्न प्रकार के खिलौने आदि के रूप में विभिन्न प्रकार के मनोरंजन के साधन प्रदान किये हैं। इनके अतिरिक्त खेल भी मनोरंजन का एक महत्वपूर्ण साधन है और विज्ञान ने इनमें बहुत सुधार लाकर आधुनिक मानव को अधिक स्वस्थ, प्रसन्न एवं दीर्घायु बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

अन्य क्षेत्रों में विज्ञान के रचनात्मक प्रयोग (Constructive applications of Science in other spheres) :—

विज्ञान के द्वारा मानव की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त इसने मानव को जीवन के अन्य अनेक क्षेत्रों में भी पर्याप्त सहायता पहुंचाई है। आज मनुष्य ने विज्ञान की सहायता से न केवल भूख एवं बीमारियों पर ही विजय प्राप्त की है अपितु आज तो वह दूरी एवं श्रम पर भी विजय प्राप्त करने में सफल हो गया है।

दूरी पर विजय:— (Conquest of Distance):—

संवादवाहन के उत्तम साधनों के आविष्कार के फलस्वरूप आज संसार एक छोटे से परिवार के रूप में संकुचित हो गया है। संवादवाहन के साधन मोर्स द्वारा आविष्कृत टेलीग्राफी से प्रारम्भ हुए तथा बाद में ग्राहम बेल ने टेलीफोन की सहायता से सैकड़ों मील दूर बैठे व्यक्तियों को परस्पर वार्तालाप करा देने में सफलता प्राप्त की। इसके आगे वैज्ञानिक तारों के सहारे पर ही निर्भर न रहे और प्रसिद्ध वैज्ञानिक मारकोनी ने बेतार के तार का आविष्कार किया। इन सारे आविष्कारों से पूर्व संदेशवाहकों द्वारा संदेश पहुंचाया जाता था और बहुत ही नगण्य सी दूरी को पार करने के लिए भी काफी समय लग जाता था किन्तु आज कोई भी संदेह किसी भी स्थान पर लगभग बिना किसी भी समय के पहुंचाया जा सकता है। अब हम विज्ञान की सहायता से ऋतु, तूफान एवं हिमपात की पूर्व गणना कर सकते हैं तथा जलवायु के सम्बन्ध में पूर्व घोषणा की जा सकती है। इसी प्रकार टिड्डियों के आगमन, शत्रु के आक्रमण तथा भूकम्प आदि के विषय में पहिले से ही चेतावनी दी जा सकती है।

यातायात के क्षेत्र में भी आधुनिक साधनों ने महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की है। आधुनिक यातायात के साधन हमें मोटरकार, रेलें, जहाज तथा हवाई जहाज आदि के रूप में उपलब्ध है। इनमें से कुछ साधनों की गति ध्वनि की गति से भी

तीव्र है। आकाश में उड़ते हुए आधुनिक वायुयान बहुत से व्यक्तियों को बहुत ही अल्पकाल में संसार के किसी भी दूरस्थ भाग में ले जाने में क्षम्य हैं। आजकल विभिन्न वस्तुओं को उनकी आवश्यकता के स्थान पर भेजना भी संभव हो गया है। दूरी पर विजय प्राचीन काल में जो स्वप्न एवं कवि-कल्पना मात्र थी वह आज वास्तविक रूप में प्राप्य हो गयी है। विकसित देशों द्वारा अनेकों राकेट छोड़े गए हैं तथा इनके द्वारा हमें आकाश के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों की सूचना प्राप्त हो सकी है। अभी हाल ही में सोवियत रूस द्वारा भेजा गया ल्यूना ६ चन्द्रमा के धरातल पर उतर गया है तथा उसने चन्द्रमा के रहस्यमय धरातल के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी पृथ्वी पर भेजी है। अब वह समय दूर नहीं जब मनुष्य पृथ्वी से उड़कर चन्द्रमा के धरातल पर उतरेगा।

श्रम पर विजय (Conquest of Labour) :—

विज्ञान ने हमारे श्रम को कम कर उत्पादन को बहुत अधिक बढ़ा दिया है। जो कार्य पहिले ठीक ढंग से सौ आदमियों के द्वारा भी पूरा नहीं किया जा सकता था उसे अब केवल एक यंत्र की सहायता से ही पूरा किया जा सकता है। यदि हम अपने घरों पर दृष्टिपात करें तो हमें स्पष्ट रूप से दिखाई देगा कि हमारे दैनिक जीवन में यंत्र कितना महत्वपूर्ण भाग प्रदान करता है। आज हमारे जीवन में यंत्रों का प्रयोग इस सीमा तक बढ़ गया है कि हम उनके अभाव में जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते। यह यंत्र सामान्यतया भाप या विद्युत की शक्ति द्वारा चलाए जाते हैं। यह शक्तियां केवल हमारे गृह कार्यों में ही प्रयोग में नहीं ली जाती अपितु इनके द्वारा बड़े-बड़े उद्योगों में भी यंत्र चलाए जाते हैं। यह बड़े-बड़े उद्योग ही हमारे समाज के आर्थिक विकास के आधार स्तम्भ हैं। इस्पात, कागज, रबर, कपड़े, रासायनिक पदार्थ, उर्वरक तथा अन्य औद्योगिक पदार्थों ने संसार से गरीबी, अज्ञानता एवं भूख को समाप्त करने तथा राष्ट्र को आर्थिक दृष्टि से ठोस धरातल पर खड़ा करने में महत्वपूर्ण योग दिया है। वास्तव में यह कहा जा सकता है कि विज्ञान ने उद्योगों के विकास के रूप में मानव समाज को एक बहुत बड़ा वरदान प्रदान किया है।

विज्ञान की सभी शाखाओं में यंत्र महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान कर रहे हैं और वास्तव में इन यंत्रों एवं उपकरणों के प्रयोग के फलस्वरूप विज्ञान के ज्ञान में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है।

यदि हम एक सौ पचास वर्ष पूर्व जन्म लिये हुए होते तो हमारा जीवन बिल्कुल ही भिन्न होता। इसी कारण यह कहना यथार्थ ही है कि विज्ञान [illegible] भी मानव जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव रखता है और आज अद्भुत आविष्कार [illegible] जीवन के शिखर बन गए हैं।

विज्ञान के विध्वंसात्मक प्रयोग(Destructive applications of Science)

उपर्युक्त विवेचन में हमने यह देखा कि मानव समाज के कल्याण के लिए विज्ञान का कितने विस्तृत रूप से उपयोग किया जा सकता है । किन्तु विज्ञान का प्रयोग विध्वंसात्मक कार्यों के लिए भी किया गया है । यह राजनैतिक हस्तक्षेप तथा विज्ञान को विध्वंस एवं विनाश के उद्देश्यों की ओर प्रेरित करने के कारण हुआ है । विज्ञान का यह दुरुपयोग युद्ध मे प्रकट हुआ है । विज्ञान के पहिले के आविष्कारों मे से एक आविष्कार बारूद भी था जो तभी से युद्ध में काम में लिया जाता रहा है । इस दिशा में आगे काफी प्रगति की गई तथा आज शक्तिशाली बारूद (Dynamites) विस्फोटक, विषैली गैसें, बम के गोले, तोप आदि अनेक विनाश कारक पदार्थों का निर्माण किया जा चुका है । धीरे-धीरे विभिन्न राष्ट्रों के विभिन्न दृष्टिकोणों एवं आदर्शों के फलस्वरूप उन मे हथियारो की दौड प्रारम्भ हुई और उसके फलस्वरूप अणुबम तथा हाइड्रोजन बम के रूप में आणविक] अस्त्रों का विकास हुआ ।

आज के बड़े बड़े वैज्ञानिक विनाशकारी तथा मृत्युकारी और भी अधिक प्रगतिशील यंत्रों का आविष्कार करने मे लग्न हैं । रूस के वैज्ञानिको ने अन्तरमहा-द्वीपीय छोड़े हुए भेदन यंत्र (Inter-Continental ballistic missiles) का आविष्कार किया है और इस प्रकार युद्ध के समय एक ऐसा विनाशकारी उपाय प्रस्तुत किया है जो अभूतपूर्व है ।

इसके अतिरिक्त यहा पर यह वर्णन करना भी उपयुक्त होगा कि युद्धकाल मे, जो सामान्यतया विनाश के कार्यों के लिए प्रयोग में नहीं ली जाती हैं, कुछ वस्तुएं और भी विनाश के काम मे लाई जा सकती है । जैसे वे हवाई जहाज जो सामान्यतया यातायात के काम में लिए जाकर मानव की सुख एवं सुविधा में वृद्धि करते हैं, उन्हें ही युद्धकाल मे शत्रुदेश पर अणुबम गिराने के काम मे लेकर विनाश का दृश्य उपस्थित किया जा सकता है । इसी प्रकार औषधि विज्ञान के लिए प्रयुक्त कीटाणुओं के ज्ञान को कीटाणुओं के युद्ध के रूप मे परिणित कर विनाश एवं मृत्यु का स्रोत बनाया जा सकता है ।

युद्ध की तकनीकी को विज्ञान ने इतना विकसित कर दिया है कि यदि इनका प्रयोग किया गया तो सम्पूर्ण मानव जाति के ही विनाश हो जाने का भय है और इसीलिए इतिहासकारों ने ठीक ही कहा है कि चतुर्थ विश्व युद्ध पुनः तीर और कमानों के परम्परागत हथियारों से लड़ा जावेगा ।

मानव समाज और सभ्यता के विनाश करने के साधनो में विज्ञान का प्रयोग हो रहा है । परमाणु-युद्ध का केवल विचारमात्र ही मन मे आने से मनुष्य डर और घृणा से भरपूर हो जाता है ।

(२) शक्ति और उसकी उप्युक्तताएं (Energy and its applications) :—

पदार्थ एवम् शक्ति के प्रति विचार (Idea of matter and Energy) :—

सारा विश्व दो ही चीजों का बना हुआ है—पदार्थ और गति।

द्रव्य—इस शब्द से उन सारी वस्तुओं का अभिप्राय है जो स्थान घेरती हैं और हमारी ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करती हैं। इनमें से कुछ वस्तुओं को हम देखने से, किसी को छूने से, किसी को सूंघने से और किसी को उसकी विशेष गति अथवा ध्वनि से पहचानते हैं। उन सभी वस्तुओं को जिनको मनुष्य की इन्द्रियां जाँच या पहचान करती हैं या गुण बतलाती है पदार्थ अथवा द्रव्य कहते हैं।

पदार्थों मे भिन्न प्रकार के गुण होते हैं और यदि हम किसी वस्तु का वर्णन करना चाहें तो उसके गुणों का ही वर्णन करेंगे।

सारे पदार्थों का कुछ-न-कुछ तौल होता है और वह कुछ जगह घेरते हैं। जिस वस्तु का कुछ तौल नही होता वह पदार्थ नही कही जाती। पदार्थों मे और कई गुण हैं जो भिन्न-भिन्न पदार्थों मे पृथक-पृथक होते हैं, जैसे रंग, गन्ध, घुलनशीलता, निर्मलता, लचलचाहट, भुरभुरापन, झिरझिरापन, जलने वाले अथवा न जलने वाले, पारदर्शक, अपारदर्शक, अथवा अल्प पारदर्शक इत्यादि-इत्यादि।

पदार्थ कभी नष्ट नहीं हो सकते। वह एक दशा से दूसरी दशा में परिवर्तित हो जाते हैं, जैसे मोमबत्ती जलते-जलते समाप्त हो जाती है, परन्तु उसका पदार्थ नष्ट नहीं होता। वह एक नवीन प्रकार के पदार्थों में बदल जाता है।

पदार्थ बहुधा तीन दशाओं मे मिलते हैं—ठोस, द्रव और गैस। गैस के रूप में तीनों दशाएं एक ही पदार्थ की हो सकती हैं। यह सारे व्योम में बिखरे हुए विद्युता-वेश लिए हुए अति सूक्ष्म वाष्पीय कणों का रूप भी ले लेते हैं और सम्भवतः सर्व विश्व व्यापक ईथर मे भी उपस्थित हैं।

यह सारी दशाएं एकदम पृथक-पृथक नहीं हैं। वह बल जो इनको बांधता है उसकी आपेक्षित शक्ति के अनुकूल अथवा वह शक्ति जो उनको ढीला करती है उसके अनुकूल पदार्थ इनमे कोई भी दशा धारण कर सकता है।

प्रत्येक ठोस पदार्थ के गुण :

(१) इसका एक मुख्य रूप होता है।

(२) एक सिरे को पकड़ कर उठाने से पूरी वस्तु उठ आती है।

(३) इसके टुकड़े करने मे बहुत शक्ति का व्यय होता है।

(४) इसका एक मुख्य आयतन होता है।

तरल या द्रव पदार्थ :

(१) इनका कोई मुख्य रूप नहीं होता । जिस बर्तन में यह रखे जाते हैं उसी का रूप ग्रहण कर लेते हैं।

(२) इनके टुकड़े बड़ी सुगमता से हो सकते है ।

(३) इनको बिना किसी बर्तन में रखे हुए नहीं उठा सकते ।

(४) बर्तन को किसी सूरत पर क्यो न रक्खा जाए इनका तल सदैव पृथ्वी के समानान्तर रहता है ।

(५) द्रव पदार्थों का मुख्य आयतन होता है ।

(६) यह ऊँची जगह से नीची जगह की ओर बहते हैं ।

गैस :—यह वह पदार्थ है जो हवा की तरह है और अपना कोई विशेष आकार तथा आयतन नहीं रखती । जिस बर्तन में होती है उसी के ही रूप को ग्रहण कर लेती है। यह फैलने वाली वस्तु होती है और जहाँ तक इसको जगह मिलती है यह फैलती जाती है । ठोस तथा द्रव पदार्थ की भाँति इसका कोई परिणाम नही होता ।

पदार्थों की ये तीनों प्राकृतिक दशाएँ ही हैं, जैसे बर्फ, पानी तथा भाप सब एक ही पदार्थ हैं, परन्तु इनकी प्राकृतिक अथवा भौतिक दशाएँ भिन्न-भिन्न हैं ।

द्रवों की कोई सी भी दशा हो, हम उनकी क्रिया और प्रतिक्रियाओं को तभी समझ सकते हैं, जब हम यह मान लें कि सारे द्रव्य अत्यन्त सूक्ष्म कणों के बने हुए हैं जो अपनी मिश्रित अवस्था मे **अणु** कहलाते है और स्वतन्त्र अवस्था मे **परमाणु** । परमाणु ही द्रव्य के मूल कण माने जाते हैं । पहिले यह अविभाजित कण समझे जाते थे और इसी कारण इनका यह नाम भी पड़ा, परन्तु अब प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया गया है कि परमाणु भी और कई अति सूक्ष्म कणों के बने हुए हैं जिनको इलेक्ट्रोन, प्रोटोन तथा न्यूट्रोन के नाम से पुकारा गया है । परमाणु के अन्दर जितने भी सूक्ष्म कण हैं वह एक छोटा सा सौर मण्डल बनाते हैं । प्रत्येक परमाणु में एक केन्द्रक सूर्य है जिसके अन्दर प्रोटोन तथा न्यूट्रोन दो प्रकार के कण हैं । प्रोटोन धन-विद्युतीय हैं परन्तु न्यूट्रोन विद्युत उदासीन होते हैं । इस केन्द्रक के चारों ओर स्थित दूरी पर पृथक-पृथक कक्ष मे इलैक्ट्रोन ग्रह हैं जो ऋण विद्युतीय कण हैं और केन्द्रक के चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं । यह गणना की गई है कि हाइड्रोजन के एक परमाणु में ७००, सोडियम के परमाणु मे १६००० तथा रेडियम के परमाणु मे १६०००० इलैक्ट्रोन होते हैं । इनके बीच की दूरी भी इनके स्वयं माप से अपेक्षाकृत कहीं अधिक है ।

ऋण और धन विद्युत कणों से ही सारे विश्व का निर्माण हुआ है, और इन कणों के समूह परमाणु रूप में, *भिन्न-भिन्न परमाणु-संख्याओं के कारण ही अपरिमित* प्रकार के गुणों को प्रकट करते हैं।

द्रव्य प्रकृति के परमाणु-रूप में स्वतन्त्र नहीं मिलते। यह मिश्रित अणुओं में ही प्राप्त होते हैं। जब कभी इन द्रव्यों में परस्पर रासायनिक क्रिया होती है, तो उसमें केवल परमाणु ही भाग लेते हैं अणु नहीं।

संसार के अनेकानेक परिवर्तन इन्हीं परमाणुओं की विभिन्न क्रियाओं, संयोग अथवा वियोग द्वारा हुए करते है।

एक द्रव्य के परमाणु दूसरे द्रव्य के परमाणुओं के साथ डाल्टन के अनुसार भार और आयतन के एक विशेष निश्चित ही अनुपात में मिश्रित होते हैं। पानी को हम चाहे छोटी मात्रा में लें या बड़ी में, इसे चाहे बादलों से लें या समुद्र से, इसके अणुओं का जब कभी भी वियोग किया जाएगा तो इसमें सर्वदा भार का १६ भाग ऑक्सीजन होगा और दो भाग हाइड्रोजन। इसी प्रकार नमक समुद्र से, प्राणियों के *रक्त से अथवा और अन्य वस्तु किसी से भी लिया जाए इसके अणुओं में भार का ३५½* भाग क्लोरीन और २३ भाग सोडियम होगा। किसी भी तत्व की यदि कुछ अधिक मात्रा होती है तो वह मिश्रित नहीं होती—साथी न होने के कारण अलग ही पड़ी रहती है।

अणु निरन्तर गति करते रहते हैं और इनकी गति लगभग ६६० मील प्रति घण्टा होती है। इनका भार उतना ही होता है जितना इनके बनाने वाले परमाणुओं का, परन्तु इनके गुणों में परिवर्तन अवश्य हो जाता है।

शक्ति :—पदार्थ के समान शक्ति भी प्रकृति में विद्यमान है। *विश्व का कण-कण गतिमान है और प्रत्येक कण में शक्ति है। परन्तु संसार में अनेकों वस्तुएँ स्थिर* दशा में दीख पड़ती हैं। मेज पर रक्खी हुई पुस्तक, कमरे की कुर्सी, हमारा मकान, एक दम स्थिर जान पड़ते हैं। ऐसी स्थिर अवस्था में भी प्रत्येक वस्तु में एक शक्ति होती है जो उसे गतिमान होने से रोकती है। एक ढाल पर एक विशाल शिला-खण्ड किसी छोटे से पत्थर के अटकाव से रुका रहता है और उसमें यही शक्ति निहित रहती है। यदि अटकाव को अलग कर दिया जाए तो यह शिलाखण्ड नीचे लुढ़कने लगेगा। उसमें गतिज शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

शक्ति में न कोई भार ही होता है न यह जगह ही घेरती है। किन्तु इससे अभिप्राय: नहीं कि इसमें कोई वास्तविकता नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी तक यह जाता था कि पदार्थ और शक्ति भिन्न-भिन्न और एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं, परन्तु शताब्दी के वैज्ञानिकों ने यह प्रत्यक्ष कर दिखाया कि द्रव्य भी शक्ति में परि-

वर्तित हो सकता है । आइन्सटीन के अपेक्षा-वाद सिद्धान्त ने यह सही कर दिखाया । शक्ति द्रव्य से पृथक तो नहीं पाई जाती, परन्तु शक्ति को द्रव्य का गुण नहीं माना जा सकता ।

शक्ति द्रव्य को गति देने की एक प्रवृत्ति है । आजकल शक्ति उसे कहा जाता है जो वस्तुओं का कार्य करने की क्षमता प्रदान करे । शक्ति के आधार पर ही हम चल फिर सकते हैं, दौड़ सकते हैं । एक इंजिन रेलगाड़ी के डिब्बे इसी कारण खींच पाता है कि उसमें शक्ति है । यह शक्ति द्रव्य मे न केवल गति की अवस्था बल्कि स्थिर अवस्था में भी उपस्थित रहती है । शक्ति के इन दो रूपों को 'स्थितिज' (Potential) और 'गतिज' (Kinetic) शक्ति के नाम से पुकारा जाता है । एक पत्थर का टुकड़ा जो किसी ऊँची जगह रक्खा हुआ है; एक घड़ी जो बन्द पड़ी है; एक कोयले का ढेर जो जल नही रहा है—इन सब मे स्थितिज शक्ति है । यह शक्ति तुरन्त गतिज शक्ति का रूप ले लेती है जब पत्थर ऊपर से गिरता है, घड़ी चलने लगती है अथवा कोयले का ढेर जलने लगता है । स्थितिज शक्ति ही केवल गतिज शक्ति मे परिवर्तित नहीं हो जाती वरन् भिन्न-भिन्न प्रकार की गतिज शक्ति भी एक दूसरे में परिवर्तित होती रहती हैं । गति ताप में, ताप विद्युत मे, प्रकाश में तथा रासायनिक क्रियाओं मे । इस प्रकार परावर्तन और अक्षय होने के गुणों को ही शक्ति अविनाशत्व (Conservation of energy) अथवा शक्ति-स्थिरता कहते हैं ।

शक्ति के रूप (Forms of Energy)

शक्ति कई रूपों मे प्रकट होती है—

(१) यांत्रिक शक्ति (Mechanical Energy)—काम करने की क्षमता या समावेशन को यांत्रिक शक्ति कहते हैं । यह वस्तु की परिस्थिति पर निर्भर रहती है । यदि कोई वस्तु गतिशील है और उसमे तुरन्त काम करने की क्षमता है तो उस गति के कारण जो उस वस्तु में शक्ति आ जाती है वह उसकी **गतिज** (Kinetic) शक्ति कहलाती हैं—एक रेल का इन्जिन जब सारी रेलगाड़ियों को खीच रहा हो, एक ट्रैक्टर जब हल चला रहा हो, एक बम्ब का गोला जब वायु से पृथ्वी की ओर गिर रहा हो, एक गोली जब बन्दूक से दागी गई हो, पेन्डुलम जब झूल रहा हो, इन सब की शक्ति गतिज होती है ।

अपनी स्थिति के कारण वस्तु मे जो शक्ति होती है वह **स्थितिज शक्ति** (Potential Energy) कहलाती है । यह शक्ति तुरन्त कार्य करने की क्षमता नहीं रखती वरन् वस्तुओं में भविष्य में काम करने के लिए एकत्र रहती है, जैसे किसी

ऊँचे स्थान पर रक्खा हुआ पत्थर, घड़ी की कमानी जिसमे चाबी लगी हुई हो, तथा हवाई बन्दूक मे दबाई हुई कमानी इत्यादि—शक्ति और जिन-जिन रूपो (ताप, प्रकाश, विद्युत, चुम्बकीय, रासायनिक, ध्वनि इत्यादि) मे प्रकट होती है वह सब गतिज शक्ति के ही परिवर्तित रूप हैं।

(२) ताप (Heat)—ताप का अनुभव हमे अपनी स्पर्शेन्द्रिय द्वारा होता है। एक लोहे की छड़ को यदि हम ताप में रक्खें तो वह गर्म हो जाती है। ताप में से कोई वस्तु निकल कर लोहे की छड़ मे चली जाती है और उसे गर्म कर देती है। इस वस्तु या भौतिक कारण को जो अन्य वस्तुओं को गर्म करे, हम ताप कहते हैं। यदि हम इस छड़ को ठंडी तथा गर्म अवस्था में तोलें तो छड़ के तोल मे कोई अन्तर नही आता—अत ताप मे कोई भार नही होता और इसी कारण ताप किसी प्रकार का द्रव्य नही है और स्वयं कोई कोई भौतिक वस्तु न होकर शक्ति का ही एक विशेष रूप है। अनुकूल परिस्थितियों मे ताप-शक्ति यांत्रिक, विद्युत एवम् रासायनिक शक्ति मे परिवर्तित हो सकती है। जब एक कारीगर एक बन्दूक बनाने मे उसमे छेद करता है, तो उस कारीगर की मासपेशियों की शक्ति ताप मे परिवर्तित हो जाती है, इसी प्रकार एक लुहार जब लोहे की छड़ की नोक को निहाई पर रखकर बार-बार पीटता है तो वह नोक लाल हो जाती है, एक साईकिल के पम्प को जब हवा भरने के प्रयोग मे लाया जाता है तो वायु के दबाव के कारण उसके अन्दर के वेग से चलने वाले कण बड़ी तेजी के साथ पम्प की भीतरी दीवारो से टकराते हैं और इसी गतिज शक्ति के कारण पम्प गर्म हो जाता है; जब हम पानी गर्म करते हैं तो उसके कणों की गतिज शक्ति बढ़ जाती है और उन कणो मे हलचल मच जाती है जिसके फलस्वरूप वह कण द्रव से बाहर आ जाते हैं और भाप बन जाते हैं—यह कण दूसरे कणों से कम शक्ति से बंधे हुए रहते हैं और इसी कारण उड़कर भागने के लिए स्वतन्त्र होते हैं, अथवा हम यह कहें कि वह भाप जिसके कि वह कण हैं अब फैलती है और इस प्रकार फैलने से उसमे से शक्ति निकलती है जो हम कई तरह से काम मे ले सकते हैं। इससे बड़े-बड़े इंजिन भी चलाये जा सकते हैं और बड़े-बड़े जहाज समुद्र में तैर जा सकते हैं। इस प्रकार ताप शक्ति यांत्रिक शक्ति में परिवर्तित हो जाती है। अत ताप शक्ति का ही रूप है क्योंकि इसके कार्यों से शक्ति होती है।

(३) प्रकाश (Light)—प्रकाश भी [illegible] की शक्ति का [illegible] है जिसकी सहायता से हम अन्य वस्तुओं को देख सकते हैं। प्रकाश भी शक्ति का एक रूप है। सूर्य के प्रकाश से ही पौधा [illegible] अपना भोजन बना सकते हैं। [illegible] अन्दर से सूर्य के प्रकाश से ही [illegible] [illegible]

है। प्रकाश की फोटोग्राफिक प्लेटों पर प्रतिक्रिया, प्रकाश का रासायनिक शक्ति में बदलना, और प्रकाश का पोटेशियम, रूबीडियम, सोडियम पर पड़ने से इलैक्ट्रोन्स (electrons) का निकलना प्रकाश का विद्युत शक्ति में परिवर्तन होने के उदाहरण है।

(४) विद्युत (Electric)—यह भी एक शक्ति का रूप है, जिसको सभी जानते है। बिजली के लैम्प, स्टोव, पंखे, मोटरें, लिफ्ट्स, घड़ियाँ, टेलीफोन, टेलीग्राफ, रेडियो इत्यादि सभी इस बात के द्योतक है कि विद्युत एक बड़ी भारी शक्ति है।

(५) चुम्बकीय (Magnetic)—हमारी पृथ्वी को जो चुम्बकीय बल घेरे हुए है उसमें भी महान् शक्ति है। यदि एक चुम्बकीय क्षेत्र में हम एक तांबे के तार को घुमाएँ तो तार के अन्दर बिजली की धारा बहने लगती है। इसी प्रकार यदि हम एक लोहे की छड़ी को तांबे के तार से लपेटकर उसमें विद्युत धारा बहने दें तो छड़ में चुम्बकीय गुण आ जाते हैं। एक लोहे की छड़ को जल्दी-जल्दी चुम्बक बनाकर और फिर एक बार चुम्बकत्व हटाने पर छड़ गर्म हो जाती है। यह सब उदाहरण चुम्बक से विद्युत-शक्ति, विद्युत से चुम्बकीय शक्ति, तथा चुम्बकीय शक्ति से ताप मिलने के है।

(६) रासायनिक (Chemical)—जब एक बॉयलर के नीचे कोयला जलता है तो कोयले की रासायनिक शक्ति पानी को भाप में बदल कर इंजिन के पहियों को चलाकर घुमाती है और यांत्रिक शक्ति में परिवर्तित हो जाती है। बारीक कोयले के चूरे के साथ नौसादर मिलाने पर एक विस्फोट पदार्थ बन जाता है, जिसमें चिंगारी देने पर उसकी रासायनिक शक्ति ताप, प्रकाश, ध्वनि और रासायनिक शक्ति में हमें दीख पड़ती है। इसी प्रकार अन्य शक्तियाँ भी रासायनिक शक्ति में परिवर्तित हो सकती हैं।

(७) ध्वनि (Sound) टेलीफोन में पहले ध्वनि विद्युत में परिवर्तित होती है और फिर यह विद्युत तार द्वारा दूसरे स्थान में पहुँच कर वापिस ध्वनि में बदल जाती है और सभी हम सुन सकते हैं। विद्युत की घण्टी में विद्युत शक्ति ध्वनि में परिवर्तित होती है। इसी प्रकार ताप और रासायनिक शक्ति ध्वनि में बदल सकती हैं। इससे यह स्पष्ट है कि ध्वनि भी एक शक्ति का रूप है।

(८) परमाणु शक्ति (Atomic Energy)—तत्वों में कई तत्व ऐसे हैं जिनके कण बराबर टूटते रहते हैं। ऐसे तत्वों को रेडियो धर्मी (Radio active) तत्व कहते हैं। इस प्रकार कणों के टूटने पर बड़ी भारी शक्ति निकलती है जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। यही शक्ति परमाणु-शक्ति कहलाती है, जिसका उदाहरण एटम-बम्ब (Atomic Bomb) सभी को मालूम है। परमाणु-शक्ति का

ही उपयोग रेलगाडियाँ और मोटरें चलाने में, विद्युत उत्पन्न करने और भाँति-भाँति के कारखाने चलाने में किस प्रकार किया जाये, आधुनिक वैज्ञानिक इसी खोज में लगे हुए हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि शक्ति का नाश नहीं हो सकता, इसका केवल परिवर्तन हो सकता है।

परमाणु-शक्ति (Atomic Energy) [परमाणु-शक्ति का विस्तार में वर्णन अगले भाग में दिया गया है।]

शक्ति के रूपान्तर (Transformation of Energy)

एक प्रकार की शक्ति को दूसरे प्रकार की शक्ति में परिवर्तन होने के नियम उन्नीसवी शताब्दी के विज्ञान की उन्नति की ही देन है। जूल (Joule), वौन हैम्होज (Von Helmholtz) तथा अन्य भौतिक शास्त्रज्ञों ने यह बतलाया था कि शक्ति का नाश नहीं हो सकता, इसका केवल परिवर्तन ही हो सकता है।

शक्ति अविनाशिता के नियम के अनुसार न तो हम शक्ति उत्पन्न ही कर सकते हैं और न इसे नष्ट कर सकते हैं।

पहिले यह कहा जा चुका है कि स्थितिज शक्ति किस प्रकार गतिज शक्ति में परिवर्तित होती है। ऊँचाई पर रक्खे हुए पानी में स्थितिज शक्ति होती है। जब यह पानी जल-विद्युतीय संत्रों में ऊँचे से नीचे गिराया जाता है तो टरबाइनों (Turbines) के कुओं में गिर कर उनके पहियों को घुमाता है, जिनकी गति से डायनमो (Dynamo) चलता है। पानी की स्थितिज शक्ति गतिज शक्ति में परिवर्तित होकर पुनः विद्युत शक्ति में बदल जाती है।

गन्धक के गाढ़े अम्ल में पानी मिलाने पर अम्ल एक दम गर्म हो जाता है। रासायनिक शक्ति परिवर्तित होकर ताप शक्ति के रूप में प्रगट होती है। विद्युत के लैम्प या स्टोव में विद्युत-शक्ति व्यय होती है और उसके बदले में हमें प्रकाश या ताप प्राप्त होता है। भिन्न भिन्न इंजिनों की संचालन शक्ति कोयले या पैट्रोल की ताप शक्ति से ही मिलती है। विद्युत शक्ति उत्पन्न करने वाले डायनमों का परिचालन भी प्रायः भाप से चलने वाले इंजिनों की सहायता से ही होता है। शक्ति के इस रुपान्तर के सिद्धान्त की पुष्टि उस समय पूर्ण रूप से हो गई जब अनेक वैज्ञानिकों ने प्रयोगों द्वारा यह बात सिद्ध कर दिखाई कि एक निश्चित मात्रा में यान्त्रिक शक्ति व्यय करने पर एक निश्चित परिमाण में ही ताप उत्पन्न किया है। व्यय की गई शक्ति और उससे उत्पन्न किए गए ताप की मात्रा में एक है जो प्रत्येक अवस्था में एक सा ही रहता है।

(i) ताप से यान्त्रिक शक्ति (Heat to mechanical energy)—इस का सब से सरल उदाहरण स्टीम इंजिन है। इसमें कोयले को जला कर पानी गर्म किया जाता है जिससे भाप बन जाती जो बाह्य दहन इंजिन (External Combustion Engine) के भापकोष्ट में ले जाकर सिलिंडर (Cylinder) में प्रवेश कर पिस्टन (Piston) को आगे व पीछे ढकेलती है, जिसके कारण पहिया घूमता है। यहां ताप की सहायता से यांत्रिक कार्य कराया जाता है।

(ii) रासायनिक शक्ति से यांत्रिक शक्ति—मोटरकार में भाप के इंजिन के स्थान पर गैस अथवा तेल के इंजिन का उपयोग किया जाता है। इसमे पैट्रोल वायु के साथ मिलकर गैस बन जाता है, जिसका स्फोटन हो जाता है। इसके अन्दर एक पिस्टन लगा होता है और दो वाल्व होते है-एक वाल्व में से होकर कारब्यूरेटर में से वायु और गैस का मिश्रण आता है और दूसरे में से होकर स्फोटन के बाद उत्पन्न होने वाली गैसें बाहर निकाली जाती हैं। इन्हीं वाल्व के पास एक स्पार्क प्लग भी लगा होता है जिससे चिन्गारी पैदा होने पर मिश्रण आग पकड़ता है और विस्फोट करता है, इससे तापक्रम अधिक ऊंचा हो जाता है और इसके फलस्वरूप दबाव में असाधारण वृद्धि हो जाती है और पिस्टन वेग से बाहर की ओर चलता है। स्फोटन के बाद वाली गैस जब फिर बाहर निकल जाती है तो दबाव कम हो जाता है और पिस्टन पीछे की ओर वापस आ जाता है। यह कार्य निरन्तर होता रहता है और बार बार के स्फोटन से शक्ति प्राप्त होती रहती है।

(iii) रासायनिक शक्ति से विद्युत शक्ति—(Chemical to Electric energy)—टॉर्च में प्रकाश पैदा करने के लिए उसमें हम बैटरी अथवा सैल लगाते हैं। इसी प्रकार मोटर गाड़ियों में भी प्रकाश के लिए तथा स्फोटन के लिए भी बैटरी का ही उपयोग किया जाता है। इनमें गंधक का अम्ल दो प्रकार के आयनों में टूट जाता है-धनात्मक (Positive ions) हाइड्रोजन के और ऋणात्मक (Negative ions) सल्फेट के हाइड्रोजन आयन जस्ते की छड़ पर और सल्फेट आयन तांबे की छड़ पर आते हैं जो कि अपना विद्युत आवेश छड़ों को दे देते हैं जिसके कारण बैटरी से विद्युत प्राप्त होती है।

(iv) **विद्युत शक्ति से रासायनिक शक्ति—(Electric to Chemical energy)** इसका उदाहरण वर्तनों पर कलई या चांदी करना है। इस क्रिया में दो विद्युत द्वार होते हैं, एक तो वह जिस पर परत चढ़ानी होती है और दूसरा वह जिसकी परत चढ़ानी है। पहिला ऋण द्वार और दूसरा धन द्वार कहलाता है चादी चढ़ाने के लिए यह दोनों द्वार सिल्वर नाइट्रेट के घोल मे रक्खे जाते हैं और विद्युत धारा भेजी जाती है। चादी के आयन ऋण द्वार पर आकर जम जाते है। इसको विद्युत विच्छेदन (Electrolysis) कहते हैं।

(v) **विद्युत शक्ति से ताप व प्रकाश (Electric Energy to Heat and Light)** जब विद्युत धारा बिजली के बल्ब मे से प्रवाहित होती है तो यह तन्तु विद्युत प्रवाह मे अधिक रुकावट डालता है, जिसके कारण वह गर्म हो जाता है। धातुओ का गुण है कि जब इनका तापक्रम ७००° से अधिक हो जाता है तो यह प्रकाशित होने लगते है। ऐसे ही तन्तु विद्युत के चूल्हे, अगीठी, स्टोव, पानी गर्म करने के होटर आदि के प्रयोग मे लाए जाते हैं। इस प्रकार विद्युत शक्ति प्रकाश और ताप मे बदल जाती है।

(vi) **विद्युत से चुम्बनीय शक्ति (Electric to magnetic energy)** यदि हम एक लोहे की छड पर तांबे के तार की एक कुण्डली लपेट दें और उस म विद्युत धारा का प्रवाह करे तो कुछ समय तक यह छड़ चुम्बक बन जाएगी और तावे के तार मे विद्युत धारा बन्द करने पर भी यह छड़ चुम्बक का कार्य करेगी।

(vii) **यान्त्रिक शक्ति से विद्युत शक्ति (Mechanical to Electrical Energy)**—इसके लिए जो यत्र काम मे लाया जाता है उसे डायनेमो (Dynamo) कहते हैं। इस में दो चुम्बनीय ध्रुवों के बीच एक तावे के तार का वेष्टन (armature) घुमाया जाता है। वेष्टन को घुमाने के लिए जो शक्ति की आवश्यकता होती है वह भार इंजिनों की भट्टियो में कोयला जलाने से प्राप्त की जाती है। यह पट्रोल या पानी से भी प्राप्त होती है। वेष्टन के घूमने पर विद्युत उत्पन्न हो जाती है। नियमों के सिद्धान्त का ही उपयोग विद्युत मोटर (Electric Motor) का निर्माण करने के लिए किया जाता है। इस

की रचना में तारों की कुण्डली में विद्युत प्रवाहित की जाती है, जिसके कारण वेष्टन की धुरी घूमने लगती है । इसमें विद्युत शक्ति गतिज शक्ति में बदलती है।

(viii) विद्युत शक्ति से ध्वनि-शक्ति और ध्वनि-शक्ति से विद्युत शक्ति (Electric to Sound Energy and Sound Energy to Electric Energy)—इस प्रकार के परिवर्तन हम टेलीफोन मे देखते हैं। इसमें ध्वनि को माइक्रोफोन द्वारा विद्युत की धाराओं मे बदल दिया जाता है और दूसरे स्थान पर इन धाराओं का रिसीवर द्वारा पुनः ध्वनि की तरगों में परिवर्तन हो जाता है । उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि शक्ति एक रूप से परिवर्तित हो सकती है, लेकिन किसी भी अवस्था मे इसका नाश नहीं होता।

शक्ति के स्रोत (Sources of Energy)

शक्ति को वैसे तो हम उत्पन्न नहीं कर सकते परन्तु यह हम जान चुके हैं कि एक प्रकार की शक्ति को दूसरी प्रकार की शक्ति मे परिवर्तित कर सकते हैं । जिन पदार्थों की शक्ति का उपयोग करके हम साधारणतः उपयोगी कार्य करते हैं। उन्हें ही शक्ति का स्रोत अथवा उद्गम कहते हैं।

मनुष्य को प्राप्त होने वाली शक्ति के तीन मूल स्रोत हैं :—

(i) उन पदार्थों का ताप जो हमारे वातावरण की अपेक्षा अधिक गर्म हैं—सूर्य का ताप जिससे शक्ति के अन्य सारे स्रोत प्राप्त होते हैं, तथा पृथ्वी का अभ्यन्तर जहाँ ताप के रूप मे अधिक शक्ति विद्यमान है परन्तु जो इतनी नीची गहराई पर है कि हम उसका उपयोग नही कर सकते ।

(ii) सूर्य, चन्द्रमा तथा पृथ्वी की आपेक्षिक गति से उत्पन्न यांत्रिक शक्ति —इनकी आपेक्षिक गति तथा आकर्षण शक्ति के कारण सागर में जो ज्वार भाटा आता है उसकी यान्त्रिक शक्ति तो बहुत बड़ी है, परन्तु उसे भी उपयोग में लाने का उपाय अभी तक हम मालूम नहीं कर सके हैं।

(iii) पदार्थ का शक्ति में परिवर्तन—यह शक्ति हमे परमाणुओं के विखंडन होने से अथवा परमाणुओं के संयोजन से प्राप्त होती है । परमाणुओं के भीतर इस शक्ति का महान भंडार है । अभी तक यह शक्ति

विनाशकारी कार्यों के ही प्रयोग में लाई गई, परन्तु अब इसका उपयोग शान्तिमय कार्य्यों में किया जाने लगा है। इसी शक्ति से अब ट्रैक्टर, पनडुब्बियां बर्फ-तोड़ने वाले आइस-ब्रेकर्स, रेलगाड़ियां, आदि चलाए जाने लगे हैं।

साधारणतः लाभकारी कार्य करने में मनुष्य मुख्य रूप से, शक्ति की आवश्यकता की पूर्ति उन स्रोतों से प्राप्त करता है, जिसके निर्माण में सूर्य की ही शक्ति ने बड़ा भाग लिया है : वह है **प्रकाश संश्लेषण (photosynthesis)**—इस क्रिया में पौधे अपने हरे रंग से सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में वायु की कार्बन-डाइ-आक्साइड को खण्डन करके शर्करा प्रोटीन्स आदि का निर्माण करते हैं। पौधों की प्रत्येक हरी कोशिका एक बहुत छोटी तथा आश्चर्यजनक प्रयोगशाला है जिसमें, योग्य पर्णहरिम (Chlorophyll) एक फल है और हरिमकरण (Chloroplasts) योग्य तथा कुशल वैज्ञानिक है। कार्बन-डाइ-ऑक्साइड तथा जल कच्चे पदार्थ हैं जो प्रयोगशाला मे निरन्तर सप्लाई-विभाग द्वारा भेजे जाते हैं। हरिमकरण शक्ति का प्रयोग सूर्य्य के प्रकाश से करते हैं और केवल दिन में ही यह कार्य्य करते हैं। सूर्य्य के प्रकाश की गतिज शक्ति लकड़ी तथा कोयले के अणुओं में स्थितिज शक्ति के रूप में कण कण मे एकत्रित हो जाती है, और इनके जलाए जाने पर फिर से गतिज शक्ति में परिवर्तित हो जाती है। हमारे उपयोग की शक्ति का यही मुख्य साधन है। पिछले सौ वर्ष में वैज्ञानिक प्रगति के कारण शक्ति का व्यय कहीं अधिक बढ़ गया है, और हमारे कोयले, पेट्रोल तथा पेट्रोल के स्रोत पृथ्वी में इतने सीमित हैं कि यह अनुमान लगाया गया है कि अगले लगभग सौ या एक सौ पचास वर्षों मे यह स्रोत समाप्त हो जाएंगे, यदि इसी प्रकार इनका उपयोग चलता रहा। इसी कारण वैज्ञानिकों का ध्यान एक अटूट और अक्षय शक्ति प्राप्त करने के स्रोत ढूंढ निकालने की ओर आकर्षित हुआ जो परमाणु-शक्ति है। इसी के द्वारा शक्ति की समस्या सुलझती दीख पड़ती है।

शक्ति के स्रोत जो साधारणतः आजकल उपयोग में लाए जा रहे हैं वे निम्नलिखित हैं :—

(१) पानी—नदी नहरों का बहता हुआ पानी सब से प्रमुख उद्गम माना जाता है। इसमें गतिज शक्ति होती है और इसके प्रवाह के वेग से आटा पीसने की चक्कियां, विद्युत घरों में टरबाइन्स और डाइनमो चलाए जाते हैं और यह गतिज शक्ति यांत्रिक शक्ति में परिवर्तित हो जाती है। कई जगह बाँध बनाकर पानी एकत्रित किया है और काफी ऊँचाई से नीचे गिराया जाता है, जिससे स्थिर पानी की स्थितिज शक्ति

गतिज शक्ति में बदल जाती है। हमारे देश में भांकड़ा-नागल, दामोदर घाटी, हीराकुंड, चम्बल बांध इत्यादि योजनाएं सिंचाई करने के लिए तो चलाई ही जा रही हैं, परन्तु इनसे विद्युत भी उत्पन्न की जाती है। इस प्रकार की विद्युत को जल-विद्युत (Hydro-Electricity) कहते हैं। बम्बई के पास खूनावाला में इसी प्रकार पर्वतों की ऊँचाई से अनेकों झरनों का पानी बड़े वेग से नीचे गिराया जाता है और विद्युत उत्पन्न की जाती हैं।

(२) कोयला (Coal)—जहाँ नदियां नहीं होतीं और विद्युत उत्पन्न करने के लिए काफी मात्रा में पानी उपलब्ध नहीं है वहाँ कोयला जला कर ताप से भाप बनाई जाती है। इस भाप से ही रेल के इंजन, विद्युत-घरों में स्टीम-टरबाइन्स और बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों में भारी मशीनें चलाई जाती हैं। समुद्र में जहाज भी अधिकतर कोयले से ही चलाए जाते हैं। भाप के अणु तीव्र गति से सिलिण्डर के अन्दर पिस्टन से टकराते हैं। इन कणों की गतिज शक्ति के धक्के के कारण पिस्टन आगे-पीछे को हरकत करता है।

(३) पेट्रोलियम(Petroleum)—आधुनिक समय में पेट्रोल, डीज़ल तेल अथवा गासलेट से शक्ति बहुतायत से प्राप्त की जाती है। मोटरकारें, ट्रैक्टर, वायुयान, रेलगाड़ियां सभी या तो पेट्रोल अथवा डीज़ल तेल से चलाई जाती हैं। जहां विद्युत नहीं होती वहां मिट्टी के तेल का ही प्रयोग किया जाता है। इससे ही ताप-शक्ति, प्रकाश-शक्ति और यान्त्रिक शक्ति उत्पन्न कराई जाती है।

(४) वायु (Air)—वायु भी शक्ति का एक उद्गम है। वायु के वेग में भी गतिज शक्ति है जिससे कहीं-कहीं यान्त्रिक शक्ति प्राप्त की जाती है। तूफान के समय आंधी की प्रचण्ड शक्ति अति तीव्र वेग से गति करने पर शक्ति-उत्पादन का एक अच्छा उदाहरण है। प्रचण्ड वेग के कारण वायु के सूक्ष्म परमाणुओं में इतनी अधिक शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि बड़े-बड़े मोटे पेड़ों को तथा बड़े-बड़े पुलों को भी उखाड़ फेंक सकती है।

(५) परमाणु (Atoms)—रेडियम की खोज के कारण परमाणु सम्बन्धी कल्पनाओं में बड़ा हेर फेर हुआ। परमाणु भी विभक्त किया जा सकता है और यह अनेकों सूक्ष्म कणों का बना हुआ है। एक-एक परमाणु शक्ति का भंडार है। आइन्सटीन के सापेक्षवाद सिद्धान्त के अनुसार द्रव्य को शक्ति में परिवर्तित किया जा सकता है। द्रव्य और शक्ति का सम्बन्ध आइन्सटीन ने अपने $E = mc^2$ समीकरण द्वारा दर्शाया, जिसके अनुसार एक ग्राम द्रव्य की मात्रा से $E = 1 \times (3 \times 10^{10})^2 = 9 \times 10^{20}$ अर्ग शक्ति प्राप्त होती है जो इतनी

अधिक होती है कि ५००० किलोवाट के इन्जन को लगातार सात महीने तक चला सकती है। इस शक्ति की प्रबलता का अनुमान हम इस प्रकार लगा सकते हैं :

एक ग्राम पानी का तापक्रम १ डिग्री सैंटीग्रेड बढ़ाने के लिए ताप की जितनी मात्रा की आवश्यकता होती है, उसे एक कैलोरी (Calorie) कहते हैं। एक कैलोरी का सामर्थ्य बल लगभग $4 \cdot 2 \times 10^7$ अर्ग के बराबर होता है।

$$1 \text{ Calorie} = 4 \cdot 2 \times 10^7 \text{ Ergs.}$$

इसके आधार पर हम 9×10^{20} अर्ग शक्ति का कैलोरीज के रूप में अनुमान लगा सकते हैं। इस शक्ति से लगभग 2×10^5 टन पानी उबाला जा सकता है।

इसी प्रकार यदि हम केवल एक औंस कोयले से परमाणु शक्ति प्राप्त करें तो वह इतनी अधिक होगी कि 100,000 अश्वबल (Horse Power) के इंजिनों को निरन्तर एक वर्ष तक चला सके। उपरोक्त उदाहरणों से मनुष्यों को शक्ति के एक ऐसे स्रोत की आशा बंध गई है जो लाखों वर्ष तक अनन्त भण्डार की भांति कार्य्य करेगा।

आइन्सटीन की खोज से प्रेरित होकर वैज्ञानिक इस प्रयत्न में लग गए कि किसी प्रकार परमाणु-शक्ति प्राप्त करने की विधि मालूम की जाए।

परमाणु युग के बीज तो उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त ही में बोए जा चुके थे जब कि रेडियोधर्मी पदार्थों की खोज हुई थी। सन् १९०२ ई० में पियरी और मेरीक्यूरी ने यह बतलाया था कि रेडियोधर्मी पदार्थों का प्रत्येक परमाणु एक निरन्तर अपार शक्ति का उद्गम है। १९०३ में रदरफोर्ड और सौडी ने कहा था कि यह शक्ति परमाणु के भीतर से निकलती है और साधारण रासायनिक परिवर्तनों द्वारा स्वतन्त्र की हुई शक्ति से कहीं अधिक महान है।

परमाणु की रचना एक छोटे सौरमण्डल की सी है। प्रत्येक परमाणु के अंदर एक केन्द्रक सूर्य के समान है जिसके चारों ओर स्थित दूरी पर, अपने २ कक्ष में, ऋण विद्युतीय कण (Electrons) चक्कर लगाते हुए ग्रह हैं।

ये सारे कण विद्युत् शक्ति से बंधे रहते हैं और अपने कक्ष को छोड़ कर नहीं जा सकते। केन्द्रक में, हाइड्रोजन के परमाणु के अतिरिक्त, दो प्रकार के कण हैं, प्रोटोन तथा न्यूट्रोन। इन्हीं दोनों कणों की संयुक्त मात्रा किसी तत्व का परमाणुभार (Atomic Weight) होता है। बड़ी सावधानी से प्रयोग करने पर पता चला कि कुछ हल्के तत्वों का परमाणु-भार इनके विभिन्न भागों के भार से कुछ कम होता है।

उदाहरणार्थ :

हिलियम तत्व के केन्द्रक में दो न्यूट्रोन और दो प्रोटोन हैं। प्रत्येक प्रोटोन का परमाणु-भार १.००७५८ इकाई है और प्रत्येक न्यूट्रोन का १.००८९३ इकाई है। इस प्रकार हिलियम का परमाणु-भार इनकी संयुक्त मात्रा अर्थात् ४.०३३०२ के बराबर होना चाहिए, परन्तु है ४.००२८२ इकाई। इससे ज्ञात होगा कि हिलियम के गणित किए भार व वास्तविक भार में ०.०३०२२ इकाइयों का अन्तर है। इस प्रकार यदि प्रोटोन और न्यूट्रोन को मिला कर एक ग्राम हिलियम मे बदल सकें तो हमें हिलियम के अतिरिक्त २००००० किलोवाट अर्ग शक्ति भी प्राप्त होगी। यह शक्ति ताप के रूप में प्रकट होती है।

तत्वों का यही भार वह बल है जो इन कणों को परस्पर बाँधे हुए है। केन्द्रक की इसी बाध्य शक्ति (Electrostatic force) को मुक्त करना ही परमाणु-भार का शक्ति में परिवर्तन होना कहलाता है। परमाणु शक्ति का यही स्रोत है और एटम तथा हाइड्रोजन बम इसी सिद्धांत पर बनाए गए हैं।

पृथ्वी पर पाए जाने वाले केवल भारी तत्व ही प्राकृतिक रूप से रेडियोधर्मी होते हैं। स्वतः खण्डित होते २ ये हल्के तत्वों में परिवर्तित हो जाते हैं। यूरेनियम का एक परमाणु इस प्रकार सीसा बन जाता है।

वैज्ञानिक अब यह सोचने लगे कि क्या यह प्राकृतिक रेडियोधर्मी विधि किसी प्रकार उल्टी नहीं की जा सकती और रेडोन गैस में अल्फा कण प्रवेश कराकर फिर से वे रेडियम तत्व नहीं बना सकते ?
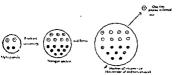
सन् १९१९ में रदरफोर्ड ने हल्के तत्व नाइट्रोजन (परमाणु भार १४) को अल्फा कण अथवा हिलियम (प०भा० ४) के परमाणु के केन्द्रक से आघात कराया। फलस्वरूप नाइट्रोजन के परमाणु से एक प्रोटोन निकल गया और फिर

परमाणु मार केवल १३ ही रह गया, परन्तु एक अल्फा कण ने उसका स्थान ले लिया और एक नया ही तत्व (प० मा० १७) बन गया जो ऑक्सीजन का समस्थानीय तत्व था।

इसी प्रकार और भी तत्वों पर आघात किए गए। इस आघात में न्यूट्रोन सबसे अधिक प्रभाव शाली सिद्ध हुए क्योंकि ये विद्युत-उदासीन होते हैं और इन पर ऋण-विद्युतीय कणों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। केन्द्रक के पास तक पहुंचने तक इनकी शक्ति क्षीण नही होती जैसे कि विद्युत आवेश वाले कणों की, जो बाहरी इलैक्ट्रोन से टकराने में व्यर्थ में खो बैठते हैं। न्यूट्रोन अपनी शक्ति उस समय खोता है जब वह परमाणु के केन्द्रक से टकराता है। ऐसे आघातों के लिए बड़ी २ भट्टियों-साइक्लोट्रोन (Cyclotron), बीटाट्रोन (Betatron) इत्यादि का आविष्कार हुआ। ये कणों की गति को बढाने में सहायता देती हैं, जिसके कारण इनकी भेदन शक्ति अधिक हो जाती है।

इन सब प्रयोगों में केन्द्रक पर आघात करने के लिए बहुत अधिक शक्ति की आवश्यकता पड़ती थी और इसके बदले मे बहुत कम शक्ति प्राप्त होती थी। एक दूसरी समस्या यह भी थी कि इस प्रकार की क्रिया एक बार आरम्भ होने के बाद लगातार चालू नही रहती थी।
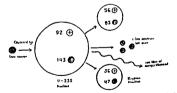
सन् १९३९ में जर्मनी के वैज्ञानिक ऑटोहैन (Otto Hann) और स्ट्रैसमैन (Strassmann) ने यह बतलाया कि यूरेनियम के एक समस्थानिक तत्व U—235 पर मन्द न्यूट्रोन्स द्वारा आघात करने में शक्ति बहुत अधिक मात्रा में मुक्त होती है और यूरेनियम का केन्द्रक खण्डन होकर दो कणों में विभाजित हो जाता है—एक बेरियम (Barium) और दूसरा क्रिप्टन (Krypton) इस क्रिया के फलस्वरूप १५ न्यूट्रोन्स बाहर निकलते हैं। इनमें से १२ न्यूट्रोन्स तो शक्ति मे परिवर्तित हो जाते हैं और

तीन न्यूट्रोन शेष रह जाते हैं, जो अन्य परमाणुओं पर प्रहार करते हैं और कुछ परिस्तिथियों के अन्तर्गत इस क्रिया शृंखला को चालू रखते हैं । इस प्रकार एक निरन्तर विखण्डन क्रिया होती रहती है । करोड़ों परमाणुओं के इस प्रकार विखण्डन से अपरिमित शक्ति का प्रादुर्भाव होता है ।

परमाणु विखण्डन के द्वारा जो शक्ति विमोचित होती है वह विशेष यन्त्र के द्वारा स्थानान्तरित की जाती है ;तत्पश्चात् उसका उपयोग ताप तथा विद्युत आदि के रूप में होता है। इसके अतिरिक्त विखण्डन के समय निकलने वाले विकिरण (Radiations) का उपयोग विभिन्न तत्वों के रेडियोधर्मी समस्थानीयरूप (Radio active Isotopes) बनाने के लिए किया जाता है जो बहुत से रोगों के उपचार में तथा अन्य जीवन के क्षेत्रों में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए है ।

वैज्ञानिकों का कहना है कि भविष्य में रेल, मोटर, वायुयान और कीटाणुओं को मारकर रोगों की चिकित्सा आदि सब कार्य परमाणु शक्ति ही के सहारे होने लगेंगे । वह युग ऐसा होगा कि सेकिंडों में हम सैकड़ों मील की यात्रा कर सकेंगे और इस प्रकार की मशीनों का आविष्कार होगा कि पलक मारते ही बड़े-बड़े कार्य हो जाया करेंगे । फिर हमें कोयला, तेल, बिजली तथा अन्य ईंधन की आवश्यकता नहीं रहेगी। परमाणु शक्ति से इतनी गर्मी प्राप्त की जा सकेगी कि संसार के समस्त ठण्डे स्थान, जहां वर्तमान समय में जीवधारी नहीं रह सकते, शीघ्र ही जीवों के निवास करने के योग्य बन सकेंगे । इस शक्ति का प्रयोग नदियों के बहाव बदलने में, पहाड़ों को समतल करने में तथा औद्योगिक मिलों के संचालन में हो सकेगा । एक तत्व के परमाणु के केन्द्रक को तोड़कर और उसमें दूसरे न्यूट्रोन जोड़ कर, दूसरे तत्व भी बनाये जा सकेंगे ।

२. रोगों के विरुद्ध संघर्ष (Fight against Diseases)—

कुछ लाख वर्ष हुए जब मनुष्य का इस पृथ्वी पर जन्म हुआ । उसका जीवन पशु का सा था । वह मांदों अथवा गुफाओं में निवास करता था, अन्य पशुओं की भांति ही जो कुछ भी उसे अपने निवास स्थान के पास—पौधों की जड़ें, तने, फल तथा आखेट किए हुए जन्तु आदि, मिल जाते थे उन्हें खाता था, और यदि वह रोग ग्रसित हो जाता था तो असहायता से मृत्यु को प्राप्त हो जाता था । शनैः शनैः बड़ा मस्तिष्क, सोचने विचारने की शक्ति, वाणी, तीक्ष्ण सहयोग आदि जैसी सुविधाओं के कारण वह अन्य जीवित जन्तुओं के अपेक्षाकृत जीवन संघर्ष में अधिक सफल हुआ । परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढालने में तथा जो कठिनाइयां उसके समक्ष आईं, उनको दूर करने में वह सामर्थ्य हुआ, परन्तु अनेक बातों में असफलता

प्राप्त करते हुए भी वह स्वास्थ्य के क्षेत्र में पीछे रह गया। उसके समक्ष दो समस्याएं खड़ी हो गईं—एक तो रोग और दूसरी भुखमरी।

रोग पर विजय पाने के लिए मनुष्य को ऐसे सूक्ष्म जीवित जीवों से सम्बन्ध रखना पड़ता है जो सूक्ष्मदर्शक यंत्र से भी दिखलाई नहीं पड़ सकते। मनुष्य के शरीर में प्राकृतिक रोगविरोधी शक्ति बड़ी प्रबल होती है, जो इन जीवों से संघर्ष करती है। वृद्धावस्था तथा अकस्मात घटनाओं के फलस्वरूप अथवा संग्राम में मनुष्यों की मृत्यु हो जाती है, परन्तु ये सब इतने जटिल नाशवान नहीं होते जितने कि रोग तथा भुखमरी।

आदिकाल से ही प्रत्येक देश में किसी न किसी प्रकार के संचारक रोग फैलते रहे हैं। यह संभव है कि मृत्यु के अतिरिक्त किसी भी प्राकृतिक घटना ने मनुष्य के चित्त पर इतना प्रभाव नहीं डाला, जितना कि मृत्युकारी संचारक रोगों ने। यह समस्या आज भी उसे विचलित एवम् पराजित कर रही है। यह कहा गया है कि मिश्र के राजाओं के निष्ठुर हृदय को नम्र करने हेतु ईश्वर ने इन रोगों को अपना अस्त्र बनाया। छटी तथा ग्यारहवीं शताब्दियों में योरुप में बड़ी महामारी फैली थी। हैजा, न्यूमोनिया, इनफ्लुएन्जा आदि ने भी पृथक पृथक लोक राष्ट्रों में महान संकट तथा भय उत्पन्न किया था। प्राचीन समय में मानव के ये शत्रु बहुत शक्तिशाली थे तथा इनसे होने वाली हानियों की तो कोई सीमा ही नहीं थी। इसी कारण इन से डर कर अज्ञान के वशीभूत मनुष्य इनको देवी देवताओं के क्रोध का परिणाम समझ बैठा और यह विश्वास करने लगा कि इन सब में प्रतिकार (Retribution) प्रतिक्रिया (Revenge), अलौकिक प्रतिनिधियों (Supernatural Agencies), दानव (Devils) तथा दैत्यों (Demons) का ही हाथ है। ऐसे विचार प्राचीन मनुष्यों में ही नहीं वरन् सभ्य पुरुषों में भी आज प्रचलित हैं।

ईसा से चार सौ वर्ष पूर्व हिप्पोक्रेटीज (Hippocrates) ने सर्व प्रथम इन विचारों के विपरीत यह कहा था कि कोई भी रोग दैत्यों अथवा दानवों से नहीं फैलाया जाता, वह तो प्राकृतिक कारणों से ही फैलता है। उसने कहा कि स्वभाव, स्वास्थ, ऋतु तथा रोग पारस्परिक सम्बन्धित हैं और ऋतुओं की कुछ विशेष स्थिति के अनुकूल रोग हो जाते हैं। वैरो (Varro) ने ईसा से चालीस वर्ष पूर्व बतलाया था कि कुछ सूक्ष्म जीव दलदलों तथा तालाबों से निकल कर मनुष्य के मुंह अथवा नथुनों द्वारा शरीर में प्रवेश हो जाते हैं। १६० ई० में गैलेन (Galen) ने भी यह कहा कि किसी वातावरण विशेष में संक्रामक रोग अवश्य फैलेगा और वह उनकी जो इसकी तीक्ष्णता के लिये व्यक्त है दशा पर, उनके प्राकृतिक लक्षण तथा उनके

जीवन की स्वाभाविकता पर निर्भर होगा। तत्पश्चात् लुई-पास्च्योर (Louis Pasteur) तथा कौच (Koch) की जीवाणु सम्बन्धी खोजों ने सूक्ष्म जीवों की ओर ध्यान आकर्षित किया। इन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया कि बहुत से रोग कीटाणु द्वारा ही फैलते हैं और यदि मनुष्य इन कीटाणुओं को शरीर में प्रवेश न होने दे अथवा हो जाने पर इनको नष्ट कर दे, तो वह रोगग्रस्त हो ही नहीं सकता। "प्रत्येक रोग किसी न किसी जीवाणु द्वारा ही फैलते हैं" (Germ Theory of Disease) इस सिद्धान्त का जन्मदाता पास्च्योर ही माना जाता है। पैट्रिक मैनसन (Pattrick Manson) की इस खोज ने, कि फाइलेरिया (Filaria) मच्छरों द्वारा एक मनुष्य से दूसरे में चला जाता है, सम्प्रेक्षक की विधि बतलाई। संचारक रोगों के फैलने के स्टैलीब्रास (Stallybrass) ने तीन कारण बतलाए—(१) स्वयं मनुष्य, (२) असामयिक साधन (Casual agent) अथवा प्रतिनिधि, जैसे कि मलेरिया का कीटाणु तथा क्षय रोग का जीवाणु आदि, और (३) सम्प्रेक्षक का साधन।

पिछले कुछ वर्षों में संचारक रोग के फैलने की स्थितियों को बतलाने के प्रति बहुत कुछ प्रकाश डाला गया है, पर यह प्रत्यक्षतः जान लेना चाहिए कि रोगों का फैलना (Spread of disease) और संसर्ग का फैलना (Spread of infection) दो भिन्न भिन्न बातें हैं, यद्यपि दोनों हाथ में हाथ मिला कर चलते हैं।

विस्तृत अध्ययनों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि जनता में संसर्ग कितनी ही दूर तक फैला हो वास्तविक रोग के प्रत्यक्ष प्रमाण बहुत कम होते हैं—संसर्ग तभी प्रत्यक्ष होता है जब रोग वास्तविक रूप से उपस्थित न हो। सूक्ष्म-जीवों की संसर्गता की शक्ति (Infective power) तथा जनता की सुविकारिता (Susceptibility) दोनों ही संचारक रोग के फैलने में आवश्यक भाग लेते हैं। कीटाणु निर्बल भी हो सकते हैं और अति विषाक्त भी, परन्तु रोग उत्पन्न करने के लिए उनको अति कटु भी होना चाहिए और पर्याप्त मात्रा में भी।

इसी प्रकार शरीर रूपी भूमि इन कीटाणुओं की वृद्धि के लिए युक्त भी हो सकती है अथवा अनुपयुक्त भी। एक थका हुआ, भूखा अथवा ऐसे स्थान में रहने वाला मनुष्य जहां प्रकाश व वायु का प्रवेश न हो और जो व्यायाम अथवा परिश्रम भी न करपाता हो शीघ्र रोगी हो जाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि संचारक रोग स्वयं ही उस स्थान विशेष की जनता में एक प्रकार की रोग से मुक्ति (Immunity) विकसित कर देते हैं और इस प्रकार संसर्ग के आगे फैलने पर रोक लग जाता है—इसको "Epidemic immunization" कहते हैं।

भूमि, वर्षा, ऋतु, आयु, नर या मादा का होना (Sex), आर्थिक परिस्थितियाँ

तथा मानुषी समागम व यात्रा सभी पृथक पृथक रूप से संचारक रोगों के फैलाने को प्रभावित करते हैं।

रोग के फैलने के कारण (Spreading of Disease)

छोटे २ जीव, जिनमें कुछ तो मनुष्यों के मित्र और शेष सबसे भयकर शत्रु होते हैं, कीटाणु (Bacteria) कहलाते हैं। शत्रु कीटाणु रोग प्रसारक होते हैं और क्षय, हैज़ा, मोतीझरा, प्लेग, आदि अनेक रोग फैलाते हैं। इनसे हमे निरन्तर युद्ध करना पड़ता है। जिस मनुष्य के शरीर में दूषित कीटाणु पहुंच जाते हैं यह उसके स्वास्थय कीटाणुओं का ह्रास करने लगते हैं। यही कारण है कि धीरे धीरे रोगी निर्बल होकर जीवन तक से हाथ धो बैठता है। रोगोत्पादक कीटाणु शरीर में प्रवेश करके दो प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं—कुछ एक देशीय (Endemic) रोग होते है—और कुछ सर्व देशीय (Epidemic)। जैसे फोड़े फुन्सी का होना एक देशीय क्रिया है, मेलेरिया गर्म देशों मे तथा गठिया का रोग नम स्थानों में बहुतायत से फैलता है और हैज़ा, न्यूमोनिया, आन्त्रिक ज्वर आदि सर्व देशीय हैं। ये जीवाणु चार प्रकार से रोग उत्पन्न करते हैं अर्थात् चार प्रकार से मानव शरीर मे प्रवेश कर जाते है :—

१. रोगी के श्वास के साथ अथवा छींक व खांसी के द्वारा रोग के असंख्य कीटाणु बाहर निकलते हैं, जो आस पास की वायु मे फैल जाते हैं। यह श्वास के साथ स्वस्थ मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। किसी किसी मनुष्य के बात चीत करते समय भी थूक की छोटी छोटी बूदे मुह के बाहर निकलती हैं, जिनके साथ ये कीटाणु बाहर आकर वायु में फैल जाते हैं। कभी २ रोगी के वस्त्र तथा और वस्तुओं के उपयोग करने से भी दूसरे मनुष्य रोगाक्रान्त हो जाते हैं। जैसे—चेचक, जुकाम, खांसी, क्षय रोग व इन्फ्लूएनज़ा।

२. कुछ रोग दूषित खाद्य पदार्थ, अस्वच्छ पानी अथवा अन्य पेय पदार्थों द्वारा शरीर मे प्रवेश हो जाते हैं—ये हैं आन्त्रिक ज्वर, हैज़ा, पेचिश आदि।

३. कुछ कीटाणु त्वचा के कट जाने के स्थान के अथवा किसी खुले हुए घाव के द्वारा शरीर में पहुँच जाते हैं। घावों पर कोई प्रतिविष न लगाने से कीटाणुओं के लिए द्वार खुला रहता है।

४. रोग फैलने में कुछ कीट जैसे मक्खी, मच्छर, पिस्सू आदि भी बड़ा भाग लेते हैं। मच्छरों के काटने से मलेरिया, पिस्सू से प्लेग और मक्खियों से आन्त्रिक ज्वर, हैजा आदि अनेक रोग फैलते हैं।

५. कई रोग ऐसे होते हैं जो एक दूसरे के सम्पर्क से फैलते हैं—ये रोग ससर्मज कहलाते हैं। रोगी के पास उठने बैठने, साथ साथ खाने व पानी पीने से भी रोग लग जाया करता है।

६. कुछ रोग शरीर के लिए आवश्यक तथा उपयोगी पदार्थों के अभाव के कारण हो जाते हैं। यदि कारबोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज लवण एवम् विटामिन यथार्थ मात्रा में शरीर को न मिलें तो भांति भांति के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इन रोगों को (Deficiency Diseases) अपर्याप्त पोषक भोजन से उत्पन्न रोग कहते हैं। विटामिन के बिना हम भोजन का पूर्ण सदोपयोग नहीं कर सकते, हमारे अन्दर आलस्य आ जाता है, बच्चों की वृद्धि रुक जाती है, युवा पुरुष व स्त्री २५ वर्ष की आयु में बूढ़े दीखने लगते हैं इत्यादि। नमक आमाशय रस तथा पित्त रस का आवश्यक भाग है। प्रयोगों में प्राणियों को बिना नमक का भोजन देकर प्रमाणित किया गया है कि ऐसे प्राणियों को भूखा रहने के अतिरिक्त शीघ्र मृत्यु हो जाती है। इन सब विधियों में प्रथम विधि ही अधिक सामान्य है।

रोगों की रोकथाम, उन पर नियन्त्रण तथा उपचार

Prevention, Control & Curing of Diseases :

संक्रामक रोगों के लक्षण (Symptons of Infectious Diseases)

(१) विषैले पदार्थ, जो शरीर मे हो जाते हैं, ताप-उत्पादन (Heat Production) तथा ताप हानि (Heat Loss) के सन्तुलन को उलट देते हैं और इस कारण तापमान बढ़ जाता है।

(२) ताप-मान उच्च होते हुए भी ज्वर-कम्प (Rigour) होता है अर्थात् रोगी को बड़ी ठण्ड लगती है और कपकपी आती है।

(३) क्यों कि त्वचा अपना कार्य ठीक प्रकार से नहीं कर पाती और मल पदार्थ बाहर निकलने का प्रयत्न करते हैं—इस कारण शरीर पर चकोते अथवा फफोले से पड़ जाते हैं।

(४) गले में खराश होना, सर दर्द, तथा जी मिचलाना आदि हो जाते हैं।

ये कीटाणु जब शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, तो बड़ी शीघ्रता से अपनी वृद्धि करते हैं और कुछ विषैले पदार्थ (Toxin) बनाते हैं, जो रक्त प्रवाह के साथ सारे शरीर मे ले जाए जाते हैं और रोग उत्पन्न कर देते हैं। इस कारण यह आवश्यक है कि इन कीटाणुओं को शरीर में प्रवेश करने से रोका जाए। मनुष्य का शरीर प्राकृतिक रूप से ही यह कार्य करता है। हमारी त्वचा, नथुने तथा मुंह

ही कीटाणुओं के शरीर में प्रवेश के मुख्य द्वार हैं । इन से रक्षा हेतु युद्ध करने के लिए रण-क्षेत्र के समान सेना सुरक्षा-पंक्तियों में संगठित रहती है। पहिली पंक्ती हमारी त्वचा है जिसकी चिकनाहट पानी व कीटाणुओं के प्रवेश को रोकती है। नथनों में बाल होते है, और श्वास नली के अस्तर के कोष भी बारीक बारीक बरौनी से युक्त हैं, जो कीटाणुओं को प्रवेश नहीं होने देते। मुंह के भीतर अम्लीय क्षार कीटाणुओं के प्रभाव को नष्ट करने में सहायक होती है। यदि त्वचा कट अथवा फट जाती है तो उस स्थान से रक्त बह कर जम जाता है, जो केवल आगे रक्त के बहने को ही नहीं रोकता वरन् कीटाणुओं के प्रवेश को भी बन्द कर देता है। त्वचा कटने समय ही यदि कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं तो उस स्थान पर रक्त का दौरा वेग गति से होता है, जिसके कारण वह स्थान लाल पड़ जाता है और कुछ सूज भी आता है। अधिक रक्त की मात्रा के साथ साथ रक्त के श्वेत कण भी अधिक संख्या में वहां पहुंच जाते हैं, अथवा उनको नष्ट कर देते हैं। कभी कभी वहीं पर एक छोटा सा स्थानीय फोड़ा बन जाता है, जिसके अन्दर श्वेत कण, जीवित तथा मृतक कीटाणु रक्त के द्रव पदार्थ (Serum) के साथ पस (Pus) बना लेते हैं। फिर फोड़े का मुंह बन जाता है, जहां से यह पस निकल जाता है। यह दूसरी सुरक्षा पंक्ति का कार्य करता है ।

शरीर के अन्दर प्रवेश होने वाले कीटाणु शरीर तन्तुओं के विरुद्ध रासायनिक युद्ध करते हैं। वह विषैले पदार्थ बनाते हैं। इन विषैले आक्रमण के लिए एक तीसरी पंक्ति रासायनिक सुरक्षा का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। आक्रमण किये गए तन्तु विरोधी पदार्थों (Anu bodies) का निर्माण करते हैं जो कीटाणुओं के विषैले पदार्थों को निष्क्रिय (Neutralise) कर देते हैं। यह एन्टीबोडीज तीन प्रकार की होती है—(१) एग्लुटीनिन्स (Agglutinins) जो आक्रमणकारी कीटाणुओं को एकत्रित तथा प्रभावहीन कर देते हैं, (२) ओप्सोनिन्स (Opsonins) जो कीटाणुओं को श्वेत कणों के आक्रमण के लिए नर्म कर देते हैं और (३) बैक्टीरियोलाइसिन्स (Bacteriolysins) जो इन कीटाणुओं को घोल देते हैं।

यदि यह सुरक्षा-पंक्ति भी इतना कार्य न कर सके तो मानव शरीर में चौथी पंक्ति भी उसका स्थान लेने को तत्पर रहती है। तन्तुओं के कुछ द्रव पदार्थ लिम्फ वाहिकाओं (Lymph vessels) में चले जाते हैं और ये लिम्फ ग्रन्थियां (Lymph Nodes) कीटाणुओं को बन्धन में डालने के स्थान बनते हैं। ऐसी लिम्फ ग्रन्थियां रक्त प्रवाह के मार्ग में स्थान-स्थान स्थानों पर नियुक्त रहती हैं। इन ग्रन्थियों में विशेष प्रकार के श्वेत कण लिम्फोसाइट्स (Lymphocytes) बन

रहते हैं। मारी आक्रमण से युद्ध करते समय यहां चाहे पस बन कर बड़ा फोड़ा बन जाए परन्तु यह शरीर की मूल रचना तथा आवश्यक अंगों की रक्षा करते हैं।

रक्षाविधान की विधियाँ जब एक बार प्रारम्भ हो जाती हैं तो वह आने आनेवाली कठिनाइयों का सामना करने के लिए तत्पर रहती हैं अर्थात् शरीर के तन्तु आत्मसरक्षण पदार्थों (Defensive substances) का निर्माण निरंतर करते रहते हैं जो वर्षों तक रक्त में प्रवाहित होते रहते हैं। इन विरोधी पदार्थों की उपस्थिति ही एक व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करती है और उस व्यक्ति के रक्त में रोग क्षमता (Immunity from disease) उत्पन्न हो जाती है, जो कई वर्षों में जाकर क्षीण होती है। इसको प्राकृतिक रोग क्षमता (Natural Immunity) कहते हैं। इसी कारण एक बार किसी संक्रामक रोग से ग्रसित होने के पश्चात् वही रोग दूसरी बार नहीं होता। ऐसी ही रोग क्षमता कृत्रिम रूप से टीकों (Vaccination) द्वारा भी उत्पन्न कराई जाती है। एडवर्ड जैनर (Edward Jenner) ने टीके का आविष्कार किया। उस समय यह बात मालूम थी कि यदि किसी व्यक्ति को गोथन शीतला (Cowpox) हो जाए तो उसे चेचक का रोग नहीं होता। इस पर जैनर ने यह विचार किया कि यदि मनुष्य के शरीर में रोगाक्रांत गाय का चेप सूई द्वारा प्रविष्ट करा दिया जाए तो वह चेचक के रोग का शिकार न होगा। इस विचार का परिणाम टीके का आविष्कार था जिससे चेचक के रोगी बहुत कम हो गए। टीके अब और भी कई रोगों के रोकने के लिए लगाए जाते है जैसे मोतीभरा, ऐंथ्रेक्स, कुकरखांसी डिप्थीरिया, आन्त्रिक ज्वर, हैजा आदि।

रोगों के ऊपर नियंत्रण रखने के लिए औषधियों का भी प्रयोग किया जा रहा है। इनमें सल्फा-औषधियां (Sulpha drugs) तथा रोगाणु निरोधक (Antibiotic) औषधियां विशेषतः अधिक उपचार में लाई जा रही है। यह अधिकतर जीवाणुओं से अथवा फफुंद से प्राप्त की गई है। इनकी खोज ने चिकित्सा प्रणाली में बहुत बड़ा प्रभाव डाला है। रक्त, हृदय, आंख, कान, फेफड़ों, हड्डियों के रोगो में अधिक लाभदायक हैं। क्षय रोग, इन्फ्लूएन्जा, कुकरखांसी, आन्त्रिक ज्वर, टिटेनस, ब्रोन्काइटिस, टॉन्सीलाइटिस आदि रोगों के लिए भी बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

विज्ञान से मानव को जो लाभ प्राप्त हुए हैं, उनमें सबसे महत्वपूर्ण शारीरिक और मानसिक रोगों पर विजय प्राप्त करने में सहायता पहुंचाना और इस भांति स्वस्थ जीवन को बिताते हुए आयु में वृद्धि करना है।

संक्रामक रोगों पर नियन्त्रण (Restraint of Infection)—भांति भांति के रोग फैलाने वाले कीटाणु किस प्रकार अपना कार्य करते हैं तथा किसी तरह वह मनुष्य के शरीर में प्रवेश हो जाते हैं, इस जानकारी के पश्चात् यह भी आवश्यक है कि हम यह जान लें कि पृथक पृथक संक्रामक रोगों की रोकथाम करने के लिए क्या क्या विधियां हम प्रयोग में लाएं।

अस्वच्छता, दूषित वायु तथा जल, और अस्वस्थ वातावरण अथवा पास पड़ोस ही इन कीटाणुओं के जीवित रहने के साधन हैं। इसी कारण उनके विरुद्ध युद्ध करने के लिए स्वच्छता ही एक मात्र अस्त्र है। मैले पानी में रोग के कीड़े होते हैं, और उसे पीने से हैजा जैसे रोग हो जाते हैं। मोतीभरा और पेचिश भी गन्दे पानी से हो जाते हैं। कभी कभी दूषित जल से बहुत अधिक दस्त भी होने लगते हैं। इसी प्रकार जहां शुद्ध वायु नहीं होती और सूर्य का प्रकाश नहीं पहुंच सकता, वहां के रहने वाले मनुष्य सदा रोगी और मलिन ही रहते हैं। स्वच्छ वायु और सूर्य के प्रकाश से बहुत से रोगों के कीड़े मर जाते हैं। जिस प्रकार यंत्र को तेल देकर साफ़ रखने से वह अधिक दिन तक अच्छा कार्य करता है, ठीक वैसे ही शरीर को भी जितना स्वच्छ तथा स्वस्थ रक्खा जाएगा उतना ही अधिक समय तक वह काम करेगा। हमारे शास्त्रों में स्वच्छता दो प्रकार की मानी गई है—एक मानसिक और दूसरी शारीरिक। मानसिक स्वच्छता अधिकतर शारीरिक स्वच्छता पर ही निर्भर है। शारीरिक स्वच्छता के साथ साथ ही एक प्रकार की शान्ति, स्फूर्ति, प्रसन्नता और आनन्द का अनुभव होने लगता है। स्वास्थ्य से केवल यही अभिप्राय नहीं है कि शरीर रोग रहित हो वरन् इससे यह जान लेना चाहिए कि हमारी शारीरिक मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का पूरा विकास हो।

विशेष व्यक्तिगत संक्रामक रोगों पर नियन्त्रण रखने की पृथक पृथक विधियां हैं, परन्तु यहां यही जान लेना पर्याप्त है कि ऐसे नियन्त्रण के सामान्य मौलिक सिद्धांत क्या हैं। यह हैं :—

(१) सूचना देना (Notification)—जब कभी भी किसी वैद्य या डाक्टर को किसी रोगी में संक्रामक रोग का पता लगे, उसी समय उसकी सूचना वहां के स्वास्थ्य अध्यक्ष को दे देनी चाहिए, जिससे कि वह आवश्यक सावधानी लेने के योग्य हो सके।

(२) पृथक्करण (Isolation)—जैसे ही यह पता लगे कि अमुक रोगी के संक्रामक रोग है, उसे तुरन्त किसी पृथक स्थान पर पहुंचा देना चाहिए, जहां पर के अन्य व्यक्तियों से उसका सम्पर्क न हो, और जब तक कि संसर्गता समाप्त न हो जाए, उसे वहां ही रहने देना चाहिए।

(३) संसर्ग प्रतिबन्ध (Quarantine)—सक्रामक रोग से ग्रस्त मनुष्यों को अन्य पुरुषों से संसर्ग करने से मना कर देना चाहिए। यह शब्द विशेषतः उन यात्रियों को रोक देने के उपयोग में आता है जो किसी संसर्गित स्थान से चल पड़े हों। ऐसे स्वस्थ मनुष्यों को रोगित हो जाने का डर रहता है और उनके द्वारा अन्य स्थानों में संसर्गता फैल सकती है।

(४) कृत्रिम रोग-क्षमता उत्पन्न कराना (Artificial immunity)—संक्रामक रोग के अनुसार ही जनता के टीके लगाकर रोग क्षमता पैदा कर देनी चाहिए। जब कभी भी ऐसे रोगों के फैलने का भय हो औषध-विभाग के कर्मचारियों को तुरन्त यह कार्य सौंप देना चाहिए कि वह सारे विद्यालयों, कारखानों, दफ्तरों आदि में जाकर सब के टीके लगाएँ।

(५) संचारक रोग से मुक्ति (Disinfection)—रोग के कीटाणुओं को कीटाणुनाशक पदार्थों द्वारा नाश कर देना चाहिए। इसके लिए साधारणतः निम्न-लिखित वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है : फोर्मेलीन (Formalin), क्लोरीन (Chlorine), कार्बोलिक अम्ल (Carbolic acid), ताप (Heat), चूना (Lime), फिनायल (Phenyl), लाइसोल (Lysol), पोटाशियम-पर मैगनेट (Potassium-per manganate), डिटोल (Ditiol), गंधक का धुआं (Sulphur dioxide), डी. डी. टी. (Dichloro-Diphenyl-Trichloroethane), गैमेक्सिन (Gammaxin) इत्यादि।

४. विज्ञान एवं संस्कृति (Science and Culture) :—

विज्ञान एवं संस्कृति शब्दों का आजकल काफ़ी विस्तृत रूप में प्रयोग होता है, किन्तु वास्तविक अर्थों में इन्हें बहुत ही कम समझा जाता है। सच तो यह है कि इन शब्दों की परिभाषा करना ही एक बहुत कठिन कार्य है, क्योंकि कोई भी परिभाषा इनके वास्तविक अर्थ को प्रकट नहीं कर सकती। वास्तव में इन्हें परिभाषित करने की अपेक्षा इनका विवेचन अधिक अच्छी प्रकार किया जा सकता है तो भी कुछ परम्परागत परिभाषाओं के माध्यम से इन शब्दों को समझना लाभदायक ही होगा।

विज्ञान बहुत पुराना है, अपने इतिहास में इसने कई परिवर्तन पाए हैं। प्रत्येक बिन्दु पर यह अन्य सामाजिक कार्य-कलापों से इस प्रकार से सम्बन्धित है कि इसकी परिभाषा करने का प्रयास इसके विकास के किसी विशिष्ट समय से सम्बन्धित केवल एक पहलू को ही बड़ी कठिनता से प्रकट कर सकता है। आइंस्टीन ने इसी विचार को अपने शब्दों में इस प्रकार प्रकट किया है :—

"Science as something existing and complete is the most objective thing to man. But Science in the making, Science as an end to be persued, is as subjective and psychologically conditioned as any other branch of human endeavour :—So much so, that the question

'What is the purpose and meaning of science' ? receives qu different answers at different times and from different sources people."

विज्ञान को एक संस्था, विधि, ज्ञान की सहसम्बन्धित और परम्
उत्पादन करने तथा विश्व एव मनुष्य के दृष्टिकोणों एवं मान्यताओं को परि
वर्तित करनेवाले एक शक्तिशाली प्रभाव के रूप में लिया जा सकता है
विज्ञान ने एक पृथक व्यवसाय की इतने अधिक विशेषताओं को प्राप्त क
लिया है, जिसमें दीर्घ प्रशिक्षण एवं प्रयोग कार्य भी सम्मिलित है, कि विज्ञान क
समझने की अपेक्षा एक वैज्ञानिक को पहिचानना अधिक सरल हो गया है। वास्त
में, विज्ञान की एक सरल परिभाषा यह की जा सकती है कि वैज्ञानिक जो कु
करता है वही विज्ञान है।

विज्ञान को प्रायः इस प्रकार परिभाषित किया जाता है कि यह विशिष्
ज्ञान है, जिसकी उचित प्रकार से परीक्षा की जा सके तथा जिसे प्रमाणित किया ज
सके। किन्तु आजकल इसका एक व्यवस्थित ज्ञान के रूप में अर्थ किय
जाता है। सभी विज्ञान विवेक, बुद्धि, विलक्षता, पर्यवेक्षण तथा प्रतिविचार से
विकसित होते हैं। इस प्रकार इनका लक्ष्य हमें उस ससार के बारे में, जिस
में हम रहते हैं, सामान्य ज्ञान देना होता है। विज्ञान एक ओर भूतकाल के रहस्यों
एवं मिथ्या धारणाओं को दूर करता है, तथा दूसरी ओर प्रकृति में कार्य करने-
वाली शक्तियों पर मानव के नियंत्रण को सभव बनाता है।

सस्कृति शब्द का प्रयोग विस्तृत रूप में किया जाना चाहिए। मनुष्य
स्वाभावतः ही विकासशील है तथा इस विकास को प्राप्त करने के लिए उसे अपनी
बुद्धि का प्रयोग करना होता है, जिससे वह अपनी आवश्यकताओ तथा सुविधा के
अनुसार अपनी प्राकृतिक परिस्थितियो को परिवर्तित एव परिष्कृत कर सके। इस
प्रकार के कोई भी जीवन-दर्शन, विचार, विश्वास तथा नवीन आविष्कार एव खोज,
जिसकी सहायता से मनुष्य अन्य प्राणियों की तुलना मे अपने भौतिक एव आध्यात्मिक
क्षेत्रों को विकसित करता है, सस्कृति का निर्माण करते हैं। संस्कृति मुख्यतया
अपने आप को मानसिक उपलब्धियों से सम्बन्धित रखती है। कला, साहित्य, धर्म,
दर्शनशास्त्र, सामाजिक परम्पराओं एवं विज्ञान के द्वारा उसका स्पष्टीकरण होता
है। आजकल शिक्षित व्यक्ति के लिए सस्कृति शब्द के प्रयोग करने का अर्थ
मस्तिष्क की वैज्ञानिक दशा में प्रवेश करना ही होता है। वास्तव मे सस्कृति का
अर्थ है सुधरी हुई स्थिति। इस शब्द का प्रयोग बड़े व्यापक अर्थ में किया
जाना चाहिए। ऐसी प्रत्येक जीवन पद्धति, रहन सहन, रीति नीति, आचार

विचार तथा नवीन अनुसंधान व आविष्कार सभी संस्कृति के अन्तर्गत आ जाते है। आधुनिक संस्कृति को वैज्ञानिक संस्कृति कहा जाता है। इसका अर्थ है कि प्राकृतिक विज्ञान के तत्व सामान्य जीवन पर पर्याप्त प्रभाव डालते हैं तथा सम्पूर्ण क्रिया कलाओं एव विचारों को एक विशिष्ट रंग देते हैं। वैज्ञानिक संस्कृति समकालिक समाज का ही एक रूप है जिसमे होकर विज्ञान की उपज एवं विचार उसके अच्छे व बूरे परिणामों के साथ छन जाते हैं और इस प्रकार वे सम्पूर्ण संस्कृति को प्रभावित करते हैं। संस्कृति के व्यक्तिगत एव सामाजिक दोनों ही रूप होते हैं। इसकी एक तन्तु रचना (Texture) है जो यद्यपि सामाजिक दृष्टि से एक रूप होते हुए भी परिवर्तित किया जा सकता है, और वास्तव में व्यक्तियों के द्वारा इसमे सतत परिवर्तन किया जा रहा है।

बहुधा यह कहा जाता है कि विज्ञान के महान् आविष्कारों ने मनुष्य के जीवन मे प्रवेश कर जीवन मे उनके स्थान के प्रति उनके दृष्टिकोण को भी प्रभावित किया है। ओपनहेमर (Oppenheimer), जिसका प्रथम अणुबम के निर्माण में हाथ था, का कहना है कि यदि विज्ञान के आविष्कारों का मानव के विचारों एवं संस्कृति पर कोई सच्चे अर्थों मे प्रभाव होता है तो उसे सामान्य व्यक्तियों द्वारा समझा जाना चाहिए। विज्ञान के प्राथमिक विकास के काल मे ऐसा ही हुआ था क्योंकि उस समय पर ऐसे सरल आविष्कार हुए थे जो सामान्य अनुभव से अधिक दूर नहीं थे। डार्विन के सिद्धान्त का संस्कृति पर इतना गहरा प्रभाव पड़ने का यही कारण था कि सामान्य जीवन की दृष्टि से यह बहुत सरल सिद्धान्त था। जीव विज्ञान के क्षेत्र मे होने वाले आधुनिक आविष्कारों के बारे मे हम इस भाषा में बात नहीं कर सकते, या हमारे सबके अनुभव की वस्तुओं से सम्बन्धित नहीं कर सकते। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि दार्शनिक जीवन एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के निर्माण एवं विकास में विज्ञान का प्रमुख प्रभाव इसके विकास के प्राथमिक काल मे ही पड़ा है। वास्तव मे आविष्कार मानवविचारों मे तब ही परिवर्तन ला सकते हैं जबकि वे समाज मे विद्यमान किसी आशा अथवा किसी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं।

विज्ञान एवं परम्पराएं (Science and Traditions) :—

परम्परायें समाज के प्रस्थापित व्यवहारों को ही कहते हैं। सामाजिक रीति रिवाज, विचार एवं मान्यतायें आदि परम्पराओं के महत्वपूर्ण भाग होते हैं। अतः ये संस्कृति के भी प्रमुख तत्व हैं। सभ्यता के प्रारम्भिक इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि उस समय मनुष्य पशु के समान ही था। वह उन्ही की तरह गुफाओं मे रहता था तथा वस्तुओं को उनके कच्चे रूप मे ही खाया करता था।

धीरे धीरे उसने अग्नि तथा इसके उपयोग के बारे में जानकारी प्राप्त की। वह घाटियों के पास बस गया तथा मछली को उबालने लगा जिसे वह नदियों से पकड़ लाता था। उसने पत्थर एवं लकड़ी का उपयोग भी प्रारम्भ किया तथा कुछ जंगली जानवरों को पालने लगा। जंगलों में उसने बीज से सम्बन्धित वैज्ञानिक तथ्य को सीखा। प्रारम्भिक मानव के द्वारा की जाने वाली यह प्रथम वैज्ञानिक खोज थी कि यदि एक बीज को उपयुक्त मात्रा में ताप एवं पानी दिया जावे तो वह पौधे के रूप में विकसित हो जाता है। इस ज्ञान के परिणामस्वरूप कृषि का विकास हुआ। शीघ्र ही उसने पहियों से चलने वाले साधन, कर्घा एवं लिखने की कला का आविष्कार कर लिया। इसमें बाद में चलकर अनेक विकास हुए। यद्यपि यह बहुत छोटी-छोटी उपलब्धियां थी किन्तु फिर भी यह बहुत महत्वपूर्ण थीं क्योंकि इन्होंने मनुष्य को कुछ सीमा तक प्रकृति नियन्त्रण कर सकने की क्षमता प्रदान की थी। अतः यह स्वाभाविक ही था कि अग्नि, पहिया, हल तथा पालतू जानवर आदि वस्तुएं पूजा की वस्तुएं बन गईं। इस प्रकार की प्रक्रिया शताब्दियों तक चलती रही और अन्त में ये बहुत गहरी परम्परायें बन गईं तथा आगे चलकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण की अनभिज्ञता के फलस्वरूप ये अन्धविश्वासों के रूप में परिणित हो गईं। विज्ञान के साथ-साथ उनके वास्तविक स्वरूप को प्रकट किया गया तथा वैज्ञानिक आविष्कारों एवं जांचों के कारण उत्पन्न तर्कसंगत दृष्टिकोण के फलस्वरूप बहुत से रीति रिवाज एवं परम्परायें समाप्त हो गी गईं। प्राचीन काल में बाढ़, बीमारियों एवं अकाल का मानना मशीन, औषधि एवं व्यवसाय से न कर जादू टोन, जानवर एवं मनुष्य की बलि तथा नदियों एवं देवी देवताओं की पूजा आदि के द्वारा किया जाता था।

इस प्रकार विज्ञान ने मनुष्य को न केवल प्रकृति के रहस्यों को प्रकट करके अपितु उसके अनेक अन्धविश्वासों को दूर कर सही अर्थों में शिक्षित किया है। विज्ञान का यही वह पक्ष है जिसने मानव संस्कृति को एक बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित एवं परिवर्तित किया है। वास्तव में संस्कृति को अपने प्रचार-प्रसार एवं विस्तार के लिए विज्ञान से अधिक उत्तम और कोई मित्र प्राप्त नहीं हो सकता। विज्ञान ने धीरे-धीरे मनुष्यों को अन्धविश्वासों से मुक्ति दिला दी है। पहिले से ही प्रचलित एवं स्थापित मान्यता के विरुद्ध किसी नए विचार को स्वीकार करने में लगने वाले समय का कारण विज्ञान की कोई कमी न होकर मानव स्वभाव की निर्बलता ही है। कोई भी मान्यता एवं परम्परा जितनी ही अधिक पुरानी होती है उसे समाप्त करना उतना ही कठिन कार्य होता है। शायद, अन्धविश्वास हमारे समाज की प्राचीनतम परम्पराएं हैं और यही कारण है कि आधुनिक विज्ञान के इतने प्रचार के पश्चात भी आज पृथ्वी पर एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो

न्धविश्वासों से पूर्णतया मुक्त हो। रसेल ने इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा है कि परम्परा के विपरीत पर्यवेक्षण को महत्व देना कठिन कार्य है, और वास्तव में तो यह मानव स्वभाव के विपरीत ही है।" कुछ चीजों पर इसलिए विश्वास किया जाता है क्योंकि लोग यह अनुभव करते हैं कि यह सत्य होनी ही चाहिए। इस प्रकार के विश्वास को दूर करने के लिए बहुत अधिक मात्रा में प्रमाणों की आवश्यकता होती है। जब गैलीलियो ने अपने दूरदर्शक यन्त्र के द्वारा बृहस्पति एवं चन्द्रमा के रहस्यों को प्रकट किया तो परम्परावादियों ने इसे देखने से ही मना कर दिया क्योंकि उनका ऐसा विश्वास था कि ऐसे कोई पदार्थ हो ही नहीं सकते हैं अतः यह दूरदर्शक यन्त्र कोई भ्रान्ति कारक वस्तु है। हमारे देश में शिक्षित परिवारों में भी, जहाँ बीमारियों के कारण को समझा जाता है, जब कोई बीमारी हो जाती है तो रोगी को रोग मुक्त करने के लिए औषधोपचार करने के स्थान पर विभिन्न देवी देवताओं को प्रसन्न करने का प्रयास किया जाता है।

यद्यपि विज्ञान के प्रभाव से अभी तक अन्धविश्वास पूर्णतया समाप्त नहीं हो गए हैं किन्तु यह कहा जा सकता है कि आधुनिक संस्कृति को पहिले की अपेक्षा इन अन्धविश्वासों से अधिक मुक्ति मिली है तथा यह प्रक्रिया सतत रूप से जारी है।

विज्ञान एवं धर्म—Science & Religion—विज्ञान एवं धर्म के बीच सदैव से ही संघर्ष रहा है। ऐसा दिखाई देता है कि विगत पचास वर्षों के अन्तर्गत विज्ञान के परिणाम एवं धर्म की मान्यताएं स्पष्ट रूप से परस्पर विरोध की स्थिति पर आ गई हैं। तो भी विज्ञान एवं धर्म दोनों ही सतत विकास के पथ पर हैं। किन्तु हमारे सारे विचार गलत दिशा में होंगे यदि हमने केवल यही सोचा कि इस विवाद में धर्म सदा ही गलत है तथा विज्ञान पूर्णतया ठीक है। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि जहाँ विज्ञान भौतिक वस्तुओं के नियमन का प्रयास करता है वहाँ धर्म नैतिक एवं प्राकृतिक सौन्दर्य के मूल्यों की भावना के विवेचन के रूप में परिलक्षित होता है। इस प्रकार ये दोनों जीवन के विभिन्न पक्षों का विवेचन करते हैं। हमें इन दोनों के अन्तर को स्पष्ट रूप से समझना चाहिए। व्हाइटहेड ने कहा है कि—"एक ओर गुरुत्वाकर्षण का नियम है और दूसरी ओर पवित्र सौन्दर्य की भावना।" जो एक पक्ष देखता है वह दूसरा नहीं देख पाता है। इस लिए एक अर्थ में तो विज्ञान एवं धर्म के बीच का संघर्ष बहुत ही छोटा मामला है जिस पर अनावश्यक रूप से ही इतना जोर दिया गया है। किन्तु इस तथ्य के होते हुए भी विज्ञान एवं धर्म के बीच टकराव है। सिद्धान्तों का विरोध कोई बुरी वस्तु नहीं, अपितु यह तो एक अवसर है। यह विरोध तो वास्तव में इस बात का द्योतक है कि इस

संसार में अधिक विस्तृत ज्ञान एवं अधिक उत्तम ढंग है जिनके अन्तर्गत अधिक गहन धर्म एवं अधिक विनम्रता से पुनः विज्ञान के बीच सामंजस्य प्राप्त किया जा सकेगा । सर्वोत्तम धर्म एवं विज्ञान दोनों ही सत्य के विवेचक हैं । जहां तक कोई भी धर्म भौतिक तथ्यों से कोई सम्बन्ध रखता है वहां तक उससे यह आशा की जाती है कि यह विज्ञान के ज्ञान के विकास के साथ-साथ गहन रूप से उन तथ्यों को परिवर्तित करता रहे । इस प्रकार से धार्मिक विचारों के लिए इन तथ्यों का वास्तविक महत्व अधिकाधिक स्पष्ट होता जावेगा । वास्तव में धर्म एवं विज्ञान के बीच की अन्तर्क्रिया इस विकास को बढ़ाने की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण साधन है ।

ईश्वर की खोज में व्यस्त मानव-स्वभाव की प्रतिक्रिया ही धर्म है । धार्मिक कार्यों के प्रति मानव स्वभाव की तात्कालिक प्रतिक्रिया पूजा के रूप में प्रकट होती है । किन्तु केवल मात्र भगवान की पूजा करना ही मुग्धता का नियम नहीं है । मनुष्य भगवान की पूजा उसे प्राप्त करने के लिए ही नहीं करते अपितु प्राकृतिक आपत्तियों के विरुद्ध उसका आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए भी करते है । केवल पूजा ही हमारी सहायता नहीं कर सकती किन्तु इसके लिए इन प्राकृतिक विपदाओं के पीछे स्थित समस्याओं के समाधान को समझने के प्रयत्नों की भी आवश्यकता होती हैं । यदि प्रार्थना में कोई शक्ति है भी तो वह सीमित ही है जबकि विज्ञान के द्वारा प्रदत्त शक्ति की कोई सीमा ही नहीं है । ऐसा कहा जाता है विश्वास एवं प्रार्थना के द्वारा पहाड़ को भी हटाया जा सकता है, किन्तु कोई भी इस पर विश्वास नहीं करेगा, और यदि कोई यह कहे कि वैज्ञानिक प्रयत्नों के द्वारा पहाड़ को हटाया जा सकता है तो यह सर्वथा सम्भव है और प्रत्येक व्यक्ति को इस पर विश्वास हो जाता है ।

चूंकि विज्ञान एवं धर्म दो विभिन्न पक्षों के साथ एक दूसरे से सम्बन्धित हैं अतः इन दोनों का ही साथ-साथ होना आवश्यक है । यह ठीक ही कहा गया है कि जहां विज्ञान असफल हो जाता है वहां भगवान का सहारा होता है । ठीक इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि जहां भगवान असफल रहता है वहां विज्ञान कार्य करता है । इस प्रकार ये एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य कर सकते हैं ।

विज्ञान एवं मान्यताएं (Science and Values)

मानव इतिहास के विभिन्न कालों में मानव ने अपनी परिस्थिति, आस पास की वस्तुओं तथा समाज के विभिन्न लक्ष्यों एवं विचारों के बारे में कुछ विशिष्ट मत निर्धारित किये थे । उस विशिष्ट काल में मनुष्य ने ये मत सही निर्धारित किये थे, किन्तु विज्ञान के विकास के साथ-साथ एक सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन आया । इस परिवर्तन के कारण विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में निर्धारित मान्यताओं में बहुत बड़ा परिवर्तन किया जाना आवश्यक है । उदाहरणस्वरूप मनुष्य ने अपने शरीर

के बारे में सोचा था कि यह ईश्वर की रचना है तथा इसकी रचना एवं कार्यों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन करना उसके हाथ में नहीं है। धीरे-धीरे औषधि विज्ञान के विकास के साथ-साथ उसे ज्ञान हुआ कि यह शरीर एक सजीव मशीन के समान है तथा इसमें आवश्यक परिवर्तन किये जा सकते हैं। मानवीय मूल्यों के परिवर्तन का यह एक बहुत ही सजीव उदाहरण है।

संसार के विभिन्न भागों में पहिले से ही खाद्यान्न की काफी कमी है। अर्थशास्त्रियों ने १९७० में एक विश्वव्यापी अकाल का पूर्वानुमान लगाया है और यदि जनसंख्या वृद्धि पर उचित प्रकार से नियंत्रण न किया गया तो मानव एवं पशुओं के जीवन के लिए एक महान संकट उपस्थित होगा। अतः जनसंख्या पर नियंत्रण करने की अति आवश्यकता है और वह कार्य परिवार नियोजन तथा जन्म नियंत्रण के योजनाबद्ध कार्यक्रमों के द्वारा ही किया जा सकता है। विगत वर्षों में इसे अनैतिक कार्य माना जाता रहा है। किन्तु आज पुनरुत्पादन एवं वंशानुक्रम से सम्बन्धित रहस्यों के बारे में वैज्ञानिक ज्ञान के प्रभाव के परिणामस्वरूप हमारे दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गया है तथा लोगों ने परिवार नियोजन एवं जन्म नियंत्रण के कार्य को महत्व प्रदान करना प्रारम्भ कर दिया है। यही क्या, आज कल तो वैज्ञानिक आविष्कारों के उपयोग के बारे में भी मानवीय मूल्यों में परिवर्तन आ रहा है। अणुशक्ति का एक मनुष्य के द्वारा दूसरे का विनाश एवं विध्वस करने के लिए आविष्कार किया गया था किन्तु आज हम देखते हैं कि इसी विध्वंसकारी अणुशक्ति को मानव कल्याण की दिशा में लगाया जा रहा है।

इस प्रकार विज्ञान ने पुराने विचारों एवं मान्यताओं में महान् परिवर्तन ला दिया है। एक नवीन मौलिक दृष्टिकोण विकसित होता हुआ दिखाई दे रहा है। एक नवीन संस्कृति की एक नई आशा दिखाई दे रही है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति आत्म सम्मान एवं आत्मनिर्भरता के साथ जीवन-यापन करने का अवसर प्राप्त कर सकेगा।

विज्ञान के द्वारा संस्कृति को विपदा (Danger to culture by Science) :—

अभी हाल ही में वैज्ञानिक तथा साधारण जनता यह अनुभव करने लगी है कि वैज्ञानिक प्रयत्नों का बहुत बड़ा भाग केवल विध्वंसात्मक कार्यों की ओर लगता जा रहा है और आजकल वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रयोग के फलस्वरूप आधुनिक युद्ध अधिकाधिक भयानक बनता जा रहा है। अणु हथियारों के विकास के साथ-साथ विज्ञान ने मनुष्य को सम्पूर्ण विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है और इसके फलस्वरूप सम्पूर्ण संस्कृति का अस्तित्व ही आशंका में पड़ गया है। आजकल अणु हथियारों के संग्रह की दौड़ लगी है और यदि इस पर नियंत्रण नहीं किया गया तो

हर समय विश्व के हर कोने से सम्पूर्ण मानव समाज का विनाश करने की ज्वाला उठती रहेंगी। यह वैज्ञानिकों के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है तथा यही उचित समय है जबकि वे समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को अनुभव करें। विगत शताब्दियों की तुलना में आज का यह वैज्ञानिक युद्ध अधिक विध्वंसकारी है। अतः एक सरकार के अन्तर्गत संगठित होना आवश्यक है अन्यथा हमें पुनः उसी बर्बर युग के दर्शन करने होंगे अथवा सम्पूर्ण मानव जाति के विनाश के कलंक का टीका अपने सिर पर लगाना होगा। आज विश्व संस्कृति की दिशा में तीव्र गति से आगे बढ़ने का समय आ चुका है। इस प्रकार की भावना संयुक्त राष्ट्र संघ तथा इसकी अन्य संस्थाओं के रूप में परिलक्षित हुई भी है तो भी इस विश्व संस्था को अधिक प्रभावी एवं उपयोगी बनाने के लिए प्रयत्न किये जाने चाहिए।

५. वैज्ञानिकों का सामाजिक उत्तरदायित्व :—

(The Social responsibility of Scientists)

प्राकृतिक शक्तियों पर नियंत्रक शक्ति प्रदान करने वाले नवीन ज्ञान के फलस्वरूप ही सभ्यता का विकास हुआ है। मानव समाज पर आधुनिक विज्ञान के प्रभाव के कारण कई बड़े-बड़े परिवर्तन हो रहे हैं। जीवन के प्रत्येक सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्षेत्र में विज्ञान एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करता है। आधुनिक मानव आधुनिक विज्ञान द्वारा निर्मित पर्यावरण में ही जीवन यापन करता है। इसके साथ-साथ ही विज्ञान द्वारा उत्पन्न परिवर्तनों के साथ मानव समाज के ढांचे को तदनुरूप ढालने की आवश्यकता के कारण अनेक राजनैतिक एवं आर्थिक समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। अतः यह स्पष्ट है कि आज अन्य किसी भी व्यक्ति से अधिक वैज्ञानिक ही मानव समाज पर नियंत्रक प्रभाव रखते हैं, क्योंकि वैज्ञानिकों ने ऐसे हथियार भी उत्पन्न कर दिये हैं जो सम्पूर्ण सभ्यता को ही नष्ट कर सकते हैं। अतः आज जो प्रमुख प्रश्न है वह यह है कि एक वैज्ञानिक मानव जाति का शुभचिन्तक है या विनाशक? दुर्भाग्यवश, वैज्ञानिकों ने प्रारम्भ में खोजें ज्ञान की सीमा को बढ़ाने के लिए की थी, बाद में उनका प्रयोग विध्वंसात्मक कार्यों के लिए भी किया गया। प्रो॰ आइन्स्टीन ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि परमाणु विखण्डन के फलस्वरूप बहुत भारी मात्रा में शक्ति उत्पन्न होती है। किन्तु अन्य जर्मन, अमेरिकन, अंग्रेज तथा रूसी वैज्ञानिकों ने परमाणु बम तथा हाईड्रोजन बम्ब का आविष्कार कर इस सिद्धान्त को [illegible] रूप प्रदान कर दिया। कीटाणुओं की खोज ने मनुष्य को कष्टों से मुक्ति [illegible] किन्तु साथ ही इस खोज ने कीटाणु-युद्ध की सम्भावना भी उत्पन्न कर

दी। अतः स्पष्ट है कि विज्ञान एक दुधारी तलवार के समान है जिससे मनुष्य चाहे तो अपनी रक्षा कर सकता है या स्वयं अपना ही गला काट सकता है।

सबसे प्रमुख बात यह है कि व्यावहारिक विज्ञान के क्षेत्र में किस प्रकार के विचारों को स्थान दिया जाता है। सामान्यतया प्रत्येक व्यक्ति शान्ति प्रगति, प्रचुरता एवं सम्पन्नता चाहता है, और वह स्वाभाविक रूप से ही यह चाहेगा कि विज्ञान उसे इन लक्ष्यों की प्राप्ति में सहयोग दे। किन्तु वास्तविक अनुभव यह बताता है कि मनुष्य सदैव ही पूर्णतया इन्हीं श्रेष्ठ सिद्धान्तों द्वारा शासित नहीं होता है। मनुष्य की इन श्रेष्ठ भावनाओं के ऊपर व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय स्वार्थ, ईर्ष्या एवं घृणा की निकृष्ट भावनाओं का अधिकार हो जाता है। और वैज्ञानिक भी इन निर्बलताओं से मुक्त एक मानव ही है। एक वैज्ञानिक को, उसके व्यक्तिगत रूप में, प्रसिद्धी, भौतिक लाभ या अन्य आकर्षणों के द्वारा अपने उचित मार्ग से विचलित किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप, उद्योग एवं व्यवसाय मुख्यतया विज्ञान के द्वारा ही चलाये जाते हैं और हम जानते हैं कि बड़े-बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठान एवं व्यापारिक संघ श्रेष्ठतम वैज्ञानिकों की सेवायें ऐसे कार्यों के लिए खरीद सकते है जो स्वयं के लाभ के लिए हो और भले ही उनसे समाज का कोई भी हित न हो। अतः इस प्रकार के बहुत से अवसर हैं जबकि व्यक्तिगत स्वार्थ के कार्यों में विज्ञान का दुरुपयोग किया जा सके। राज्य वैज्ञानिकों पर बहुत अधिक नियन्त्रण रख सकता है। वास्तव में तो अधिकांश देशों में वैज्ञानिक खोज तथा इस खोज का प्रयोग प्रत्यक्ष रूप से राज्य के ही नियन्त्रण में आ गये हैं। इस प्रकार विज्ञान राजनीति की दासी बन गया है एवं अत्यन्त प्रतिभाशाली वैज्ञानिक राज्य के केवल मात्र दास के रूप में हो गये हैं।

यह सच है कि आधुनिक युग में विज्ञान को राज्य का संरक्षण एवं प्रोत्साहन आवश्यक ही नहीं अपितु वाञ्छनीय ही है। आधुनिक वैज्ञानिक अनुसन्धान कार्य बहुत अधिक व्ययशील हैं तथा इनके लिए आवश्यक बड़ी मात्रा में धन सामान्यतया किसी एक व्यक्ति, विश्वविद्यालय या अन्य शैक्षणिक व तकनीकी संस्था के द्वारा प्रदान नहीं किया जा सकता। अतः बहुत बड़ी सीमा तक राज्य ही वैज्ञानिक प्रवृति एवं कार्यों को निर्देशित एवं शासित करती है।

अतः यह केवल वैज्ञानिक का ही नहीं अपितु प्रत्येक व्यक्ति का उत्तरदायित्व है कि वह यह देखें कि वैज्ञानिक खोजों का मानव-कल्याण के कार्यों में उचित रीति से उपयोग हो रहा है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य का उस समाज के प्रति उत्तरदायित्व है जिसका वह एक भाग है तथा समाज के द्वारा मानव मात्र के प्रति उसका उत्तरदायित्व हो जाता है। हमारे समय में, जबकि विज्ञान व्यक्तिगत जीवन एवं समाज

के भविष्य को निश्चित करने वाली प्रभावी शक्ति हो गया है, वैज्ञानिकों का विशिष्ट ज्ञान, तथा उससे सम्बन्धित शक्ति से युक्त होने के कारण, विशेष उत्तरदायित्व हो जाता है। किसी भी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा वैज्ञानिक मानव जाति की वर्तमान स्थिति की दुर्दशा एवं विचार शून्यता को अधिक अच्छी प्रकार देख सकता है। इस ज्ञान के अपेक्षा भी वैज्ञानिक ही शत्रु देशों के शस्त्रों के निर्माता रहते हैं। वास्तव में ऐसी परिस्थिति में वैज्ञानिकों के सामने एक विषम चक्र उपस्थित हो जाता है। यदि वैज्ञानिक अपने देश को विज्ञान द्वारा बनाये जा सकने वाले सभी शस्त्र प्रदान करने से मना कर देता है तो अपने देश को शत्रु की दया पर छोड़ने का उत्तरदायित्व उस पर ही होता है। यह एक बहुत बड़ा कारण था जो द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ में हमारे समय के महानतम भौतिकशास्त्रियों द्वारा अमेरिकन राज्य पर परमाणु बम के निर्माण के लिए ज़ोर डालने का प्रेरक बना। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि संसार को जर्मनी के द्वारा परमाणु बम का निर्माण कर भयभीत करने का डर न होता तो इङ्गलैण्ड एवं अमेरिका के वैज्ञानिकों को विश्व युद्ध से पूर्व ही परमाणु बम के निर्माण करने के लिए पर्याप्त वैज्ञानिक प्रोत्साहन एवं प्रेरणा प्राप्त नहीं होती। युद्ध के पश्चात ऐसी आशंका उत्पन्न हुई कि सोवियत रूस शीघ्र ही थर्मोन्यूक्लीयर (Thermo-nuclear) बम्ब का निर्माण करने वाला है और इस आशंका ने शीघ्र ही अमेरिकन वैज्ञानिकों को हाइड्रोजन बम्ब के निर्माण के लिए विवश किया।

कुछ लोग (वैज्ञानिक तथा अन्य) इस सारी आपत्ति का मूल कारण गलत व्यक्तिगत निर्णयों को मानते हैं। मैक्स बोर्न ने कहा है कि यह एक बड़े दुःख की बात है कि उसके प्रारम्भिक शिष्यों एव सहयोगियों, जिनमे हेइजनबर्ग, आपन हेंमर, फर्मी, टेलर हैं, अपनी प्रतिभा को शस्त्र बनाने के दुरुपयोग मे प्रयुक्त न करने के चातुर्य को उसके समान नही सीखा। रॉबर्ट जंक ने अपनी पुस्तक "Brighter than a thousand sons" मे परमाणु एव हाइड्रोजन बम्ब के सम्पूर्ण इतिहास को चित्रित किया है। इस पुस्तक मे लेखक ने यह बताया है कि इन बम्बों का निर्माण वैज्ञानिकों द्वारा उचित नैतिक निर्णय लेने की असफलता का ही प्रभाव है जिसके कारण ही वे अपने राज्य को इस प्रकार के भयानक शस्त्रों के लिए मना नहीं कर सके। ये आलोचक इस बात को स्वीकार नही करते है कि दो नैतिक मूल्यों में परस्पर संघर्ष है जिनसे वैज्ञानिक हमारे इस ससार मे सम्बन्धित हैं। इस ससार में वैज्ञानिक सद्‌विचार अथवा अन्तः करण जो उसे अपने ज्ञान एव कौशल को विध्वंसात्मक कार्यों में लगाने के विरुद्ध है, तथा समाज एवं राज्य के प्रति राजभक्ति की भावना, जो यह कहती है कि उसे इस बात का कोई अधिकार नहीं है कि वह अपने देश

एवं समाज को एक शक्तिशाली शत्रु का सामना करने के लिए साधारण न्यून अस्त्रों के साथ ही खड़ा रहने दें, के बीच एक संघर्ष है। बहुत ही कम वैज्ञानिक ऐसे हैं जो इस दुविधापूर्ण संघर्ष से आत्मप्रेरित आक्षेप करने वाले (Conscientious objectors) बन कर बच पाते हैं। यह ही वास्तव में समाज के प्रति वैज्ञानिकों के सामाजिक उत्तरदायित्वों का आधार भूत तत्व अथवा स्वीकृत मत (Credo) है। इसके अन्तर्गत कुछ प्रमुख वैज्ञानिक आते हैं जैसे मैक्स बोर्न, कैथलीन, लोन्सडेली इत्यादि। ऐसा कहा जाता है, यद्यपि निश्चयपूर्वक नहीं कि सोवियत रूस में वैज्ञानिक पीटर के कैपिटसा ने परमाणु बम के विकास में अपने ज्ञान को प्रयुक्त करने के लिए मना कर दिया था। तो भी यह एक समझ बात नहीं है कि किसी भी देश में सभी वैज्ञानिक इस मार्ग को चुन लें तथा इस प्रकार अपने स्वयं के देश पर ही प्रभावी रूप से एक पक्षीय निशस्त्रीकरण लागू करलें।

डा० जन्क का कहना है कि द्वितीय विश्व युद्ध में दोनों ओर के वैज्ञानिकों के बीच परमाणु बम्ब के निर्माण न करने का समझौता नहीं होने का प्रमुख कारण संवादवाहन की कमी ही था अन्यथा दोनों पक्ष एकपक्षीय निशस्त्रीकरण की दुविधा से बचकर परमाणु बम्ब के निर्माण को रोक कर संसार में इसी विनाशकारीशस्त्र की सम्भावना को समाप्त कर सकते थे। डा० जन्क के अनुसार प्रमुख जर्मन भौतिक-शास्त्री जानबूझकर लगातार इस दिशा में कार्य करने से बचते रहे तथा काफी समय तक जर्मन राज्य को परमाणु बम्ब के विकास की सम्भावनाओं के बारे में दिशाभ्रम करते रहे। यदि ये जर्मन वैज्ञानिक अपने इस निर्णय के बारे में अंग्रेजी एवं अमेरिकन वैज्ञानिकों को किसी भी प्रकार सूचना देने में सफल हो जाते तो डा० जन्क का कहना है कि पाश्चमात्य वैज्ञानिक भी अपने जर्मन साथियों के उदाहरण का पालन कर सकते थे और अमेरिकन एटमबम्ब प्रोजेक्ट बिना किसी परमाणु का निर्माण किये ही असफल हो जाता।

अतः यह स्पष्ट है कि सम्पूर्ण संसार के वैज्ञानिकों को खुले मस्तिष्क के साथ एक दूसरे से अपने उत्तरदायित्वों के विषय में विचार विमर्श करते हुए मिलते रहना चाहिए। उन्हें मानव के प्रति अपने कर्तव्य का बोध होना चाहिए तथा उन्हें सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना के साथ कार्य करना चाहिए। यह वैज्ञानिक के खुले मस्तिष्क का ही परिणाम है जिससे 'Atom for Peace", जेनेवा सम्मेलन जैसे अन्य अनेक वैज्ञानिकों के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन लाभदायक एवं उपयोगी हो पाते हैं। इस प्रकार के सम्मेलन विज्ञान एवं तकनीकी के इस प्रकार के धरातल का निर्माण कर सकेंगे जो धीरे-धीरे निर्मित होने वाले एक सच्चे आदर्श समाज के लिए आधार का कार्य कर सकेंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निकट भविष्य

में ही एक सार्वजनिक राजनैतिक संस्था की आवश्यकता है । आज के इस वैज्ञानिक युग में इस प्रकार की संस्था की स्थापना की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता । इस सम्बन्ध में केवल इतना ही नहीं कहा जा सकता कि इस प्रकार की संस्था शांतिपूर्वक स्थापित हो सकेगी या हिंसा का प्रयोग होगा ।

इस दिशा में सर्वप्रथम कार्य जिसे वैज्ञानिक कर सकते हैं तथा जिसकी पूर्ति के लिए उन्हें अपने प्रयत्नों को समायोजित करना चाहिये वह है संसार के सब मनुष्यों तथा उनके नेताओं का शिक्षित करना, जिससे वे विश्वकार्यों के लिए विज्ञान के प्रयोग एवं आधारभूत तथ्यों को ठीक प्रकार समझ सकें । दूसरा उद्देश्य जिस ओर वैज्ञानिकों को अपना संयुक्त प्रयत्न लगाना चाहिए वह यह है कि हम केवल वैज्ञानिक तथ्यों के अधिक अधिक महत्व को ही न समझें अपितु मानव जाति के सुन्दर भविष्य का निर्माण करने के लिए अनेक समस्याओं के समाधान के लिए भी वैज्ञानिक रीति का भी उपयोग करें । इस नवीन आन्दोलन के ये दोनों प्रमुख उद्देश्य होने चाहिए जिनका प्रत्येक दूरदृष्टि एवं सद्भावना रखने वाला व्यक्ति, जो यह चाहेगा कि उसकी भावी सन्तानें एक सुन्दर, सुखद एवं आदर्श संसार में निवास करें, अवश्य ही समर्थन करेगा । आधारभूत रूप से यह एक नैतिक प्रश्न है । इसके लिए सभी राष्ट्रों एवं व्यक्तियों को सर्वप्रथम अपने हृदयों को शुद्ध कर ठीक स्थिति में लाना होगा । यदि शत्रुता, घृणा, अविश्वास एवं भय के स्थान पर स्वस्थ प्रतियोगिता, विश्वास एवं सहयोग की भावना विकसित की जा सके तो निश्चित ही राज्यों एवं राष्ट्रों की वर्तमान नीति में एक अभूतपूर्व एवं आधारभूत परिवर्तन होगा । यदि राजनीति को न्याय, प्रेम तथा लेन का देना की भावना से शासित किया जा सके तो विज्ञान का भी स्वार्थपूर्ण एवं विध्वंसात्मक कार्यों के लिए किया जाने वाला दुरुपयोग समाप्त किया जा सकता है । नैतिक दृष्टिकोण से युक्त मानव फिर वैज्ञानिकों को संहारक अस्त्रों के निर्माण के लिए विवश नहीं करेंगे । सम्पूर्ण मानव समाज को पूर्णरूपेण नैतिक पुनर्जन्म देने की अभिलाषा एक महान अभिलाषा ही होगी । अतः इन परिस्थितियों में इस बात में वैज्ञानिकों को ही सूत्रपात करना होगा । यहां वैज्ञानिक का दोहरा कार्य है : प्रथम, सत्य की खोज तथा द्वितीय, इस सत्य का युक्तिसंगत ढंग से प्रयोग ।

इस प्रकार वैज्ञानिक के उत्तरदायित्व बहुत महान व विस्तृत हैं । उन्हें राज्य एवं समाज की ओर से उत्पन्न किसी भी व्यवधान से होकर ज्ञान के गुप्त रहस्यों को खोजने के बारे जन्म सिद्ध अधिकार अपनी पूर्ण शक्ति एवं सामर्थ्य के साथ प्राप्त करना चाहिए । द्वितीय बिना किसी डर एवं हिचकिचाहट के अपनी खोजों एवं आदेशों का

अनैतिक एवं अन्यायपूर्ण विनाश के कार्यों के लिए प्रयोग करने के लिए साफ मना कर देना चाहिए। यद्यपि इस विचार को व्यावहारिक रूप प्रदान करना सरल नहीं है किन्तु एक सच्चा वैज्ञानिक इसे सुख के अभाव, दुःख, कष्ट एवं गरीबी के डर से नहीं त्याग सकता। इस प्रकार की परिस्थितियों में प्रत्येक वैज्ञानिक के लिए गैलीलियो न्यूटन आदि महान वैज्ञानिकों के उदाहरण प्रेरणा स्रोत का कार्य करेंगे। अभी हाल ही में प्रो० आइन्सटीन की दृढ़ स्वतन्त्रता, जिन्होंने नाजी तानाशाही की अभिलाषा को नष्ट कर दिया, इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि एक सच्चा वैज्ञानिक विध्वंसक कार्यों के लिए अपनी बुद्धि एवं ज्ञान नहीं बेच सकता।

आज मानवता ज्वालामुखी पर्वत के मुंह पर खड़ी है। आज संसार में अणु हथियारों की दौड़ जारी है। राष्ट्र अपनी आत्मविनाशक नीतियों को अज्ञानताओं को आसानी से नहीं समझ पायेंगे। इस स्थिति में सम्पूर्ण संसार के वैज्ञानिकों को कट्टर राष्ट्रवाद, जातिवाद या सम्प्रदायवाद से ऊपर उठकर खड़ा होना चाहिए तथा यह घोषणा कर देनी चाहिए कि किसी भी ऐसी नीतियों का अनुसरण नहीं करेंगे जिनमें विध्वंसात्मक कार्यों के लिए विज्ञान का दुरुपयोग किया जाता हो। संसार में गरीबी, अभावग्रस्तता, शारीरिक कष्ट, बीमारियों एवं जीवन अनिवार्यताओं के अभाव की काफ़ी प्रचुरता है। वैज्ञानिकों को अपने आपको खाद्यान्न बढ़ाने, वस्त्र प्रदान करने तथा बीमारियों व महामारियों के इलाज के कार्य में लगाना चाहिए तथा मानव जाति के कल्याण के कार्यों में ही अपनी सम्पूर्ण शक्ति, बुद्धि एवं सामर्थ्य का उपयोग करना चाहिए। हमें आज ऐसे वैज्ञानिकों की आवश्यकता है जो व्यर्थ पड़ी हुई भूमि को लहलहाते खेतों में परिणित कर सके, नदियों को पुल एवं बांधों से युक्त कर सके, सड़कों एवं मकानों का निर्माण कर सके तथा सुरक्षित एवं शीघ्रगामी थल, जल एवं नभ यात्रा प्रदान कर सके। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वैज्ञानिकों को इस ग्रह पर जीने योग्य जीवन के निर्माण का प्रयत्न करना चाहिए जिस पर मानव अब तक वास्तव से युद्ध, भय, रक्तपात, अकाल, रोग एवं अपरिपक्व मृत्यु से भयभीत एक जंगली जीवन ही बिताता रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ अपनी विभिन्न सहायक संस्थाओं के माध्यम से इन लक्ष्यों की प्राप्ति का प्रयत्न कर रहा है किन्तु अभी तक इस क्षेत्र में बहुत कुछ किया जाना शेष है। देखना है कि आधुनिक वैज्ञानिक इन सारी परिस्थिति का आकलन कर, इतिहास से शिक्षा ले तथा भविष्य का विचार कर कितना शीघ्र समय की पुकार को सुनकर अपने उत्तरदायित्व एवं कर्तव्यों के पालन के लिए तत्पर होते हैं।

(i) Questions on "Constructive and destructive applications of Science".

1. Write an Essay on the 'Constructive and destructive applications of Science" Or

   Write an essay on "Science as a Boon and Curse to humanity."

   "विज्ञान के रचनात्मक एवं विध्वंसात्मक उपयोग" पर एक निबन्ध लिखिए। अथवा

   मानवता के लिए विज्ञान एक "वरदान और शाप" पर निबन्ध लिखिए।

2. Explain how Science has fulfilled the primary needs of man.
   विज्ञान ने मनुष्य की प्रारम्भिक आवश्यकताओं की पूर्ति किस प्रकार की है ?

3. Write Short notes on the following :—
   1. Science and Conquest of distance.
   2. Science and Conquest of Labour.
   3. Science is like a double-edged sword which can be used to protect ourselves and which can also cut our throat.

   निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिये :-

   १. विज्ञान एवं दूरी पर विजय
   २. विज्ञान एवं श्रम पर विजय
   ३. विज्ञान एक दुधारू तलवार के समान है जिससे हम अपनी रक्षा भी कर सकते हैं और अपना गला भी काट सकते हैं।

(ii) Questions on "Energy and its Applications".

1. Topics for Essays (निबन्ध के विषय) :—
   (a) Nature of Matter (पदार्थों की प्रकृति)
   (b) Different forms of Energy and their Transformation. शक्ति के भिन्न २ रूप और उनका रूपान्तर।
   (c) Sources of Energy. (शक्ति के स्रोत)
   (d) Atomic Energy. (परमाणु-शक्ति)
   (e) Conservation of Energy. (शक्ति-अविनाशता)

(f) Modern concept about matter and energy.
द्रव्य तथा शक्ति के बारे में आधुनिक विचार।

2. Write Short notes on :—
निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये :—
   (i) Radio activity (रेडियो-धर्मिता)
   (ii) Electrolysis (विद्युत-विच्छेदन)
   (iii) Electrostatic Force (स्थिर-विद्युतशक्ति)
   (iv) Natural Decay or Disintegration of Elements.
   तत्वों का प्राकृतिक क्षय अथवा विघटन।
   (v) The principle of Dynamo and Motor.
   डायनमो तथा विद्युत मोटर के निर्माण का सिद्धान्त।
   (vi) Isotopes (समस्थानिक तत्व)

3. Fill in the blanks from words given in brackets with each statement :—
जो शब्द कोष्ठों में दिये हैं उनमे से एक शब्द चुनकर निम्नलिखित वाक्यों की पूर्ति कीजिए :—
   (i) Matter in......state has definite shape and volume.
   (Solid, Liquid, Gas)
   द्रव्य का ...... दशा मे एक निश्चित रूप तथा आयतन होता है।
   (ठोस, द्रव, वाष्पीय)
   (ii) All the energy with which the living organisms carry on the work of their bodies is ultimately derived from .... (Oxidation, Carbon-assimilation, Sun)
   जीवित जीव अपने शरीर के सारे कार्य्य जिस शक्ति के द्वारा करते हैं वह प्राथमिक रूप से...... से प्राप्त होती है।
   (ऑक्सीकरण, प्रकाश-संश्लेषण, सूर्य्य)
   (iii) Substances may be changed from one physical state to another by supplying or taking away that form of energy known as...... (Heat, Electricity, Light)
   एक भौतिक अवस्था से दूसरी में पदार्थों का परिवर्तन उस शक्ति के लगाने अथवा निकालने से हो जाता है जिसको ...... कहते हैं। (ताप, विद्युत, प्रकाश)
   (iv) Electricity can be converted into energy of movement (mechanical energy) with the help of......
   (Generator, Motor, Heater)

विद्युत-शक्ति गति-शक्ति में अथवा यांत्रिक-शक्ति में ···· की सहायता से परिवर्तित हो सकती है।

(विद्युत-उत्पादक, विद्युत-मोटर, ताप-उत्पादक)

(v) The capacity to do work is called......

(Gravitation, Energy, Life)

कार्य्य करने की क्षमता को ······ कहते हैं।

(गुरुत्वाकर्षण, शक्ति, जीवन)

4. Answer only in 'Yes' or 'No' :—
केवल 'हाँ' या 'ना' में उत्तर दीजिए :—

(i) Fuel foods such as Sugar and Oil are oxidized in the body for release of energy.
शक्कर तथा तेल जैसे ईंधन वाले खाद्य पदार्थों का शरीर में आक्सीकरण शक्ति निर्माण के लिए होता है।

(ii) Atomic energy is the source of light in the Sun.
सूर्य के अन्दर परमाणु शक्ति प्रकाश का स्रोत है।

(iii) Chemical energy can be converted into energy of movement.
रासायनिक शक्ति गति शक्ति में परिवर्तित हो सकती है।

(iv) The light from a star tells us about the kind of matter in it.
नक्षत्र से जो प्रकाश आता है वह हमें यह बतलाता है कि उस नक्षत्र में किस प्रकार का द्रव्य है।

(iii) Questions on "Fight against Diseases".

1. Topics for Essays (निबन्ध के विषय) —

(a) Fight against diseases.
रोगों के विरुद्ध संघर्ष।

(b) Body defences against disease germs.
रोग कीटाणुओं के विरुद्ध शरीर की प्राकृतिक रक्षा।

(c) The spread of infectious diseases.
संक्रामक रोग किस प्रकार फैलते हैं।

(d) Prevention, Control and Cure of diseases.
रोगों की रोकथाम, इन पर नियन्त्रण तथा उपचार।

(c) How the disease germs get into our bodies?
रोग कीटाणु हमारे शरीर में किस प्रकार प्रवेश हो जाते हैं ?

(d) Diseases and Superstition.
रोग और उनके प्रति मूढ़ विश्वास ।

2. Write short notes on :—
निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए :—
   (i) Immunity (रोग क्षमता)
   (ii) Germ-theory of diseases.
   रोगों का कीटाणुओं द्वारा फैलने का सिद्धान्त ।
   (iii) Antibodies.
   जीवाणुओं के विषैले आक्रमण के विरुद्ध विरोधी पदार्थों का निर्माण ।
   (iv) Vaccination (टीके)
   (v) Restraint of Infection. (संक्रामक रोगों पर नियंत्रण)
   (vi) Disinfection (कीटाणुनाशक वस्तुएं)
   (vii) Antibiotics (रोगाणुनाशक औषधियां)
   (viii) Symptoms of Infectious Diseases.
   संक्रामक रोगों के लक्षण ।
   (ix) Deficiency diseases.
   अपर्याप्त पोषक भोजन के अभाव के कारण रोग ।

3. Complete the following statements by choosing one word out of those given in brackets :—
निम्नलिखित वाक्यों की कोष्ठकों में दिए गए शब्दों में से एक शब्द चुनकर पूर्ति कीजिए :—
   (i) Vitamins are required more for......
   (Body building, Energy supply, Health)
   विटामिन्स की ···· के लिए आवश्यकता है ।
   (शरीर निर्माण, शक्ति निर्माण, स्वास्थ्य)
   (ii) The cells most sensitive to the lack of oxygen are cells of the...... (Lungs, Brain, Heart)
   प्राणवायु के अभाव से सर्वाधिक प्रभावित होने वाले कोष ·······के कोष हैं । (फेफड़ों, मस्तिष्क, हृदय)
   (iii) Certain waste products are derived from the Chemical activities of the body. The elemination of these is

known as...... (absorption, secretion, excretion)
शरीर में रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप कुछ मल पदार्थ बनते रहते हैं। इनको शरीर से बाहर निकालने की क्रिया को .... कहते हैं। (शोषण, रसनिर्माण, मलोत्सर्जन)

(iv) The Germ theory of diseases was propounded by ...... (Darwin, Koch, Pasteur)
'रोग कीटाणुओं द्वारा फैलते हैं' यह सिद्धान्त ने प्रतिपादन किया था। (डार्विन, कौच, पास्चर)

4. Answer in 'Yes' or 'No' :—
केवल 'हां' या 'ना' में उत्तर दीजिए :—

(i) Circulation of blood slows down as we grow older.
जैसे जैसे हम वृद्धावस्था को प्राप्त होते जाते हैं रक्त भ्रमण की गति मन्द होती जाती है।

(ii) No water is lost by perspiring in the winter season.
शीतकाल में स्वेद निकलने से पानी की हानि नहीं होती।

(iii) Hippocratic School reminds us of Greek Medicine.
हिप्पोक्रेटिस सम्प्रदाय हमें यूनानी औषधविज्ञान की याद दिलाता है।

(iv) It is the male mosquito that bites, the female never does.
हमें नर मच्छर ही काटता है, मादा कभी नहीं काटता।

(v) Proteins are essential more in young growing age rather than in old age.
प्रोटीन की आवश्यकता वृद्धावस्था के अपेक्षाकृत युवावस्था में अधिक होती है।

(vi) The habit of eating polished rice is not good for good health.
अच्छे स्वास्थ्य के लिए छिले हुए चावल खाना ठीक नहीं है।

(vii) Insomnia can be helped by daily vigorous exercise.
नींद न आने का रोग प्रति दिन उत्साहित व्यायाम से ठीक हो सकता है।

(viii) Old age diseases such as Heart trouble, Kidney diseases, High blood-pressure are found at an earlier age than in years past.
हृदय का रोग, वृक्क का रोग, रक्त का उच्च दबाव आदि वृद्धावस्था के रोग गत वर्षों के अपेक्षा पूर्वकाल में अधिक पाए जाते हैं।

(ix) Smooth and quick circulation of blood throughout the body is essential to prevent infection.
संक्रामक रोगों की रोकथाम के लिए यह आवश्यक है कि समस्त शरीर में रक्तभ्रमण सरलता से और शीघ्रता से होता रहे।

(x) Lack of calcium in food is the cause of Rickets.
सूखे का रोग भोजन में चूने की कमी के कारण हो जाता है।

(iv) Questions on "Science & Culture"

1. Write an essay on Science and culture
   विज्ञान और संस्कृति पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।
2. Describe how and upto what extent Science has helped in removing the Superstitious in India.
   विज्ञान ने भारत में कैसे और किस सीमा तक अन्धविश्वासों का उन्मूलन किया है?
3. Write Short notes on :—
   (i) Science and religion
   (ii) Science and human Values.
   (iii) Crisis of Science & Culture.
   (iv) Inter-relationship between civilization and Culture.
   (v) Evolution of Culture.
   संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये —
   (क) विज्ञान एवं धर्म।
   (ख) विज्ञान एवं मानव मान्यतायें।
   (ग) विज्ञान और संस्कृति का संकट।
   (घ) 'सभ्यता' व 'संस्कृति' का पारस्परिक सम्बन्ध।
   (ङ) संस्कृति का क्रमिक विकास।
4. Answer in 'yes' or 'no' :—
   केवल 'हां' अथवा 'ना' में उत्तर दीजिए:—
   1. Civilization and culture are idental.
      सभ्यता तथा संस्कृति पर्यायवाची हैं।

2. Civilization and culture evolved together.
   सभ्यता तथा संस्कृति का समारम्भ विकास हुआ ।

3. A Nations greatness is best marrored in its thou, philosophy, language and literature.
   एक राष्ट्र की महानता उसके विचार, दर्शन, भाषा तथा साहित्‍ ही भली प्रकार प्रतिबिम्बित होती है ।

4. Which came first- Civilization or Culture ?
   'सभ्यता' व 'संस्कृति' में पहिले किसका प्रादुर्भाव हुआ ।

(५) Questions on 'Social responsibilities of Scientis

1. Topics of Essays (निबन्ध के विषय) —
   (a) Social responsibilities of Science.
   विज्ञान का सामाजिक उत्तरदायित्व ।

   (b) Scientists are confronted with a conflict betwe the voice of scientific conscience and the counsel loyalty to their state and Society.

   वैज्ञानिक सदविचार अथवा अन्तःकरण तथा राज्य के प्रति रा भक्ति की भावना के बीच संघर्ष की समस्या से वैज्ञानिक व्यग्र हैं

   (c) Science has become a hand-maiden of politics and th most talented Scientists mere slaves of the Govern ment. Comment.
   "विज्ञान राजनीति की दासी बन गया है और अत्यन्त प्रभावशाली वैज्ञानिक राज्य के केवल मात्र दास के रूप में रह गए हैं" इस तथ्य की समीक्षा कीजिए ।

   (d) The relation between Society and Scientists.
   समाज और वैज्ञानिकों के बीच परस्पर सम्बन्ध ।

2. Write short notes on :-

   निम्नलिखित पर टिप्पणियां लिखिए :—

   (i) "The Scientists should become 'Conscientious objectors' is the credo of the society for social responsibilities of scientists.

"वैज्ञानिकों को कर्त्तव्यनिष्ठ आक्षेप करने वाले बन जाना चाहिए" यही वैज्ञानिकों के सामाजिक उत्तरदायित्व का आधारभूत स्वीकृत मत है।

(ii) To bring about a complete moral regeneration of mankind the work of Scientists is two-fold.
मानव समाज को पूर्णरूपेण नैतिक पुनर्जन्म देने हेतु वैज्ञानिकों का दोहरा कर्त्तव्य है।

(iii) Science is a good servant but a bad mistress.
विज्ञान एक अच्छा दास है परन्तु एक बुरी ग्रहणी है।

(iv) According to Dr. Jungk it was lack of Communication that prevented an agreement between the Scientists on both sides of the second world war not to make an atom bomb.
डॉ॰ जन्क के अनुसार द्वितीय महायुद्ध में दोनों ओर के वैज्ञानिकों के बीच परमाणु बम का निर्माण न करने का समझौता नहीं होने का प्रमुख कारण संवादवाहन की कमी था।

(v) Former pupils of Max Borne had not the wisdom of not lending their genius to the evil purpose of weaponeering.
मैक्स बोर्न के पहिले शिष्यों ने अपनी प्रतिभा को शस्त्र बनाने के दुरुपयोगों में प्रयुक्त न करने देने के चातुर्य को नहीं सीखा।

(vi) The history of the atom and hydrogen bomb development was considered as one of the failures of scientists to make correct moral decision.
परमाणु तथा हाइड्रोजन बम के विकास का इतिहास वैज्ञानिकों को यथेष्ट आध्यात्मिक निर्णय ले सकने में असफलता का कारण समझा जाता था।

3. Fill in a suitable and correct word in the following :—
निम्नलिखित रिक्त स्थानों में ठीक शुद्ध शब्द लिखिए :—

(i) "Brighter than a thousand Suns" was written by…. …………(Tailor, Fermi, Robert, Junk.)
"Brighter than a thousand Suns" कृति….. …..ने लिखी। (टेलर, फर्मी, रॉबर्ट, जन्क)।

(ii) Peter Kapista in Soviet Union has................to put his capacities in the service of atom-bomb deve lopment (Accepted, postponed, refused).
सोवियत रूस में पीटर कैपित्सा ने परमाणु बम के विकास में अपने ज्ञान को प्रयुक्त करने के लिए ... . (मान लिया, टाल दिया, मना कर दिया) ।

(iii) With a moral outlook men would neither compel nor tempt scientists to invent the products for.........-(Human welfare, constructure purposes, destruction).
नैतिक चरित्र के दृष्टिकोण वाले मनुष्य वैज्ञानिकों को .... की खोज करने के लिए न बाध्य करेंगे न प्रलोभन ही देंगे ।

(iv) The apprehension of Soviet Union producing a...............caused American Scientists to develop hydrogen bomb. (Inter-Continental Missiles, Satellites, Thermo-nuclear bombs).
सोवियत रूस के................निर्माण करने की आशंका ने अमरीका के वैज्ञानिकों को हाइड्रोजन बम के निर्माण करने के लिए विवश किया । (अन्तरदेशीय भेदनयंत्र, उपग्रह, उष्णता-विषयक नाभिकीय बम) ।

—: ● :—

द्वितीय भाग

सामाजिक विज्ञान

(SOCIAL SCIENCES)

प्राचीन भारत में सांस्कृतिक समन्वय

(Cultural Synthesis in Ancient India)

भारत के सांस्कृतिक निर्माण में विभिन्न जातियों का योग:—

प्रस्तावना:—संस्कृति निर्माण में अनेक जातियों का योग रहता है तथा उसके निर्माण में कई युग लगते हैं और लगते रहेंगे। इस सम्बन्ध में श्री भगवतशरण उपाध्याय के विचार उल्लेखनीय हैं। उनका कथन है कि 'आज की भारतीय संस्कृति जातियों और युगों की सामूहिक देन है। जिसे हम आज भारतीय संस्कृति कहते हैं वास्तव में वह विविध जातियों के योग से निर्मित और विकसित हुई है। भारत विविध जनाचारों का संग्रहालय बन गया है और उसकी संस्कृति में अनेक संस्कृतियों तथा अनेक जातियों की सामाजिक विशेषताओं का सम्मिश्रण है। आज ये सारी परस्पर विरोधी विशेषताएँ भारतीय संस्कृति के रसायन कलश में घुल मिलकर एक और उसकी अपनी हो गई हैं। वास्तव में देश-विशेष की सांस्कृतिक पवित्रता उसी प्रकार असत्य और निरर्थक है जिस प्रकार जाति-विशेष की रक्त शुद्धता। स्थान विशेष की संस्कृति निस्सन्देह एक सामूहिक योग है जिसके निर्माता बहुसंख्यक और परस्पर विरोधी हैं। सदियों के आयात-निर्यात और जातियों के सम्मिश्रण से संस्कृति को रूप मिलता है। भारत इस प्रकार के जातीय सम्मेलन तथा सम्मिश्रण का अपूर्व क्षेत्र रहा है। यहाँ शक्तियों का संघर्ष हुआ है और शक्तियाँ अन्ततः घुल-मिलकर एक हो गई हैं। भारतीय सीमाओं पर विदेशी जातियों की जब जब कुमक दिखाई पड़ी, तात्कालिक भारतीयों में रोष पूर्ण प्रतिक्रिया हुई, फिर द्वन्द्व छिड़ गया और अन्त में एक जातीय सामञ्जस्य का जन्म हुआ। संघर्ष करने वाले दोनों पक्षों की विशेषताएँ मिल गईं। एक नई संस्कृति का रूप निखरा। विकास की प्राणभूत दो विरोधी शक्तियों की यह समन्वयात्मक एकता थी जिसने इस सांस्कृतिक द्वन्द्वात्मकता को चरितार्थ किया। जातियाँ आईं, उनका परस्पर संघर्ष हुआ और उनके रक्त-मिश्रण से एक तीसरी जाति का प्रादुर्भाव हुआ। एक ने दूसरे पर जाने-अन-जाने अपनी गहरी सांस्कृतिक छाप डाली, तथा दूसरों ने उसे जाने-अनजाने स्वीकार किया। इस आदान-प्रदान के फलस्वरूप भारत की इस अपनी संस्कृति का कलेवर बना। आगमन, संघर्ष, निर्माण, हमारी संस्कृति की तीन आधारभूत परिस्थितियाँ हैं। इस एकीभूत विरोधात्मकता का अध्ययन अत्यन्त रुचिकर है।'

भूगर्भवेत्ताओं का कथन है कि भारत में निश्चित रूप से यह बतलाना कि प्रथम मनुष्य कब में निवास करने लगा कठिन है। उनका कहना है कि भारत पहले

एक ओर से दक्षिणी अफ्रीका तथा दूसरी ओर से आस्ट्रेलिया की भूमि से मि
हुआ था। यह भूमि सहस्रों वर्षों तक एक होकर रही। तदुपरान्त अफ्रीका व
भारत तथा आस्ट्रेलिया और भारत के बीच की भूमि समुद्र के अन्तर्गत हो गई
अब भी हड्डियों के अवशेष तथा पेड़-पौधों की किस्में जो दक्षिणी अफ्रीका में प
जाती हैं, इस विचार की पुष्टि करते हैं।

यह बतलाना कठिन है कि भारत का प्रथम मनुष्य आस्ट्रेलिया से आ
अथवा अफ्रीका से, किन्तु इतना निश्चित है कि भारत में मनुष्य के निवास करने
सर्व प्रथम अवशेष दक्षिण में ही उपलब्ध हैं। प्राचीन पाषाण काल के भद्दे औजा
भी दक्षिण में ही पाये जाते हैं। उत्तरी भारत में भी मनुष्य धीरे-धीरे निवा
करने लगा और सहस्रों वर्षों के व्यतीत होने पर द्रविड़, आर्य, पारसी, यूनानी, श
कुषाण, हूण, मुसलमान तथा योरप निवासी भारत में एक के बाद दूसरे आकर रह
लगे। आज का भारत निवासी इन विभिन्न जातियों के रक्त के मिश्रण से बन
है। किस में किन किन जातियों का किस अनुपात से रक्त मिला है, यह तक बत
लाना असम्भव सा हो गया है। इन विविध जातियों ने ही यहाँ की संस्कृति के निर्मा
में काफी मात्रा में योग दिया है। इस कारण इन जातियों के बारे में तथा उनक
सांस्कृतिक देन के बारे में कुछ जानकारी आवश्यक है। यदि भारत के निवासिय
की जाँच उनकी शारीरिक बनावट तथा भाषा के अनुसार की जाये तो विभिन्
श्रेणियाँ स्पष्ट देखने में आयेंगी।

प्रारम्भिक अथवा जंगली जातियाँ:—इस श्रेणी में कोल, भील गोंड तथ
सन्थाल इत्यादि जातियाँ पाई जाती हैं। शारीरिक बनावट में इन लोगों का छोटा
कद, दबी नाक, मोटे बाल और काला रंग होता है। आधुनिक भारत में कोल और
सन्थाल जातियाँ उड़ीसा तथा छोटा नागपुर में, भील राजस्थान में, विन्ध्य प्रदेश तथा
मध्य भारत में और गोंड़ मध्य प्रदेश के कुछ भागों में पाये जाते हैं। इनकी अपनी
विचित्र भाषा है जिसके अवशेष भारत में उत्तर में पंजाब से लेकर दक्षिण में मद्रास तक
पाये जाते हैं। इनकी भाषा अधिकतर पॉलीनेशिया, मेलेनेशिया और मेडेगास्कर
की भाषा से सम्बन्धित हैं। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि किसी समय
इस समस्त भूमितल में एक सी जाति के मनुष्य निवास करते थे और काफी समय बाद
इस जाति की शाखाएँ विभिन्न स्थानों पर फैल गईं। इस बारे में विद्वान अभी
तक एक मत नहीं हैं कि भारत के मूल-निवासी ये लोग ही थे अथवा अन्य जातियों
की भाँति ये लोग भी कभी बाहर से आये थे। ये अब भी असभ्य हैं। इतना
निश्चित है कि किसी समय ये विस्तृत भूमितल पर बसे हुए थे और धीरे धीरे किसी
अन्य शक्तिशाली जाति ने, शायद द्रविड़ों ने इन्हें पीछे हटाया और ये लोग घाटियों

में और जंगलों में सुरक्षित प्रकार से रहने लगे। डा० राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार भारत में उत्तर पाषाण-काल की संस्कृति तथा मिट्टी के बर्तन बनाने की कला इन जातियों की ही देन है। इन जातियों की भारत को सबसे बड़ी देन इनकी भाषा है जो चिरकाल से चली आ रही है।

अन्य आधुनिक जातियाँ—भारत में जो अन्य जातियाँ आईं उनमें प्रमुख मंगोल, द्रविड़, आर्य, ईरानी, यूनानी, शक और कुषाण, हूण, मुसलमान तथा यूरोपियन हैं।

मंगोल—भारत में कुछ ऐसी जाति के लोग हैं जो आकार में उसी जाति के मालूम पड़ते हैं जिसके तिब्बत, चीन, जापान, स्याम अथवा बर्मा के रहने वाले हैं। इनके शारीरिक आकार मंगोलों जैसे हैं। इनके दाढ़ी नहीं होती, रंग कुछ पीलापन लिए हुए है, कद छोटा, नाक चपटी, मुँह चौड़े और चेहरे की उठी हड्डियाँ होती हैं। ऐसे लोगों के मूल निवास-स्थान तिब्बत तथा मंगोलिया माने गये हैं। वे भारत में उत्तर पूर्व के दर्रों से आये और आर्यों ने उन्हें निकाला या अपने में मिला लिया। आधुनिक भारत में ये लोग हिमालय की तराई, सिक्किम, अल्मोड़ा, गढ़-वाल, भूटान तथा आसाम की पहाड़ियों में पाये जाते हैं। गोरखे, भूतिया तथा लेप्चा इन्हीं मंगोल जाति के लोगों के वंशज हैं। मोहन-जो-दड़ो में पाये गये सिर की हड्डियों के अवशेष तथा मिट्टी के बर्तनों पर बने चित्र मंगोल जाति के चिन्ह लिए हुए हैं। इस कारण इन लोगों की संस्कृति काफी उन्नत प्रतीत होती है।

द्रविड़—आर्यों से पूर्व आने वाली जातियों में द्रविड़ों का विशेष स्थान है। द्रविड़ मूल निवासी कहाँ के थे, यह गहन तर्क का विषय रहा है। कुछ इतिहासवेत्ता उन्हें पाषाण-कालीन मनुष्य की ही सन्तति मानते हैं और कुछ उन्हें कोल, भील, सन्थाल इत्यादि जातियों से अधिक साम्य बताकर इस विचार का विरोध करते हैं। अन्य लोग इन्हें नीग्रो जाति के वंशज मानते हैं। कुछ ने उन्हें सिंधु-घाटी के मनुष्यों से सम्बन्धित किया है। अधिकतर इतिहासकारों को यही मान्य है कि ये लोग भी उत्तर-पश्चिम के पहाड़ी मार्गों से भारत में आये।

द्रविड़ों की सभ्यता अन्य जातियों से अधिक उन्नत थी। इन्होंने कोल इत्यादि जाति के लोगों को भारत के उत्तरी उपजाऊ भागों से मार भगाया, जिससे वे जातियाँ कन्दराओं तथा जंगलों में निवास करने लगीं। सहस्रों वर्षों के उपरान्त आर्यों ने इन्हें उत्तर से निकाला और तब से ये लोग धीरे धीरे दक्षिण की ओर जाकर वहीं बस गये। बंगाल तथा उत्तर प्रदेश के निवासियों की अब भी द्रविड़ों के समान शारीरिक बनावट है।

द्रविड़ अधिक सास्कृतिक उन्नति कर चुके थे। ये लोग बड़े सीधे और शान्ति प्रिय थे। इनका उद्योग कृषि था। ये अस्त्र-शस्त्र, सोने के आभूषण तथा चीनी बर्तन बनाने की कला से परिचित थे। इन्होंने बड़े बड़े सुन्दर नगरों का निर्माण किया था और ये प्राचीन मिश्र, फारस, मेसोपोटेमिया, बेबीलोन, एशिया माइनर तथा पैलेस्टाइन से व्यापार करते थे। अधिकतर हाथी दांत का व सोने का सामान चावल, सागवान की लकड़ी, मोर, बन्दर इत्यादि उस समय यहाँ से विदेशों को भेजे जाते थे। उनकी भाषा जो सस्कृत भाषा से भिन्न थी, उन्नत दशा मे थी। आधुनिक दक्षिण की भाषाऐं तेलगू, तामिल, कन्नड़, मलयालम आदि उनकी भाषा के ही अश हैं।

इनके समाज मे 'मातृक' प्रथा प्रचलित थी अर्थात् बच्चे अपने माता के वंश के उत्तराधिकारी समझे जाते थे, पिता के वश के नहीं। समाज झुंडों में बँटा हुआ था और प्रत्येक झुड अपने को प्रकृति की किसी एक वस्तु से सम्बन्धित समझता था, अधिकतर पशुओ से। वे अधिकतर प्राकृतिक वस्तुओं की तथा मातृ-शक्ति की उपासना करते थे। आर्यों के आगमन के उपरान्त इनका उनसे निरन्तर संघर्ष होता रहा और दक्षिण मे हटकर ये लोग अपनी मौलिक संस्कृति को बहुत समय तक अपनाये रहे। यद्यपि आर्य-सस्कृति मे ये पूर्णतया प्रभावित हुए फिर भी कुछ मौलिक सांस्कृतिक बातों का ये लोग अन्त तक अनुकरण करते रहे और इस कारण कई बातों में इनकी सस्कृति आर्यों से भिन्न रही। द्रविड़ों में वर्णाश्रम तथा जाति-भेद नहीं था। ये अपने रक्त-सम्बन्धियों में विवाह आदि कर सकते थे। इनमें उत्तराधिकारत्व माता की ओर से था तथा इनका रहन-सहन, रीति-रिवाज, धर्म तथा भाषा आर्यों से भिन्न थे।

आर्य.—आर्यों का गेहुँआ रग, ऊँचा कद, उभरा माथा तथा लम्बे बाल थे। इन लोगों के भारत आने के समय के विषय में भी इतिहासकार एक मत नहीं हैं। इतना अवश्य है कि ये लोग उत्तर-पश्चिम के दर्रों से आये और द्रविड़ों से सघर्ष कर पंजाब में बस गये। द्रविड़ों को उत्तर से दक्षिण की ओर हटना पड़ा और आर्य उत्तरी भारत में बस गये। उन्होंने उस भाग का नाम 'आर्यावर्त' रखा। धीरे धीरे ये समस्त भारत मे फैल गये। दक्षिण में भी आक्रमण कर इन्होंने द्रविड़ों को पराजित किया और उनमे अपनी संस्कृति का प्रसार किया। प्रारम्भ में आर्य द्रविड़ों को घृणा दृष्टि से देखते थे और उन्हें 'दस्यु', 'दास' इत्यादि नामों से सम्बोधित करते थे। फिर ये दोनों परस्पर घुल-मिल गये। आज का भारतीय समाज इन दोनों की ही सन्तान है। आर्यों की शारीरिक बनावट इन जातियों के सम्मिश्रण से जाती रही है। आज

(९)

प्रागैतिहासिक संस्कृति:—प्रागैतिहासिक भारत का प्राकृति व मानवी दोनों दृष्टिकोणों से अध्ययन करना आवश्यक है। भारत का भूभाग अनेक युगों में निर्मित हुआ है। मानव का इतिहास भूस्तर के इतिहास के बहुत समय बाद से प्रारम्भ होता है। प्रस्तर युग के समाजोत्थान के पूर्व भारत में भी अन्य देशों की भांति ही ऐतिहासिक समाज का क्रमिक विकास हुआ है। पहले घोर बर्बर, फिर बर्बर युग, उसके उपरान्त पूर्व तथा उत्तर पाषाण काल, तदनन्तर द्रविड़ और सिन्ध-संस्कृति युग। इस सिन्धुघाटी की सभ्यता के युग तक समाज को किस किस मार्ग अथवा किन किन परिस्थितियों में होकर चलना पड़ा, यह स्पष्ट नहीं है। प्राचीनतम निवासियों के जीवन के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना असम्भव है। उनके हमें ऐसे कोई चिन्ह उपलब्ध नहीं है जो उनके जीवन, रहन-सहन इत्यादि का अध्ययन करने में सहायक हों। इसी कारण भारत का इतिहास कुछ सहस्र वर्षों का ही इतिहास हो सका है, अधिक नहीं।

सबसे प्राचीन मनुष्य के बारे मे इतिहास हमे कोई ज्ञान नहीं दे सकता। इतिहास उन्ही मनुष्यों को सबसे प्राचीन बतला सका है जिनके कुछ भद्दे पत्थर के औजार मिल सके हैं। इस प्रकार इन औजारो व अस्त्रों की उपलब्धि के आधार पर उस युग को विभाजित किया गया है.—प्राचीन पाषाण युग (Palaeolithic-age), नवीन युग (Neolithic age), तथा धातु युग (Metal age).

प्राचीन पाषाण युग:—भूगर्भवेत्ताओं ने अपने अन्वेषणों द्वारा भारत के दक्षिणी प्रायद्वीप को ही सबसे प्राचीन माना है। इस कारण प्राचीनतम निवासियों का वृतान्त वहां के भग्नावशेषोंसे ही प्राप्त हो सकता है। इन लोगों के कोई विशेष चिन्ह हमें नही मिले हैं। इन औजारों के आधार पर ही हम उनके जीवन व रहन-सहन के बारे मे कुछ जान सकते हैं। इन पत्थर के औजारों को लकड़ी या हड्डी के बेंटों में लगाकर काम में लाया जाता था। उन्हें घिस कर ठीक प्रकार से उन पर धार भी नहीं दी गई मालूम पड़ती है। वे तो केवल तोड़े हुये पत्थर के टुकड़े मात्र हैं। ये औजार ही जंगली जन्तुओं के शिकार खेलने तथा लकड़ी इत्यादि काटने के काम में लाये जाते थे। अधिकतर ऐसे औजार दक्षिणी प्रायद्वीप में पाये जाते हैं। यह तो स्पष्ट है कि उन लोगों को धातु के प्रयोग का ज्ञान नहीं था और उनमें से अधिकांश लोगों के नियत घर नहीं थे, यद्यपि उनमें से कुछ ने किसी प्रकार के वृक्षों व पत्तों की झोपड़ियां शायद बनाई हों। उन्हें सदा जंगली जन्तुओं (उदाहरणार्थ हाथी, शेर-चीता तथा भेड़िये इत्यादि) का भय लगता रहा। वे जानवरो का कच्चा मांस तथा जंगलों से फल-फूल आदि खाकर ही निर्वाह करते रहे। उन्हें कृषि

आदि का ज्ञान नहीं था। वे आग जलाना तथा मिट्टी के बर्तन बनाना नहीं जानते थे।

इस प्रकार इस काल के लोग सांस्कृतिक वातावरण से बिलकुल परे थे। उन्हें बर्बर कहना उचित होगा—ऐसे बर्बर जो पशुओं से कुछ ही उन्नत थे। इनके वंशज आज भी अण्डमन टापू में पाये जाते हैं। इनका कद छोटा, रंग काला और नाक चपटी होती थी। ये नीग्रो जाति के लोगों में से थे। आधुनिक सांस्कृतिक ज्ञान में हमें पहला पग इसी जाति के लोगों का उठाया हुआ मिलता है।

नवीन पाषाण युगः—निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर होना मनुष्य का स्वाभाविक गुण है और इसी गुण के कारण वह पशुओं से भिन्न है। फलतः समय व्यतीत होने के साथ साथ ही मनुष्य के ज्ञान का विकास हुआ और उसने प्राकृतिक साधनों पर दिन प्रतिदिन अधिकार करना प्रारम्भ किया। यह अनुमान लगाना कठिन है कि इस अधिकार प्राप्ति में मनुष्य को कितने सहस्र वर्षों तक संघर्ष करना पड़ा। प्राचीन पाषाण काल से नवीन पाषाण काल तक पहुँचने में ही उसे काफी समय लगा होगा। नवीन पाषाणकाल में भी उसे पत्थर के औजारों पर ही आश्रित रहना पड़ा उसे सोने के अतिरिक्त और किसी धातु के प्रयोग का ज्ञान नहीं था। इस समय इतनी उन्नति अवश्य हो चुकी थी कि औजार पहले जैसे भोंडे अथवा भद्दे नहीं थे, अपितु ठीक तरह कटे हुए, घिस कर तेज धार वाले तथा भली प्रकार पॉलिश किये गये थे। इन औजारों में और प्राचीन पाषाण युग के औजारों में विभिन्नता स्पष्ट रूप में दिखलाई देती है। इस प्रकार के औजारों के भग्नावशेष भारत के हर भाग में पाये जाते हैं किन्तु मद्रास प्रान्त के बेलरी जिले में इन औजारों का एक प्रकार का कारखाना ही मिला है, जहाँ इनके बनाये जाने की विविध कदम वहाँ प्राप्त औज़ारों से समझी जा सकती है।

नवीन पाषाण काल में हम विभिन्न दिशाओं में उन्नति की ओर अग्रसर हुए मनुष्य का रूप देखते हैं। इस समय भूमि जोती जाने लगी तथा फल और अनाज उत्पन्न किये जाने लगे। बाँस तथा लकड़ी के टुकड़ों की रगड़ से अग्नि पैदा करना भी इस समय के मनुष्य को आ गया था। पहले हाथों से और फिर चाक की सहायता से मिट्टी के बर्तन बनाये जाने लगे। ये लोग गुफाओं में रहते थे और आखेट अथवा नृत्य के दृश्यों को भित्तियों पर चित्रित कर उन्हें सुसज्जित करते थे। इनके कुछ अवशेष अब भी उत्तरी तथा दक्षिणी भा[illegible] हैं। ये लोग मिट्टी के बर्तनों पर भी चित्र अंकित करते थे। नावें [illegible] की जाने लगी थीं। रूई और ऊन कात कर वस्त्र बुने [illegible] को गाड़ा जाता था। नवीन पाषाण काल [illegible] में पाई गई है। यदा कदा मृतक [illegible] ऐसे चौखटे

वाले मृतक धरती पर गड़े हुए पाये गये हैं। कब्रों पर चौकोर तीन या चार खं पत्थरों पर आश्रित बड़ी बड़ी छतें होती थीं। इस प्रकार की नवीन पाषाण काल की कब्रें समस्त संसार में एक सी हैं।

इन दोनों प्रागैतिहासिक युगों की केवल यही समानता है कि दोनों युगों मे पत्थर के औजार काम में लाये जाते थे और इन औजारों और गुफाओं के अतिरित हमें कोई अन्य चिन्ह इनके बारे मे मिलते भी नही है। दोनों काल के मनुष्यों में क्या सम्बन्ध रहा है इसके भी हमारे पास पर्याप्त प्रमाण नहीं हैं। कुछ लोग नवीन पाषाण काल के मनुष्यों को प्राचीन पाषाण काल के मनुष्यों का वंशज मानते हैं। अन्य इतिहासकारों की धारणा है कि ऐसा कहना न केवल निर्मूल है अपितु दोनों काल के मनुष्यों के बीच सहस्रों वर्षों का अन्तर भी है और बिना निश्चित आधार के किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है।

धातु युग:—परन्तु सब इतिहासकार इस बात मे सहमत हैं कि नवीन पाषाण काल के मनुष्य अवश्य ही आगे आने वाले मनुष्यों के पूर्वज रहे हैं। ये आगे आने वाले मनुष्य धातु के प्रयोग के ज्ञान में प्रगति कर चुके थे किन्तु यह कार्य भी सहस्रों वर्षों में हुआ प्रतीत होता है। काफ़ी समय तक पत्थर व धातुओं के औजार एक साथ काम में आते रहे। प्रारम्भिक धातु युग के औजारों का और नवीन पाषाण युग के औजारों का आकार भी समान था किन्तु धातु प्रयोग मे भारत के भिन्न भिन्न भागों में समानता नही रही। उत्तरी भारत मे साधारण अस्त्रों व औजारों में पत्थर की जगह तांबा काम में लाया जाने लगा। तांबे के बने हुये कुल्हाड़ियां, कटारें, भाले इत्यादि देश के भिन्न भिन्न भागों में पाये गये हैं। अनेक शताब्दियों बाद तांबे की जगह लोहा काम मे लाया गया है। इस प्रकार हम उत्तरी भारत में ताम्रयुग तथा प्रारम्भिक लौह युग में विभिन्नता पाते हैं, किन्तु दक्षिणी भारत में पाषाण युग के ठीक बाद से लौह युग प्रारम्भ होता है और हमें ताम्रयुग का कोई चिन्ह नही मिलता।

इस प्रकार ताम्र तथा लौह युग के साथ साथ ही हमे प्रागैतिहासिक काल की समाप्ति करनी पड़ती है क्योंकि इसके बाद समस्त इतिहास कई अन्य साधनों पर आधारित है। ताम्र युग के लिए तो हमे सिन्धु घाटी के भग्नावशेष प्रचुर मात्रा में प्राप्त है जिनसे हम उस समय की संस्कृति का अनुमान कर सकते हैं।

सिन्धु घाटी की सभ्यता तथा वैदिक सभ्यता का प्रभाव

आधुनिक युग खोज का युग है। मनुष्य निरन्तर नई जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। उसे वर्तमान स्थिति से सन्तोष नहीं होता है। अतः

यह भूत और भविष्य की जानकारी में तल्लीन रहता है। नये नये आविष्कार, नई नई खोजें तथा नये नये सिद्धान्त उसके रोचक विषय हैं। उसे इस बात की जानकारी का कौतूहल रहता है कि उसके पुरखे कौन थे, कहां से आये तथा कैसा जीवन यापन करते थे? आज तो यह सब अनुसन्धान बड़े वैज्ञानिक तरीके से होने लगे हैं। इसी क्रम के अन्तर्गत सिन्धु घाटी की खुदाई कर जो एक नई सभ्यता का पता लगाया गया, उसका अध्ययन बड़ा रोचक है।

हमारे भारत का प्राचीनतम इतिहास उपलब्ध जानकारी के अनुसार वैदिक काल अर्थात आर्य के आगमन से प्रारम्भ होता था। इससे पहले की हमें कोई जानकारी नहीं थी। सन् १९२२ ई० की खुदाई के बाद मोहनजोदड़ों तथा हड़प्पा में इस प्रकार के अवशेष मिले जो मेसोपोटेमिया, क्रीट तथा मिश्र की सभ्यता से समता रखते थे। जिस प्रकार आज से लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व नील, दजला तथा फ़रात नदियों के किनारे उच्चतम संस्कृति फली फूली, ठीक उसी प्रकार सिन्धु नदी के किनारे भी एक बहुत उच्चकोटि की संस्कृति फली फूली थी।

आधुनिक भारतीय संस्कृति जातियों और युगों की सामूहिक देन है। जैसा कि हम पढ़ चुके इस संस्कृति का निर्माण और विकास विविध जातियों के योग से हुआ है। भारत में विभिन्न जातियाँ व शक्तियां परस्पर विरोध कर एक होगईं और इस प्रकार अनेक विरोधी दलों की विशेषताओं ने मिलकर संस्कृति का रूप लिया। सिन्धु घाटी की सभ्यता ने कहां तक बाद वाली सभ्यताओं को प्रभावित किया, यह बतलाना तो कठिन है, किन्तु इसकी विशाल संस्कृति बिना प्रभाव डाले ही लोप हो जाय यह भी साधारणतया मानने जैसी बात नहीं है।

काल निर्णय अब तक कई विद्वानों द्वारा किया गया है, किन्तु प्रत्येक को अपने मत की पुष्टि के लिए अनुमान का सहारा लेना पड़ा है। सच तो यह है कि निश्चित काल-निर्णय इतिहासज्ञ अभी तक कर ही नहीं पाए हैं।

सिन्धु घाटी की सभ्यता तथा उसकी विशेषताएँ।—भारतवर्ष के अतीत का सर्व प्रथम चित्र हमें सिन्धु घाटी की सभ्यता में मिलता है और इसके खण्डहर सिन्ध के मोहन-जो-दड़ो (मृतों की राशि) और पश्चिमी पंजाब में हड़प्पा आदि नगरों में ३२५० तथा २६५० ई० पू० की सभ्यता पर प्रकाश डालते हैं। मोहन-जो-दड़ो सिन्ध के लरकाना जिले में तथा हड़प्पा लाहौर और मुल्तान के बीच मांटगोमरी जिले में स्थित है। सन् १९२१-२२ में श्री दयाराम सहानी तथा श्री आर० डी० बनर्जी ने खुदाई कर अनुसन्धान का कार्य चालू रखा जो दस वर्षों तक चलने के उपरान्त आर्थिक कठिनाइयों के कारण स्थगित कर दिया गया। जिस काल के अवशेष हमें उपलब्ध हुए हैं, उस समय सिन्ध आज की तरह रेगिस्तान नहीं था अपितु वहाँ घना जंगल था और पानी की प्रचुरता थी। मोहन-जो-दड़ो इस की सतह ६० से २० फीट की ऊँचाई तक ढेरों में दबी हुई थी। जिस समय इन ढेरों की चोटी से पानी की सतह तक खुदाई की गई तो सात सतह निकलीं जिससे जाहिर होता है कि वहाँ पर सात बार नगर बसाया गया था। आज तो वहाँ केवल भग्नावशेष ही प्राप्त हैं किसी समय वहाँ पर एक समृद्धशाली और वैभवशाली नगर रहा होगा। नगर निर्माण एक सुनिश्चित योजनानुसार किया गया था जिसमें चौड़ी समकोण पर एक दूसरे को काटती हुई पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण को जाती हुई सड़कें बनी हुई थीं।

हड़प्पा के खण्डहर रावी नदी के तटवर्ती सब खण्डहरों से अधिक विशाल हैं। मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पा से उतर कर चन्हुदड़ो सिन्धु सभ्यता का तीसरा केन्द्र था। इसके खण्डहर मोहन-जो-दड़ो से ८० मील दक्षिण पूर्व सिंध के नवाबशाह जिले में विद्यमान हैं। ईसा से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व सिन्धु नदी जो अब चन्हुदड़ो से बारह मील पश्चिम में है, नगर में होकर बहती थी। यहाँ से ३० मील दूर बलूचिस्तान की सीमा पर कीर्थर पर्वतमाला है। इसमें एक दर्रा है, जहाँ होकर सिन्ध के लोग स्थलमार्ग से ईरान और अन्य देशों से व्यापार करते थे। आज भी इस दर्रे का इसी प्रकार प्रयोग होता है। अतः यह स्पष्ट है कि प्राचीन चन्हुदड़ो अवश्य ही एक प्रसिद्ध वाणिज्य का केन्द्र रहा होगा।

सिन्ध का काठा और उसके आसपास का प्रान्त जो अन्त में सिन्धु सभ्यता के प्रभाव में आया एक बहुत विस्तृत क्षेत्र है। यह एक हजार मील लम्बा और

यह पशुपति शिव का प्रतिरूप है। पत्थर, वृक्ष तथा पशुओं की भी पूजा की जाती थी। इससे यह सिद्ध है कि शिव, काली तथा लिंग की पूजा आर्यों के भारत में आने से पूर्व भी होती थी। अतः सिन्धु घाटी की सभ्यता तथा हिन्दू धर्म में घनिष्ट सम्बन्ध रहा है।

वैदिक सभ्यता तथा उसकी महत्ता :—भारतीय आर्यों की सभ्यता वैदिक सभ्यता के नाम से जानी जाती है। इस विषय पर विद्वान एक मत नहीं हैं कि आर्यों का मूल निवास स्थान क्या था ? किन्तु अधिकतर धारणा यही की जाती है कि वे मध्य-एशिया के निवासी थे। पश्चिमी विद्वानों का मत है कि अनेक कारणों से आर्य अपने मध्य-एशिया अथवा मध्य योरप के मूल निवास स्थान से निकलकर पश्चिम तथा दक्षिण और दक्षिण-पूर्व की ओर चल दिये और इस प्रकार संसार के अनेक भागों में फैल गये। सभी पाश्चात्य विद्वान ऋषियों को ही वेद के रचयिता मानते हैं। इन्हें श्रुति भी कहा जाता है क्योंकि प्राचीन ऋषियों ने सुनकर ही परम्परा से इन मंत्रों को ग्रहण किया है। वैदिक काल का कोई प्रामाणिक निर्णय नहीं हो पाया है किन्तु ऋग्वेद ई० पू० १५०० में अवश्य था। सम्भव यह भी है कि उससे बहुत पहले रचा गया हो और सबसे प्राचीन मन्त्र शायद बहुत ही प्राचीन हों। इसके अतिरिक्त इस काल का अध्ययन करते समय हम तीन काल-विभाग स्पष्टतया देख पाते हैं—ऋग्वैदिक काल जो सबसे प्राचीन है; उत्तर वैदिक काल जिसमें ऋग्वेद के दसवें मंडल की रचना हुई और जो मंडल भाषा शैली में भिन्न है, वैदिक काल का अन्तिम युग जो ई० पू० आठवीं या सातवीं शताब्दी या उससे भी पहले का है।

साहित्यिक दृष्टिकोण से वैदिक साहित्य की गणना संसार के सबसे प्राचीन और बृहत् साहित्य में की जाती है। उपलब्ध श्रुति-साहित्य ही इतना है जिस पर कई वर्षों तक खोज की जा सकती है। यह ज्ञान का भंडार है। अनुपलब्ध साहित्य की प्राप्ति के उपरान्त इस साहित्य कोष की महिमा और बढ़ सकती है। इस साहित्य के अध्ययन से संसार की प्राचीनतम संस्कृति का सहज ही ज्ञान हो जाता है। उपलब्ध वैदिक साहित्य निम्न भागों में बटा हुआ है—वैदिक संहिता, ब्राह्मण तथा आरण्यक, उपनिषद्, वेदांग तथा सूत्र-साहित्य। वेदों का दूसरा नाम संहिता है। वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। वेदों के लिखित न होने के कारण इनके स्वरूप में भेद आना आवश्यक हो गया था। संहिताओं के पश्चात् यज्ञ-सम्बन्धी गद्यात्मक साहित्य का निर्माण हुआ और इस साहित्य के विकास का समय ई० पू० ८०० से ५०० वर्ष पूर्व माना गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में विस्तार से यज्ञ कर्म-काण्ड का वर्णन है। इन ब्राह्मणों में कुछ ऐतिहासिक सामग्री भी प्राप्त होती है। इस साहित्य के अन्त में ही कुछ ऐसा साहित्य है जो बस्ती से दूर अरण्यों अर्थात् जंगलों में पढ़ा जाता था।

आभूषणों का प्रयोग करते थे। हार, कान की बालियां, कड़े, करधनी इत्यादि आभूषणों का प्रयोग होता था। धनिक वर्ग सोने और चांदी का प्रयोग करते थे और गरीब तांबा मिट्टी व हड्डी आदि के आभूषण पहनते थे।

गृहस्थो के प्रयोग मे मिट्टी के बर्तन लाये जाते थे—जैसे रकाबियां, प्याले, सुराही, घड़े आदि घर के बर्तनों पर अनेक प्रकार के पशु, पक्षी, वृक्ष आदि के चित्र बने हुए होते थे। तांबे, चांदी और कांसे के बर्तनों का भी प्रयोग होता था। लोहा काम में नहीं लाया जाता था। मिट्टी की बनी हुई कातने की तकलियां, हड्डी की बनी सुईयां और कंघे तथा तांबे और कांसे की बनी हुई कुल्हाड़ी, छैनी, चाकू, छुरे व पत्तियां इत्यादि पाई गई हैं।

हमें इस प्रकार के चिन्ह मिले हैं जिनसे यह मालूम होता है कि बैल, भैंस, भेड़, सूअर, ऊँट और हाथी तथा कुत्ते व घोड़े उस समय भी पाले जाते थे। जंगली जानवरों में गैंडा, बन्दर, रीछ, चीता, खरगोश कुब्बड़दार बैल आदि भी होते थे। इन पशुओं के चित्र हमें तत्कालीन प्राप्त मुहरों तथा ताम्रपत्रों पर मिले हैं।

पत्थर, पीतल तथा तांबे के हथियारों का प्रयोग होता था। हथियारों का घटिया होना इस बात का प्रमाण है कि ये लोग लड़ाकू नहीं थे। स्वरक्षा में प्रयोग में लाये जाने वाले हथियार ढाल, कवच आदि भी मिले हैं। लगभग ५५० मुहरें मिली है जो पत्थर व अनेक रंगो के समुद्री पत्थरों व गारे की बनी हुई हैं। इन पर किसी न किसी पशु का चित्र अंकित है। इन चित्रों के पार्श्व में तथा नीचे कुछ लिखा हुआ है जो पढ़ा नहीं जा सका है। चूंकि उनकी लिपि भारतवर्ष में आगे प्रयुक्त होने वाली लिपि से सर्वथा भिन्न है।

कृषि प्रमुख उद्योग था और कला-कौशल के क्षेत्र में बढ़ई, राज, कुम्हार, लुहार, सुनार, जौहरी तथा हाथी दांत का काम करने वाले व पत्थर काटने वाले होते थे। कुछ पत्थर की मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं। मुहरें व्यापार के काम में लाई जाती थीं। इस समय एशिया के अन्य देशों से भी व्यापार होता था। मुर्दे को जलाया जाता था किन्तु हड़प्पा में एक बड़ा कब्रिस्तान भी मिला है। मुर्दे की राख कहीं कहीं बर्तन में रखी जाती थी और कहीं कहीं हड्डियों को एकत्रित कर बर्तनों में डालकर उन्हें गाड़ दिया जाता था।

सिन्धुवासी मातृ-देवी के उपासक थे। उस समय के मनुष्यों की ऐसी यह धारणा थी कि समस्त रचना में स्त्री-शक्ति का हाथ है। एक नासाग्रदृष्टि योगी की भी मूर्ति मिली है, जो चारों ओर पशुओं से घिरी हुई है। ऐसा माना जाता है कि

यह पशुपति शिव का प्रतिरूप है। पत्थर, वृक्ष तथा पशुओं की भी पूजा की जाती थी। इससे यह सिद्ध है कि शिव, काली तथा लिंग की पूजा आर्यों के भारत में आने से पूर्व भी होती थी। अतः सिन्धु घाटी की सभ्यता तथा हिन्दू धर्म में घनिष्ट सम्बन्ध रहा है।

वैदिक सभ्यता तथा उसकी महत्ता :—भारतीय आर्यों की सभ्यता वैदिक सभ्यता के नाम से जानी जाती है। इस विषय पर विद्वान एक मत नहीं है कि आर्यों का मूल निवास स्थान क्या था ? किन्तु अधिकतर धारणा यही की जाती है कि वे मध्य-एशिया के निवासी थे। पश्चिमी विद्वानों का मत है कि अनेक कारणों से आर्य अपने मध्य-एशिया अथवा मध्य योरप के मूल निवास स्थान से निकलकर पश्चिम तथा दक्षिण और दक्षिण-पूर्व की ओर चल दिये और इस प्रकार संसार के अनेक भागों में फैल गये। सभी पाश्चात्य विद्वान ऋषियों को ही वेद के रचयिता मानते हैं। इन्हें श्रुति भी कहा जाता है क्योंकि प्राचीन ऋषियों ने सुनकर ही परम्परा से इन मन्त्रों को ग्रहण किया है। वैदिक काल का कोई प्रामाणिक निर्णय नहीं हो पाया है किन्तु ऋग्वेद ई० पू० १५०० में अवश्य था। सम्भव यह भी है कि उससे बहुत पहले रचा गया हो और सबसे प्राचीन मन्त्र शायद बहुत ही प्राचीन हों। इसके अतिरिक्त इस काल का अध्ययन करते समय हम तीन काल-विभाग स्पष्टतया देख पाते हैं—ऋग्वैदिक काल जो सबसे प्राचीन है; उत्तर वैदिक काल जिसमें ऋग्वेद के दसवें मंडल की रचना हुई और जो मंडल भाषा शैली में भिन्न है, वैदिक काल का अन्तिम युग जो ई० पू० आठवीं या सातवीं शताब्दी या उससे भी पहले का है।

साहित्यिक दृष्टिकोण से वैदिक साहित्य की गणना संसार के सबसे प्राचीन और वृहत् साहित्य में की जाती है। उपलब्ध श्रुति-साहित्य ही इतना है जिस पर कई वर्षों तक खोज की जा सकती है। यह ज्ञान का भंडार है। अनुपलब्ध साहित्य की प्राप्ति के उपरान्त इस साहित्य कोष की महिमा और बढ़ सकती है। इस साहित्य के अध्ययन से संसार की प्राचीनतम संस्कृति का सहज ही ज्ञान हो जाता है। उपलब्ध वैदिक साहित्य निम्न भागों में बटा हुआ है—वैदिक संहिता, ब्राह्मण तथा आरण्यक, उपनिषद्, वेदांग तथा सूत्र-साहित्य। वेदों का दूसरा नाम संहिता है। वेद चार है—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। वेदों के लिखित न होने के कारण इनके स्वरूप में भेद आना आवश्यक हो गया था। संहिताओं के पश्चात् यज्ञ-सम्बधी गद्यात्मक साहित्य का निर्माण हुआ और इस साहित्य के विकास का समय ई० पू० ८०० से ५०० वर्ष पूर्व माना गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में विस्तार से यज्ञ कर्म-काण्ड का वर्णन है। इन ब्राह्मणों में कुछ नोति-निक सामग्री भी प्राप्त होती है। इस साहित्य के अन्त में ही कुछ ऐसा साहित्य हुआ जो बस्तो से दूर अरण्यों अर्थात् जंगलों में पढ़ा जाता था।

व्यवसाय परिवर्तन करने पर स्वाभाविक रूप से जाति भी बदल जाती थी। एक साथ खान-पान व अन्तर्जातीय विवाह निषिद्ध नहीं थे और न इन पर किसी प्रकार के अंकुश थे। बाद में विजित अनार्य जातियों के आर्य धर्म अंगीकार करने पर समाज के चौथे वर्ग अर्थात् शूद्रों का जन्म हुआ। शूद्रों का मुख्य कर्तव्य अन्य वर्गों की सेवा तथा शारीरिक श्रम के कार्य करना था।

आर्यों का पारिवारिक गठन पितृ-सत्तात्मक आधार पर था और समाज की इकाई परिवार ही था। परिवार में पति-पत्नी, उनके बच्चे तथा भाई-बहिन के अतिरिक्त अन्य कुटुम्बी भी रहते थे। संयुक्त-परिवार प्रथा का प्रचलन था। परिवार में सब लोग मिल जुलकर रहते थे। परिवार का मुखिया वयोवृद्ध पिता ही होता था जो सब सदस्यों के हित और सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखता था। अल्पायु में विवाह नहीं होते थे। कन्या का विवाह यद्यपि पिता की इच्छानुसार ही होता था, परन्तु वर और कन्या की स्वेच्छा से विवाह होने के प्रमाण भी मिले हैं। समाज में स्त्रियों का स्थान बहुत ऊँचा था और उनका सम्मान होता था। स्त्रियाँ शिक्षित होती थीं। अनेक विदुषी स्त्रियाँ पुरुषों के साथ शास्त्रार्थ भी करती थीं। विश्ववारा, घोषा, अपाला आदि अनेक विदुषी महिलाओं के उल्लेख मिलते हैं। वे घर की स्वामिनी होती थीं और अपने पति के साथ यज्ञ तथा अनेक धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेती थीं। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही स्वर्ण के आभूषण धारण करते थे। साधारणतया स्त्री व पुरुष तीन वस्त्र धारण करते थे—एक कमर से नीचे, एक कमर से ऊपर और एक कन्धे पर चादर की तरह। गेहूँ, जौ, चावल, दूध, दही, घी, शाक, फल इत्यादि इनके साधारण भोजन थे। मांस का भी प्रयोग होता था, परन्तु सुरापान अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था। यज्ञ के अवसर पर सोमरस का पान किया जाता था। रथों की दौड़ और द्यूत क्रीड़ा इनके मनोरंजन के मुख्य साधन थे। पशुपालन, कृषि तथा अनेक प्रकार के उद्योग-धन्धे आर्यों के मुख्य व्यवसाय थे। आर्यों के आर्थिक जीवन में गाय का बड़ा महत्व था। वे ग्राम जीवन को जहाँ कि उन्हें शुद्ध वायु और प्रकृति का मुक्त-वातावरण उपलब्ध हो, पसन्द करते थे। अभी बड़े बड़े नगरों का निर्माण नहीं हुआ था।

राजनैतिक क्षेत्र में अधिकांश राज्य राजतन्त्रात्मक ही थे। राजा की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र ही सिंहासन का अधिकारी होता था। कहीं कहीं प्रजा भी राजा को चुनती थी। ग्राम का शासन ग्रामणी के पास होता था जो ग्राम का मुखिया होता था। आर्य लोग अनेक वर्गों में बँटे हुए थे जो 'जन' कहलाते थे। प्रत्येक 'जन' का अधिपति राजा कहलाता था। इस समय पंजाब में पुरु, तुर्वसु, यदु, द्रुह्यु तथा अनु नामक पांच जन बसे हुए थे। राजतन्त्रात्मक होते हुए भी इन राज्यों के शासन में प्रजा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। आर्यों में प्रजातन्त्र शासन की परंपरायें बहुत

लिए अनेक लोकप्रिय संस्थाऐं थी। इनमें से प्रमुख संस्थाएं
क दो परिषदें थीं। शान्तिकाल मे राजा अपनी प्रजा के सुख
लिए अनेक प्रजा हितकारी कार्य करता था। न्याय का अन्तिम
र ही था। युद्ध के समय अपनी प्रजा की रक्षा के लिए वह
शत्रु से लड़ता था। राजा के अन्य सलाहकारों में मंत्री परिषद्,
मन्त्री होता था, राज्य परिवार के सदस्य तथा अन्य योग्य
ी जाती थी। सेना का अध्यक्ष सेनानी अथवा सेनानायक होता
ा मुख्य साधन भूमि-कर था।

र में धार्मिक धारणाओं का परिवर्तित रूप दृष्टिगोचर होता है। अब
होता नजर आता है। कुछ नये देवता जैसे शिव, विष्णु, आदि
ैदिक क्रियाओं तथा समारोहों ने अपनी सरलता गँवा दी थी।
पुनर्जन्म के सिद्धान्त का विकास इसी युग मे हुआ। इसी युग में
त करने की धारा का जन्म हुआ। ऋग्वेद के समय ग्राम थे।
प्रथम बार हमें नगरों का उल्लेख मिलता है। इस समय
न हो गये थे। राजा की निरंकुश स्थिति सुदृढ़ हो गई थी। वह
करने लगा था, शासन-व्यवस्था का रूप भी विस्तृत तथा जटिल
क राजधानीवासी राजा के चारों ओर घिरे रहते थे। यहीं
न हो रहा था।

र मे वेशभूषा तथा खान-पान मे विशेष अन्तर नहीं आया था
दशाएं बुरी निगाह से देखे जाने लगे थे। नारियों की दशा
रही थी। वैवाहिक नियम भी कठोर हो गये थे। बहुविवाह
दहेज भी चालू हो गया था। कृषि ही आर्थिक-व्यवस्था का
विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में काफी उन्नति करली गई थी।

भारत की दो महानतम सभ्यताओं का हमने अवलोकन
सभ्यता शायद ईसा से ५००० से १००० वर्ष पूर्व के मध्य
में ऐसा ही कुछ प्रतीत होता है। श्री [illegible] राव का
के मानने वाले वैदिक [illegible] के विरुद्ध [illegible],
[illegible] था। पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक '[illegible]
और [illegible] के बारे का [illegible] है—"[illegible]"
रहों में एक चीज तो साफ और पर जाहिर होती है और
[illegible]

जो सभ्यता हमारे सामने आई है, वह कोई इक्तदाई सभ्यता नहीं है बल्कि ऐसी है जो उस समय भी युगों पुरानी पड चुकी थी, हिन्दुस्तान की जमीन पर मजबूत हो चुकी थी, व उसके पीछे आदमी का कई हजार वर्ष पुराना कारनामा था। इस तरह अब से मानना पड़ेगा कि ईरान, मेसोपोटेमिया और मिश्र की तरह हिन्दुस्तान उन सब प्रमुख देशों में से एक है, जहाँ पर सभ्यता का आरम्भ और विकास हुआ था।" इसमें कोई सन्देह नहीं कि सैन्धव-संस्कृति की खोज के कारण भारत का ससार के प्राचीन सभ्य देशों में एक महत्वपूर्ण स्थान हो गया है।

वैदिक-संस्कृति प्रमुखतया भारतीय-संस्कृति ही है। भारतीय जीवन के प्रत्येक अंग का स्त्रोत वैदिक सभ्यता में पाया जा सकता है। भारतियों के आचार-विचार, धर्म, सामाजिक संगठन, वर्ण-व्यवस्था, भाषा, वेष-भूषा, यहाँ तक कि लगभग सभी बातों में वैदिक-सभ्यता की स्पष्ट छाप आज भी देखी जा सकती है। वेदों को भारत के प्रत्येक भाग में हिन्दुओं का पवित्र धार्मिक ग्रन्थ माना जाता है। भारत के अधिकांश हिन्दू अपने को आर्य कहने में गर्व का अनुभव करते हैं। कुछ साधारण परिवर्तनों के साथ आर्य सभ्यता की परम्परा आज भी हमारे देश में चली आ रही है। उत्तर वैदिक काल का भारतीय संस्कृति के इतिहास में उच्चतम स्थान है। इस युग की सबसे महत्वपूर्ण देन दार्शनिकता है। मोक्ष और पुनर्जन्म के सिद्धान्त तथा कर्मवाद के सिद्धान्त का मूलभूत प्रतिपादन इस काल में ही हुआ। अतः सांस्कृतिक क्षेत्र में उत्तर-वैदिक काल की देन अतुलनीय है।

बौद्ध धर्म तथा उसका प्रभाव :—

बौद्ध-धर्म संसार के महान धर्मों में से एक है। इसके अनुयायियों की संख्या सम्भवतः केवल ईसाई-धर्म को छोड़ कर संसार में सबसे अधिक है। अतः बौद्ध-धर्म संसार का दूसरा सबसे बड़ा धर्म है। अनुयायियों की संख्या के अतिरिक्त एक अन्य तथा अधिक उपयोगी दृष्टिकोण से भी बौद्ध-धर्म का महत्व और स्थान संसार के अन्य धर्मों से अधिक ऊंचा है। वह इसके मानवोपयोगी सुन्दर सिद्धान्त और आदर्श शिक्षाएं हैं। इस धर्म का आधार सत्य, अहिंसा प्रेम और बन्धुत्व है। भारत को इस आदर्श-धर्म का जन्म देने का श्रेय प्राप्त है। इसके लिये प्रत्येक भारतवासी को गर्व हो सकता है। आज जलते हुए विश्व की जटिल समस्याओं का समाधान हाईड्रोजन बम्ब (Hydrogen Bomb) अथवा सैनिक गुट बन्दियां नहीं हैं। महात्मा बुद्ध (६२५—५४५ ई० पू०) का प्रेम, अहिंसा और विश्व-बन्धुत्व का सन्देश ही मानवता को विनाश के मुख से बचा सकता है जो कि उन्होंने विश्व को ईसा के जन्म से करीब ५०० वर्ष पूर्व दिया था। प्रमाणों के आधार

२४ वें और अन्तिम तीर्थंकर थे। ये गौतम बुद्ध के समकालीन थे। इन्होंने सत्य, अहिंसा और सद्व्यवहार की शिक्षा दी। बौद्ध-धर्म के बारे में नीचे बताया जा रहा है।

महात्मा बुद्ध का जीवन और धर्म-प्रचार:—

महात्मा बुद्ध का जन्म आधुनिक बिहार राज्य में स्थित कपिलवस्तु नगरी में ईसा से ५६३ वर्ष पूर्व हुआ था। आपके पिता शुद्धोधन कपिल-वस्तु गणराज्य के राजा थे। गौतम बुद्ध के बचपन का नाम सिद्धार्थ था। सिद्धार्थ की प्रकृति बचपन से ही बहुत चिंतन-शील थी। आप दुःखी मनुष्य अथवा प्राणियों के दुःख को देखकर स्वयं भी दुःखी हो जाते थे और दुःखों से छुटकारा पाने के उपाय सोचा करते थे। पीड़ित प्राणियों के प्रति इनके हृदय में अपार दया तथा सहानुभूति का सागर लहरा रहा था। जीवन और मृत्यु के दुःखों से अन्तिम छुटकारा पाने का क्या उपाय है, इसी विचार में ये तल्लीन रहने लगे। पिता ने इनकी यह दशा देखी तो १८ वर्ष की आयु में यशोधरा नाम की एक सुन्दर कन्या से उनका विवाह कर दिया। दो वर्ष बाद इनके एक पुत्र भी हुआ। परन्तु पत्नी और पुत्र भी इनके हृदय की संवेदनशीलता के तूफान को नहीं रोक सके। इनकी चिंतन-शीलता बढ़ती ही गयी। तीस वर्ष की आयु में रात्रि के गहन अन्धकार में अपने पुत्र और पत्नी को सोता हुआ छोड़कर वे शान्ति की खोज में चल दिये। यही गौतम का "महानिष्क्रमण" है।

गृह-त्याग के पश्चात् वे स्थान-स्थान पर शान्ति की खोज में भटकते रहे, परन्तु अशान्त मन को कहीं भी शान्ति प्राप्त नहीं हुई। उन्होंने विद्वान् पण्डित तथा ब्राह्मणों के संसर्ग का लाभ उठाया और पवित्र पुस्तकों का अध्ययन किया, परन्तु सब बेकार साबित हुआ। उन्होंने छः वर्ष तक कठिन तपस्या की। इससे केवल उनका शरीर सूख कर कांटे के समान बन गया। परन्तु उनका उद्देश्य पूर्ण नहीं हुआ। अब वे तपस्या को निरर्थक समझ सरल जीवन बिताने लगे। एक दिन बोद्ध गया (आधुनिक बिहार राज्य में) के समीप एक पीपल के पेड़ के नीचे वे ध्यानावस्था में बैठे थे। वहीं उन्हें सत्य का बोध हुआ और इसी कारण वे बुद्ध कहलाये। पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यान करते २ उन्हें अलौकिक शान्ति का आभास हुआ। अब उन्हें वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो गया था। यहां यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि गौतम बुद्ध को उस समय क्या "बोध" हुआ था? वह सत्य तथा वास्तविक ज्ञान जो कि उन्हें प्राप्त हुआ था वस्तुतः क्या था? क्या उन्हें किसी दिव्य अथवा अलौकिक शक्ति की अनुभूति के दर्शन हुये थे? वास्तव में गौतम बुद्ध को जो भी बोध, ज्ञान तथा सत्य का आभास

हुआ था वही बातें उनकी शिक्षाओं तथा उपदेशों में आज भी स्पष्ट देखी जा सकती है। उस पीपल के वृक्ष के नीचे जो कि आज बोधि वृक्ष कहलाता है, गौतम बुद्ध को पता चला कि सरल, सच्चा तथा आडम्बरहीन जीवन ही सुख का मार्ग है, तप, यज्ञ तथा कर्मकाण्ड निरर्थक है। यही वास्तविक ज्ञान है। इसी का बोध महात्मा बुद्ध को हुआ था। गौतम बुद्ध ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अति का त्याग कर मध्यम मार्ग के अवलम्बन की शिक्षा दी। महात्मा बुद्ध के महानिर्वाण के करीब ५० वर्ष पश्चात चीन में कनफ्यूशियस (Confucius 500-478 B. C.) ने इसी मध्यम मार्ग पर चलने की शिक्षा दी। बुद्ध का यह मध्यम मार्ग एक ओर तो भोग विलास की अति का विरोध करता था और दूसरी ओर अनावश्यक रूप से शरीर को जप–तप द्वारा कष्ट देने का भी विरोधी था और सीधे एवं सरल जीवन का समर्थक था।

"बोध" प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने सर्व प्रथम अपने उपदेश बनारस के समीप सारनाथ में पांच भिक्षुओं को सुनाए। इसके पश्चात् महात्मा बुद्ध ने अपने विचारों (बौद्ध-धर्म) का व्यापक रूप से प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। अनेक गृहस्थ, धनी, निर्धन, विद्वान, जन साधारण, राजे महाराजे, साधु–सन्यासी उनके शिष्य हो गये। बौद्ध-धर्म का प्रचार बड़ी तेजी से भारतवर्ष में होने लगा। महात्मा बुद्ध की इस असाधारण सफलता का मुख्य कारण उनके धर्म के सीधे और सरल सिद्धान्त तथा उनका प्रभावशाली एवं आकर्षक व्यक्तित्व था। कहते हैं कि उनकी वाणी बहुत मधुर थी और श्रोतागण पर उसका तत्काल ही प्रभाव होता था। जनता ब्राह्मण धर्म की जटिलता और आडम्बरों से भी ऊब गई थी। इस कारण उसने बौद्ध-धर्म का स्वागत किया। यज्ञों में दी जाने वाली पशु बलि द्वारा रक्तपात को भी अनेक व्यक्ति अच्छा नहीं समझते थे। अतः उन्होंने अहिंसा के सिद्धान्त को स्वीकार किया। जाति व्यवस्था और ब्राह्मणों के प्रभुत्व से भी समाज के अनेक वर्ग असन्तुष्ट थे, अतः बौद्ध-धर्म में उन्होंने नई आशाओं का स्वर्ग देखा। ब्राह्मणों के उपदेश तथा धर्मग्रन्थ संस्कृत भाषा में होते थे। ब्राह्मण धर्म की सभी पुस्तकें संस्कृत भाषा में ही थी इस भाषा को जन साधारण के लिए समझना कठिन था। इस कारण ब्राह्मणों के उपदेश जनता में अधिक लोक प्रिय न हो सके। इसके विपरीत महात्मा बुद्ध अपने उपदेश जनता की बोल-चाल की भाषा (प्राकृत) में देते थे। अतः उनके उपदेशों को जनता समझ सकती थी। बुद्ध-धर्म की सफलता के ये दो कारण थे। कौशल के राजा प्रसेनजित, मगध के सम्राट बिम्बसार तथा उसका पुत्र और उत्तराधिकारी अजातशत्रु महात्मा बुद्ध के अनुयायी बन गये। इन राजाओं की व्यक्तिगत रुचि ने भी बौद्ध धर्म का बहुत प्रचार किया। ४५ वर्ष तक महात्मा

बुद्ध अपने मत का भारत के विभिन्न स्थानों में प्रचार करते रहे। ८० वर्ष की आयु में कुशीनगर (आधुनिक उत्तर प्रदेश के गोरखपुर ज़िले में कसिया नामक स्थान) पर उनके पार्थिव शरीर का अन्त हुआ। वही उनका महानिर्वाण था।

बौद्ध धर्म के उपदेश —

महात्मा बुद्ध अपने उपदेश मौखिक रूप से ही प्रसारित करते थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके अनुयायियों ने उनके उपदेशों को लिखित रूप में संग्रहीत किया। इसके लिए बौद्ध धर्म की प्रथम सभा मगध के राजगृह नामक स्थान में हुई। यह सभा महात्मा बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् शीघ्र ही हुई थी। बुद्ध के प्रिय शिष्य आनन्द और उपाली के सहयोग से 'सुत्त पिटक' और 'विनय पिटक,' ग्रन्थों का संकलन किया गया। इसके पश्चात् बौद्ध धर्म की दूसरी (प्रथम सभा के १०० वर्ष पश्चात्) और तीसरी (अशोक के काल में) सभाओं के फलस्वरूप अभिधम्म पिटक, नामक ग्रन्थ की रचना हुई। ये ही तीन ग्रन्थ बौद्ध धर्म की पवित्र पुस्तक हैं। इनमें महात्मा बुद्ध के उपदेश, शिक्षाएं, बौद्ध धर्म के सिद्धान्त, भिक्षुओं की दिनचर्या तथा विहारों के नियम, तथा इस धर्म से सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण बातें हैं।

महात्मा बुद्ध की शिक्षा थी कि मनुष्य को तृष्णा का त्याग करना चाहिये क्योंकि सब दुखों का मूल तृष्णा ही है। उन्होंने संसार के दुःखों से बचने के लिये तथा निर्वाण प्राप्ति के लिये आठ सिद्धान्तों का पालन बतलाया जो कि अष्ट मार्ग कहलाते हैं। ये आठ बातें सद्वचन, सद्‌विचार, सदिच्छा, सद्भावावेश, सम्मानसिकता सदुपाय, सद्‌वृत्ति और सदाचार है। उन्होंने जीवन में अति का त्याग कर मध्यम मार्ग पर चलने की शिक्षा दी। बुद्ध धर्म न तो भोगविलास तथा विषय वासनाओं से पूर्ण जीवन का समर्थन करता है और न जप तप इत्यादि शारीरिक कष्टों में ही विश्वास करता है। विलासी जीवन एक दशा की ओर अति है और जपतप दूसरी दिशा की ओर इसके मध्य का मार्ग सरल तथा सादा जीवन है जिसका कि बौद्ध धर्म समर्थन करता है। महात्मा बुद्ध ने 'मध्यम प्रतिपदा, अथवा मध्यम मार्ग पर चलने की शिक्षा दी।

बौद्ध धर्म जीव हिंसा का विरोध करता है। महात्मा बुद्ध ने स्वयं यज्ञों में पशु बलि दिये जाने का विरोध किया। उन्होंने प्राणि मात्र के लिए अपार दया दिखाई। यह धर्म सदाचार पर अधिक जोर देता है तथा माता, पिता एवं अन्य गुरु-जनों के प्रति श्रद्धा और सम्मान प्रदर्शित करने का आदेश देता है। बौद्ध धर्म जाति व्यवस्था को नहीं मानता। ऊंच नीच की भावना का अन्त करके यह धर्म मानव मानव के बीच समानता तथा भ्रातृ भाव को फैलाना चाहता है। महात्मा बुद्ध स्वयं

अपने हृदय में अछूत तथा पतितों के प्रति बहुत सहानुभूति रखते थे । उन्होंने सुजा नाम की शूद्र स्त्री के हाथ से भोजन प्राप्त किया और आम्रपाली नामक वेश्या आतिथ्य स्वीकार किया और उसे बौद्ध–धर्म की शिक्षा दी । इससे बौद्ध धर्म प्रवर्तक की महानता और उनके हृदय में बसने वाली उदार मानवता का प चलता है । परन्तु फिर भी बौद्ध धर्म भारत से जाति–प्रथा को पूर्णतया नष्ट क मे असफल रहा । मानव का दुःख दूर करना और उसका कल्याण करना ही बौ धर्म का मुख्य उद्देश्य है ।

यद्यपि बौद्ध–धर्म जैन धर्म के समान ही (हिन्दू–धर्म के) पुनः जन्म के सिद्धा को स्वीकार करता है, परन्तु ईश्वर की सत्ता में इस धर्म को आस्था नही । महात्म बुद्ध ने ईश्वर तथा आत्मा सम्बन्धी बातों पर मौन धारण किया है । इससे प्रती होता है कि बौद्ध–मत प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता को मानता है । इस प्रकार ये सिद्धांत वर्तमान वैज्ञानिक भौतिकवाद (Scientific Materialism) के कितने समी हैं । बौद्ध मतानुसार इस धर्म के सिद्धान्तों के पालन द्वारा मानव 'निर्वाण' तक प्राप्त कर सकता है और निर्वाण के पश्चात् जन्म लेने के बन्धन से छुटकारा मिल जाता है । संक्षेप में बौद्ध धर्म दया, मानव कल्याण, सत्य अहिंसा और सदाचार की आधार शिलाओं पर टिका हुआ है । ये ही सिद्धांत इस कल्याण-कारी धर्म के प्राण हैं । भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म की यह अभूतपूर्व देन है ।

Topics for Essay

1. Describe, the salient features of the Pre-historic Culture.
   प्रागैतिहासिक संस्कृति पर एक लेख लिखें ।
2. Bring out clearly the difference between the Cultures of Old stone age and New stone age.
   प्राचीन पाषाण–युगीन संस्कृति तथा नवीन पाषाण–युगीन संस्कृति में क्या अन्तर है—विस्तार से बतलाइये ।
3. Write an essay on the part played by the different tribes in the development of Indian Culture.
   भारतीय सांस्कृतिक निर्माण में विभिन्न जातियों का जो योग रहा है, उस पर एक निबन्ध लिखें ।
4. Trace out the Dravadian Culture.
   द्रविड़ों की सभ्यता पर प्रकाश डालिए ।

5. Write an essay on the Indus Valley Civilization under the following headings—(a) Society (b) Religion (c) Art and Administration.
   सिन्धु-घाटी की सभ्यता का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों के आधार पर कीजिए (क) समाज (ख) धर्म (ग) कला व शासन।
6. Write an essay on the Aryan Civilization of the Vedic age by giving an account of their Social, Political and Economic conditions.
   वेद कालीन आर्य सभ्यता पर निबन्ध लिखिये जिसमें उनकी सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक दशा का वर्णन कीजिए।
7. Compare the Culture of the Rigvedic period with that of the Indus valley and point out the main contribution of these two to the Indian Culture.
   ऋग्वेदिक तथा सिन्धु-घाटी सभ्यता की तुलना कीजिए और यह बतलाइये कि इन दोनों की भारतीय संस्कृति को क्या देन है?
8. Write an essay on the contribution of Budhism to Indian Culture.
   बौद्ध-धर्म भारतीय संस्कृति की देन, विषय पर एक निबन्ध लिखिये।
9. Write an essay on the Cultural synthesis in ancient India with special reference to Pre-Vedic, Aryan and Budhist influences.
   प्राचीन भारत में सांस्कृतिक समन्वय पर निबन्ध लिखिये जिसमें पूर्व-वैदिक आर्य तथा बुद्ध प्रभाव का विशेष उल्लेख हो।

Brief Notes

Write brief notes on the following:—

(a) The contribution to ancient Indian Civilization of the following tribes:—

Kol, Bhil, Gond and Santhal.

(b) Dravidian Culture.
(c) Palaeolithic age.
(d) Neolithic age.
(e) Metal age.
(f) Harappa.
(g) Mohan-jo-daro.

(h) Drainage during Indus valley civilization.
(i) Pashupati.
(j) Layout of the city in Indus valley civilization.
(k) Religion of the Rigvedic Aryans.
(l) Aryan literature,
(m) Society during the time of the Aryans.
(n) Important tenets of Budhism.

संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये:—

(क) प्राचीन भारतीय संस्कृति को निम्न जातियों की देन :—कोल, भील, गोंड तथा सन्थाल ।

(ख) द्रविड़ संस्कृति
(ग) प्राचीन पाषाण-युग
(घ) नवीन पाषाण-युग
(ङ) धातु युग
(च) हड़प्पा
(छ) मोहन-जो-दड़ों
(ज) सिन्धु-घाटी सभ्यता के समय नालियां
(झ) पशुपति
(ञ) सिन्धु-घाटी सभ्यता में नगर योजना
(ट) ऋग्वेद-कालीन आर्यों का धर्म
(ठ) आर्य साहित्य
(ड) आर्यों के समय का समाज
(ढ) बुद्ध धर्म की महत्वपूर्ण शिक्षाएं

Objective Type Tests

Give short answers in not more than three lines. 'Yes' or 'No' may be mentioned where necessary.

(a) Name the various races which contributed in Ancient Indian Culture.

(b) What is your opinion about the period of existence of Indus valley civilization and Aryan civilization ?

(c) Write in chronological order the existence of the following cultures in ancient India.

Metal age, Neo-lithic age, Palaeolithic age, Budhist ag
Rigvedic age, Indus-valley civilization and Riguvedic age.

(d) Answer in 'Yes' or 'No'.

(i) Dravidians had 'Matriachal' system of society.

(ii) Rigvedic Aryans worshipped the ideas of Vishnu & Shiva.

(iii) The people of the Palaeolithic age used copper and iro

(iv) Indus valley civilization was traced out in the time o Chandragupta Maurya.

(v) The Indus valley script was 'Brahmi'.

(vi) Rigvedic Aryans were found of sacrificing animals.

(vii) Budhism came after Jainism.

(viii) Budhism did not believe in the existence of God.

नयी शैली के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के छोटे उत्तर (तीन पंक्तियों से अधिक नहीं) तथा जहाँ हाँ अथवा ना की आवश्यकता हो, वहाँ वैसा उत्तर दो.—

(क) उन जातियों का नाम बतलाइये जिन्होंने भारतीय संस्कृति के निर्माण में योग दान दिया।

(ख) आपकी राय में सिन्धु घाटी सभ्यता तथा आर्यों की सभ्यता का क्य काल है।

(ग) तिथि क्रमानुसार निम्न संस्कृतियों के नाम लिखिये—धातु युग नवीन पाषाण युग, प्राचीन पाषाण युग, बुद्ध काल, ऋग्वैदिक्काल. सिन्धु घाटी क सभ्यता का युग तथा उत्तर वैदिक काल।

(घ) "हाँ" अथवा "ना" में उत्तर दें—

(i) द्रविड़ों का मातृसत्तात्मक समाज था।

(ii) ऋग्वैदिक आर्य विष्णु तथा शिव की मूर्ति की पूजा करते थे।

(iii) पूर्व–पाषाण कालीन मानव ताँबे तथा लोहे का प्रयोग करता था।

(iv) सिन्धु घाटी सभ्यता के अवशेष चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में पा गये थे।

(v) सिन्धु घाटी सभ्यता की लिपि 'ब्राह्मी' थी।

(vi) ऋग्वैदकालीन आर्य पशु बलि के शौकीन थे।

(vii) बुद्ध धर्म जैन धर्म के बाद आया।

(viii) बुद्ध धर्म ईश्वर में विश्वास नहीं करता था।

— • —

प्रमुख भारतीय धर्म तथा इनकी सांस्कृतिक देन

(Fundamental teaching of the principal religions of India)

भारत एक विभिन्न धर्मों का देश है—एक पाश्चात्य इतिहासकार के शब्दों में हमारा भारत देश विभिन्न धर्म, जाति व सम्प्रदायों का एक अजायबघर है। कहने का तात्पर्य यह है कि जितने धर्म भारत में फलीभूत हुए हैं और हो रहे हैं—उतने अन्यत्र नहीं। भारतीय संस्कृति का सिद्धान्त है–'जीओ और जीने दो।' यह सिद्धान्त हमने धर्मों पर भी लागू किया है। भारतवासी अपने धर्मों पर आचरण करते रहे और अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु बने रहे। यही कारण है कि आज भारत की पुण्य भूमि में विश्व के लगभग सभी प्रमुख धर्म विद्यमान हैं।

धर्म का महत्व—भारत विश्व में एक धार्मिक देश माना जाता है। भारतवासियों को अपने जीवन में सर्वाधिक प्रिय धर्म होता है। अपने धर्म के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर सकते है। भारतवासियों का जीवन प्रारम्भ से अन्त तक धर्म से आबद्ध रहता है। वे प्रत्येक कार्य धर्म के नाम पर ही करते हैं। धर्म हमारे जीवन में इतना आवश्यक बन गया कि उसके बिना मानव विकास सम्भव है ही नहीं। इसीलिए किसी ने कहा है कि "जिस प्रकार किसी बीज के विकास के लिए उर्वर भूमि, जल आदि की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मानव-विकास के लिए धर्म आवश्यक है।" यह हम भारतवासियों का मानसिक भोजन है। हमारी आध्यात्मिक भावना का मूल स्रोत धर्म ही है। हम में नैतिक बल तथा सच्चरित्र की भावना धर्म के माध्यम से ही अंकुरित होती है।

धर्म क्या है—जब हम धर्म को हमारे जीवन में इतना व्यापक पाते हैं तो हममें यह प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि धर्म क्या है ? कुछ तो देवालय में जाना व भजन आदि करने को ही धर्म समझते हैं। महात्मा गांधी ने धर्म का अर्थ कर्त्तव्य से लिया है। मनुष्य को जिस समय जो काम सौंपा जावे, उसे पूरा करना ही उसका कर्त्तव्यपालन ही आपे धर्म का स्वरूप धारण करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पुत्र का पिता के प्रति व पत्नी का अपने पति के प्रति कर्त्तव्य है, वही उसका धर्म है। डॉ० राधाकृष्णन् ने अपनी पुस्तक 'धर्म और समाज' में

धर्म का अर्थ इस प्रकार दिया है—"विचारों की कोई भी गंभीर साधना, वि[illegible] की कोई भी खोज, सद्गुणों के अभ्यास का कोई भी प्रयत्न—ये सब उन ही से उत्पन्न होते है जिनका नाम धर्म है। मन द्वारा सौन्दर्य, शिवत्व और सत[illegible] खोज परमात्मा की ही खोज है।

हमारी भारतीय संस्कृति व सभ्यता विश्व की प्राचीन मिस्र व बेबी[illegible] सभ्यताओं के समकालीन है। वे सभ्यताएँ आज विनाश के गर्त मे समा गई है, [illegible] कि भारतीय सभ्यता आज अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। डॉ० राधाक[illegible] लिखते हैं—"जहाँ अन्य सभ्यताएँ नष्ट हो गई या उन परिवर्तनों में विलीन हो[illegible] जो पिछले पाँच हजार वर्षों के कालप्रवाह में होते रहे हैं, वहाँ भारतीय सभ्यता, मिस्र और बेबीलोन की सभ्यताओं के समकालीन है, अब भी कार्य कर रही [illegible] हम यह नहीं कह सकते, यह अपनी मंजिल पूरी कर चुकी है या अब इसका [illegible] निकट है।" इस भारतीय सभ्यता को दीर्घायु बनाने मे हमारे धर्म का परम सहय[illegible] रहा है। सिन्धु घाटी में प्रचलित धर्म का अभी कोई नामकरण नही हुआ। इस[illegible] उपरान्त भारतीय सभ्यता वैदिक काल से आरम्भ होती है। आर्य उस समय उत[illegible] भारत के निवासी बन गये थे। वे अपना आर्य-धर्म मानते थे और यही आर्य-[illegible] आगे चलकर वैदिक धर्म और हिन्दू-धर्म के नाम से प्रचलित हुआ। हिन्दू-धर्म [illegible] मूल स्रोत आर्यों के धार्मिक ग्रन्थ हैं। वेदों मे इस शब्द का प्रयोग धार्मिक विधि[illegible] के अर्थ मे किया गया है। छान्दोग्य उपनिषद् मे धर्म की तीन शाखाओं का उल्ले[illegible] किया गया है, जिनका सम्बन्ध गृहस्थ, तपस्वी ब्रह्मचारी के कर्त्तव्यों से है। पू[illegible] मीमांसा के अनुसार—धर्म एक वांछनीय वस्तु है, जिसकी विशेषता है प्रेरणा देना वैशेषिक सूत्रों मे धर्म की परिभाषा करते हुए लिखा है जिससे आनन्द (अभ्युदय) व परमानन्द (नि श्रेयस्) की प्राप्ति हो (यतोऽभ्युदयनिश्रेयससिद्धिः स धर्मः) वही धर्म है।

हिन्दू-धर्म का लक्ष्य तथा उसका साधन—प्राय. लक्ष्य सभी धर्मों के एक-से होते हैं किन्तु उन लक्ष्यों की प्राप्ति के साधन विभिन्न होते हैं। इस सासारिक जीवन से मुक्ति सब धर्मावलंबी चाहते हैं, किन्तु उन्होंने उनके साधन अलग-अलग बताये हैं। हिन्दू-धर्म का लक्ष्य हमें आध्यात्मिक वास्तविकताओं को मान्यता दिलाने के प्रति सजग रखना है, परन्तु इसका साधन एकमात्र विरक्ति ही नही बताया है हमारे धर्म ने परलोक सुधारने के निमित्त कर्मों पर विशेष जोर दिया है। हिन्दू-धर्म का लक्ष्य यह भी है कि मानव अच्छे कर्मों द्वारा मोक्षप्राप्ति का प्रयास करे। परन्तु फिर भी हिन्दू-धर्म ने मुक्ति तथा भक्ति को एक दूसरे का विरोधी नहीं समझा है—

श्रुतं बहुविधं धर्मं इहामुत्र सुखप्रदम्।

[illegible]

हिन्दू-धर्म में एक विशेषता यह और रही है कि लक्ष्यप्राप्ति के साधन समय-समय पर परिवर्तित होते रहे हैं। जिस प्रकार मोक्षप्राप्ति का साधन वैदिक काल में धार्मिक क्रियाकाण्ड बनाये गये हैं तो उपनिषदों में ज्ञान-मार्ग को निर्धारित किया है। स्मृतिशास्त्रों में वर्णाश्रम-धर्म का पालन करना ही मुक्ति का परम-साधन बताया गया है जबकि भगवद्गीता में भक्ति-मार्ग को। किन्तु हिन्दू-धर्म का परम उद्देश्य यही है कि जन-साधारण के जीवन में नैतिकता का समावेश कर आध्यात्मिक भावना के द्वारा उन्हें पारलौकिक बनाना।

हिन्दू-धर्म के स्रोत—हिन्दू-धर्म के मूल स्रोत में हैं—वेद, स्मृति धर्मात्मा लोगों का आचरण तथा व्यक्ति का अपना अन्तःकरण। जैसा कि लिखा है—

वेदोऽखिलो धर्ममूलं, स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनां आत्मनस्तुष्टिरेव च ॥

क्या भारतीय और क्या पाश्चात्य विद्वान् वेदों को ही हिन्दू धर्म का मूल मानते हैं और वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ मान लिये गये हैं। इससे स्वभावतः सिद्ध हो जाता है कि हिन्दू धर्म विश्व का सबसे पुराना धर्म है। आज इस धर्म के मानने वाले २५ करोड़ हैं। परन्तु वेदों में धर्म का सुव्यवस्थित वर्णन प्राप्त नहीं होता, उनमें तो केवल आदर्शों व आचरणों की ओर संकेत किया गया है। जिस ढंग से अनुशासित लोग आचरण करते हैं, वह भी धर्म का एक स्रोत है। यह आशा की जाती है कि भले मनुष्यों का व्यवहार शास्त्रों के आदर्शों के अनुसार होता है। अतः उनको आचरण के लिए पथप्रदर्शक माना जाता है। श्रेष्ठ व्यक्तियों के व्यवहार के साथ-साथ 'अच्छे अन्त करण' को भी धर्म का स्रोत माना जाता है। जिस वस्तु को हृदय कहे। समझे उसे धर्म समझकर अंगीकार कर लेना चाहिए। इसी प्रकार जो बात युक्तियुक्त हो उसे स्वीकार करना चाहिए।

हिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्त—भारतीय जन जीवन में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतीयों का आदि धर्म हिन्दू धर्म था। इसे आर्य धर्म भी कहते हैं। इस धर्म के मूल स्रोत हैं—वेद, उपनिषद् स्मृति, पुराण आदि ग्रन्थ तथा धर्मनिष्ठ पुरुषों का आचरण व व्यक्ति का अन्त करण। इन साधनों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि हिन्दू धर्म का क्रमिक विकास हुआ है और इसके रूप, विश्वास तथा उपासना की विधियां समय समय पर बदलती रही हैं। फिर भी इस धर्म के परम उद्देश्य सदा यही रहे हैं कि जन साधारण में नैतिक भावना का प्रसार हो, उनमें आध्यात्मिक अनुभूति हो और वे भौतिक जीवन के [illegible]

पारलौकिक जीवन का भी निर्माण करें। यही कारण है कि हिन्दू धर्म के मौलिक सिद्धान्त सदैव सर्वमान्य रहे हैं। ये सिद्धान्त इस प्रकार हैं।

सर्वशक्तिमान ईश्वर—हिन्दू धर्म ईश्वर को सनातन, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक तथा सर्वज्ञ मानता है। वह जगत का कर्त्ता, भर्त्ता तथा हर्त्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। वह विश्व के सभी प्राणियों में निवास करता है। यही कारण है कि ईश्वर आराधना पर हिन्दुओं ने सदैव बल दिया है।

कर्म सिद्धान्त—हिन्दू धर्म में कर्म सिद्धान्त सदैव मान्य रहा है। उपनिषदों में यह स्पष्ट है कि जैसा मनुष्य इस लोक में करता है उसी के अनुसार वह मृत्यु के पश्चात् फल प्राप्त करता है। इसमें भी सकाम कर्म की अपेक्षा हिन्दू धर्म निष्काम कर्म पर विशेष बल देता है। कर्तव्य ही मनुष्य का लक्ष्य होना चाहिए, फल की भावना नहीं। भगवद्‌गीता में इसी को विस्तार पूर्वक समझाया गया है।

पुनर्जन्म में विश्वास—कर्म की प्रधानता के साथ साथ हिन्दू धर्म में पुनर्जन्म के सिद्धान्त को भी स्वीकार किया गया है। जब तक मानव अपने कर्म बन्धनों से मुक्त होकर परमात्मा में विलीन नहीं हो जाता, वह कर्मानुसार जन्म-मरण के चक्कर में उलझा रहता है।

आत्मा की अमरता—हिन्दू धर्म आत्मा के अस्तित्व तथा अमरत्व में पूर्ण विश्वास रखता है। आत्मा पर माया रूपी आवरण पड़ा होने के कारण ही वह परमात्मा से विलग रहती है, अन्यथा आत्मा और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है।

मोक्ष प्राप्ति—इस धर्म का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है। मोक्ष प्राप्त हो जाने पर व्यक्ति को सांसारिक आवागमन से छुटकारा मिल जाता है और आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती है। मोक्ष प्राप्ति के तीन मार्ग बतलाए गए हैं—ज्ञान, कर्म और भक्ति।

वर्णाश्रम व्यवस्था—मानव जीवन को चार भागों में विभक्त करने वाली आश्रम व्यवस्था का भी हिन्दू धर्म में महत्वपूर्ण स्थान है। जीवन का प्रथम भाग मानव विद्याध्ययन करने के लिए ब्रह्मचर्याश्रम में व्यतीत करता है। इसके पश्चात् वह सांसारिक उत्तरदायित्व निबाहने के लिए गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। तत्पश्चात् समाज सेवा करने के लिए हिन्दू धर्म मनुष्य को वानप्रस्थाश्रम में रहने की सलाह देता है और अन्त में परलोक सुधारने के लिए उसे सन्यासाश्रम में तपस्या करने का निर्देश देता है।

नैतिक गुणों पर बल—सत्य, दया, दान, क्षमा आदि आचार तत्वों पर भी हिन्दू धर्म मे पर्याप्त बल दिया गया है।

तपस्या का महत्व—हिन्दू धर्म मे तप और ब्रह्मचर्य का अत्यधिक महत्व बतलाया गया है। ऋग्वेद का कथन है कि तप से सत्य की उत्पत्ति होती है। उपनिषदों में भी उल्लेख है कि तपस्या द्वारा ही ब्रह्म खोजा जा सकता है तथा ब्रह्मचर्य द्वारा ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

अवतार वाद—हिन्दू धर्म में अवतारवाद का भी उल्लेख है। गीता में कृष्ण भगवान् ने स्वयं कहा है—"जब जब धर्म की हानि होती है तब तब मैं जन्म लेता हूँ"। आरम्भ में ऐसे अवतारों की संख्या दस थी। धीरे धीरे उनकी संख्या चौबीस हो गई। इन अवतारों में राम, कृष्ण और बुद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति हैं।

पाप-पुण्य का महत्व—हिन्दू धर्म में पाप-पुण्य और स्वर्ग-नरक की भी व्याख्या की गई है। पाप कर्म करने वाला नरकगामी होता है और पुण्य कार्य करने वाला स्वर्ग में सुख भोगता है।

हिन्दू धर्म का ऐतिहासिक विकास

ऋग्वैदिक काल—भारतीय संस्कृति में वेदों को अत्यन्त पुरातन साहित्य माना गया है। इन्हें देववाणी की संज्ञा दी गई है। इसलिए वैदिक ऋचाओं को हिन्दू धर्म का मूल स्रोत बताया गया है। आरम्भ में हिन्दू धर्म सरल और बोधगम्य था। आर्य लोग प्राकृतिक शक्तियों की उपासना करते थे। उन प्राकृतिक शक्तियों को वे देवता मानते थे जो उनके दैनिक जीवन में उपयोगी थीं। आकाश, पृथ्वी, सूर्य, वायु, इन्द्र, वरुण आदि उनके प्रारम्भिक देवता थे। वे इन शक्तियों की कृपा प्राप्त करने के लिए स्तुति व भजन किया करते थे इनकी तुष्टि हेतु बड़े उत्साह के साथ यज्ञ करते थे, जिनमें प्रचुर सामग्री और पशु बलि का प्रयोग होता था। अनेक प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करते करते आर्य लोग एक मूल शक्ति में भी विश्वास करने लगे। वह शक्ति थी—ईश्वर अथवा परमात्मा, जिसे उन्होंने कभी प्रजापति और कभी विश्वकर्मा के नाम से प्रख्यात किया। प्रकृति की अन्य शक्तियों को इसी का अभिव्यक्त रूप माना गया। अत: ऋग्वैदिककाल में भी एकेश्वरवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन हो गया था।

इस प्रकार ऋग्वैदिक काल में हिन्दू धर्म के निम्न लिखित सिद्धान्त प्रचलित थे—

(१) परमात्मा, जीवात्मा तथा प्रकृति सनातन एवं नित्य है।

(२) परमात्मा सर्वशक्तिमान, अजन्मा, अनादि, सर्वव्यापक तथा सर्वज्ञ है।

(३) जीव और प्रकृति अनादि है।

(४) समस्त संसार का रचयिता एक है और वह भिन्न भिन्न रूपों मे अपने को अभिव्यक्त करता है।

(५) कर्म सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य को अपने पूर्वजन्म में किए हुए कर्मों का फल भोगने के लिए इस संसार में बार बार आना पड़ता है। इसको आवागमन कहते हैं।

(६) हिन्दू धर्म के अनुसार सच्चा एवं स्थायी सुख मोक्ष प्राप्ति ही है।

(७) वैदिक काल मे यज्ञ तथा कर्मकाण्ड पर विशेष जोर दिया गया था।

उत्तर वैदिक काल—वैदिकधर्म की यह सरलता व श्रेष्ठता कालान्तर मे विलीन हो गई और उसका स्थान आडम्बर और कर्मकाण्ड ने ले लिया। यज्ञो मे पशु बलि अधिक होने लगी और समाज पर पुरोहित वर्ग का अत्यधिक प्रभाव बढ़ गया। वैदिक धर्म कर्मकाण्ड प्रधान हो गया और शास्त्रों की महत्ता इनकी पुष्टि मात्र के लिए रह गई। हिंसा प्रधान यज्ञ व ब्राह्मण धर्म के प्रति लोगों को अरुचि होने लगी। फलतः कई ऋषियों ने सत्य की खोज करने के लिए जगलों मे अपने आश्रम बना लिए और वे वहा पर तपसाधना तथा सयम पूर्वक ईश्वर का चिन्तन करने लगे। उन्होने ईश्वर, जीव और प्रकृति के निरवत्व पर विचार किया और उपनिषद् नामक ग्रन्थों में ज्ञानमार्ग का प्रतिपादन किया। उपनिषद ससार के सर्वोत्कृष्ट दार्शनिक ग्रन्थ गिने जाते हैं। हमारे देश में इतने प्राचीन समय मे ऐसे गम्भीर दर्शन ग्रन्थों का निर्माण हुआ, यह प्रत्येक भारतीय के लिए गौरव का विषय है।

उपनिषदों मे बताया गया है कि इस सृष्टि की रचना किसी अक्षय तत्व से हुई है। उसी तत्व को ब्रह्म का नाम दिया गया। इस जगत मे ब्रह्म ही स्थायी सत्य है, शेष सब असत्य और अस्थायी हैं। ब्रह्म ही सृष्टि का सृष्टा, पालन कर्त्ता तथा संहार करने वाला है। आत्मा ब्रह्म की ही ज्योति है लेकिन अज्ञान व मोह के कारण वह जन्म व मृत्यु के चक्र मे घूमती रहती है। मनुष्य को जब इस अज्ञान से छुटकारा मिल जाता है, तब वह अपने स्वरूप का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर लेता है, और आवागमन से मुक्त होकर मोक्ष के आनन्द को प्राप्त करता है। मोक्ष प्राप्ति ही मानव का अन्तिम लक्ष्य है। उपनिषद मानव को ज्ञान व नैतिक आचरण के द्वारा मुक्ति प्राप्ति का उपाय बताते हैं। उन्होंने कर्मकाण्ड को गौण स्थान दिया है। यज्ञ तथा बाह्य आडम्बरों से मनुष्य उस परम तत्व की प्राप्ति मे सफल नहीं हो सकता।

प्रतिक्रिया-उपनिषदों का ज्ञान मार्ग अत्यन्त जटिल व गूढ़ था। साधारण मानव के लिए इन दार्शनिक गुत्थियों को समझना अत्यन्त दुष्कर कार्य था। अतः उपनिषदों का ज्ञान दार्शनिक विवेचना करने वाले मनीषियों तक ही सीमित रहा। जन साधारण को जीवन-निर्माण के लिए सरल व सुगम साधन की आवश्यकता थी। अतएव विचारक लोग एक सुबोध और सरल धर्म की खोज में थे। फलतः *जैन व बौद्धमतों का उदय हुआ। बौद्ध धर्म का वर्णन आगे अलग किया जावेगा,* यहां पर केवल इतना ही पर्याप्त होगा कि जैन व बौद्ध धर्म के आचार्यों ने पवित्र आचरण पर अधिक बल दिया। उन्होंने सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि के पालन का उपदेश दिया। बुद्ध और महावीर ने अपने सरल उपदेशों के द्वारा देश में नव जीवन का सचार कर दिया। भारत में सर्वत्र उनका सम्मान होने लगा और अत्यधिक सख्या में लोग उनके अनुयायी बन गए और हिन्दू धर्म के प्रति लोगों को अरुचि होने लगी।

शंकराचार्य और हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान :—कुछ सदियों पश्चात् हिन्दू जनता में एक नवीन चेतना का संचार हुआ और कुमारिल भट्ट तथा स्वामी शंकराचार्य ने हिन्दू धर्म की रक्षा की। शंकराचार्य का नाम भारतीय इतिहास में एक महान् दार्शनिक के रूप में अमर है। उनका जन्म केरल देश में सन् ७८८ ई० मे हुआ था। युवावस्था मे ही उन्होंने समस्त देश मे भ्रमण कर पुनः हिन्दू धर्म की महत्ता स्थापित की तथा अन्य धर्मावलम्बी आचार्यों से शास्त्रार्थ कर हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध की। साथ ही उन्होंने हिन्दू धर्म के संगठन हेतु चार महान् मठों की स्थापना भी की। उत्तर में बद्रीनारायण का मठ, पूर्व मे जगन्नाथपुरी का मठ, पश्चिम में द्वारका और दक्षिण मे श्रृंगेरी का मठ आज *भी शंकराचार्य के कठिन परिश्रम के जीते जागते प्रमाण के रूप में विद्यमान हैं।*

शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रचार किया और वेदान्त सूत्र पर अपना भाष्य लिखा। शंकराचार्य ने भ्रम का कारण मिथ्या ज्ञान बताया। उनके मतानुसार ससार में ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई सत्ता नहीं है और मिथ्या ज्ञान के कारण ही जीव ब्रह्म से भिन्न दिखाई देता है। माया (मिथ्या ज्ञान) के कारण ही एक सत्य अनेक रूपों में दिखाई देता है। वास्तव मे सर्वत्र ब्रह्म ही है और इसी अद्वैतवाद की पुष्टि उन्होंने गीता, उपनिषद और वेदान्त की व्याख्या करते समय की। शंकराचार्य के भाष्य बहुत प्रमाणिक और व्याख्यात्मक हैं। उन्होंने कर्मकाण्ड का विरोध किया और मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान मार्ग का प्रतिपादन किया। शंकराचार्य ने भक्ति को केवल एक साधन के रूप में ही माना, उन्होंने देवी देवताओं की उपासना, बलि

तथा मन्त्र-यन्त्र की निन्दा की और ब्रह्म सत्य जग मिथ्या के अनुसार केवल ब्रह्म की ही सत्ता को स्वीकार किया।

1967 **भक्ति परम्परा का उदय**—शंकराचार्य ने जिस शुद्धाद्वैतवाद का प्रचार किया वह जन साधारण की समझ में आना कठिन था। साकार उपासना के प्रेमी इससे सन्तुष्ट नहीं हुए। फलस्वरूप मध्यकालीन भारत में रामानुज, माध्वाचार्य, रामानन्द, वल्लभाचार्य, चैतन्य, कबीर, नानक, दादू मीरा आदि अनेक सन्तों का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने शंकराचार्य के शुष्क अद्वैतवाद व क्लिष्ट ज्ञान मार्ग के स्थान पर भक्ति मार्ग और सगुण उपासना पर जोर दिया। उन्होंने सरल सुबोध भाषा के माध्यम से नृत्य, कीर्तन और भजन को ईश्वर के दर्शन करने का मार्ग बताया। ज्ञान के स्थान पर प्रेम और भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया। इसके कारण हिन्दू जाति के हताश हृदय में सरसता और आशा का संचार हुआ। इस काल में राम और कृष्ण की भक्ति का प्रचार हुआ और सगुणोपासना की वृद्धि हुई।

पुनर्जागरण—पाश्चात्य विज्ञान, साहित्य तथा संस्थाओं के सम्पर्क के कारण भारत में नवीन विचारों का जन्म हुआ। हिन्दू धर्म भी इस प्रभाव से बच नहीं सका। उसमें फैले मूर्तिपूजा, बहुदेववाद, बाह्य आडम्बर, कर्मकाण्ड, जातीयता आदि दोषों के विरुद्ध एक प्रबल आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, तथा अनेकानेक धार्मिक सम्प्रदायों का उदय हुआ। इनमें आर्य समाज का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दू धर्म में उत्पन्न विकृतियों को दूर करने का सफल प्रयत्न किया। उन्होंने हिन्दुत्व के प्रच्छन्न रत्नों को साफ कर उनके गौरव को पुनः स्थापित किया।

हिन्दू धर्म की समीक्षा—इस प्रकार हिन्दू धर्म अबाधगति से सम्पूर्ण भारत में व्याप्त हो गया। इस धर्म की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं:—

(१) ईश्वर की सत्ता में विश्वास
(२) आध्यात्मिकता पर बल
(३) धार्मिक सहिष्णुता
(४) ज्ञान, भक्ति व कर्म की प्रधानता
(५) पुनर्जन्म व कर्म सिद्धान्त
(६) अवतारवाद व मूर्ति पूजा में विश्वास

यह धर्म संसार का अति प्राचीन धर्म है। वैदिक तथा पौराणिक धर्म की मान्यताएं इस धर्म की आधार शिला है। समय पर धर्माचार्यों, सुधारकों व

विचारकों ने इसको नवीन गति व बल प्रदान किया। आज भारत में हिन्दू धर्म के अनुयायी सर्वाधिक संख्या में पाये जाते हैं।

बौद्ध धर्म

ऊपर यह संकेत किया जा चुका है कि उत्तर वैदिक काल में यज्ञ प्रधान हिन्दू धर्म में अनेक दोष आ गए थे। समाज में अन्ध विश्वास का बोलबाला था और एक परमेश्वर के स्थान पर अनेक देवी देवताओं की पूजा होने लगी थी। समाज में जातियां व उपजातियां बढ़ती जा रही थीं और धर्म पर पुरोहितों का एकाधिकार था। ऐसी विकृत परिस्थिति में भगवान् गौतम बुद्ध ने धर्म के सच्चे स्वरूप को पुनः प्रकट कर सारे संसार का मार्ग आलोकित किया। बुद्ध द्वारा प्रचलित धर्म बौद्ध धर्म था। वास्तव में यह एक नवीन धर्म नहीं, वैदिक धर्म का ही परिष्कृत रूप था। इसलिए उसे प्रोटेस्टेन्ट हिन्दू धर्म कहते हैं।

बुद्ध की जीवन गाथा—छठी शताब्दी ई० पू० उत्तरी भारत में अनेक छोटे-छोटे राजतन्त्र व राज्य थे। इन गणराज्यों में 'कपिलवस्तु' के शाक्यगण-राज्य' का भी नाम है। इसी शाक्य गणराज्य में महात्मा 'गौतम बुद्ध' का जन्म हुआ था। महात्मा बुद्ध के पिता शुद्धोदन शाक्यों के प्रधान थे। इनकी माता का नाम 'मायादेवी' था। प्रसव काल के निकट आने पर मायादेवी अपने मायके जा रही थी। रास्ते में ही लुम्बिनी वन में भगवान बुद्ध का जन्म हो गया। अभाग्यवश गौतम के जन्म के सात दिन बाद ही उनकी माता का देहान्त हो गया। अतः उनके पालनपोषण का भार उनकी विमाता प्रजापति गौतमी पर पड़ा।

गौतम बुद्ध बाल्यकाल से ही मननशील व एकान्त प्रेमी थे। राजा शुद्धोदन गौतम की इस प्रवृति से चिन्तित हुए। इस प्रवृत्ति से गौतम को छुड़ाने के लिये उनका विवाह एक अनुपम सुन्दरी यशोधरा के साथ कर दिया गया। उनके लिए सभी प्रकार की विलासमय वस्तुओं का प्रबन्ध किया गया, किन्तु इन सबका उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह पूर्ववत् गहरे विचारों में सदैव निमग्न रहने लगे। एक दिन गौतम रथ में बैठ कर उपवन की तरफ जा रहे थे। मार्ग में एक दुर्बल, क्षीण लकुटी के सहारे चलते हुए वृद्ध व्यक्ति को उन्होंने देखा। राजकुमार को इससे बड़ा दुःख हुआ और सोचने लगे कि युवा अवस्था तो क्षणिक है, प्रत्येक व्यक्ति की वृद्धावस्था में दुर्दशा होना निश्चित है। इसी प्रकार रोगी और मृत शरीर को देख कर उन्हें संसार के प्रति निराशा उत्पन्न हुई। एक बार उन्होंने सन्यासी को देखा जो शान्त, प्रसन्न चित्त, नम्र और कान्तियुक्त था। उन्हे अपने सारथी से पता चला

अनात्मवाद:—बुद्ध अनात्मवादी थे । उनकी दृष्टि में आत्मा जैसी कोई
स्तु नहीं थी ।

नैतिक आचरण पर बल.—बुद्ध को दार्शनिक समस्याओं में उलझना
। था । ईश्वर के अस्तित्व, सृष्टि के कर्त्ता तथा उनके स्वरूप आदि के सम्बन्ध
ने कोई विचार व्यक्त नहीं किये । उन्होंने तो जीवन पर्यन्त नैतिक आचरण
दिया । मन, वाणी और कर्म से पवित्र रहने के लिए उपदेश दिया । उनका
। कि अहिंसा का पालन करो, सत्य बोलो, चोरी न करो, संग्रह का त्याग
ह्मचर्य का पालन करो, और विलासमय वस्तुओं से परे रहो ।

आर्य सत्य —बुद्ध की शिक्षा के चार मौलिक सिद्धान्त हैं ।

(क) दुनियाँ दुःखों की नगरी है ।
(ख) दुःख का कारण वासनाएं है ।
(ग) वासनाओं का निराकरण दुःख का निराकरण है ।
(घ) दुःखों का निरोध अष्टांगिक मार्ग से किया जा सकता है ।

अष्टांगिक मार्ग—अष्टांगिक मार्ग में निम्न आठ नयम सम्मिलित हैं:-

(१) सम्ययक् दृष्टि [शुद्ध विश्वास]
(२) सम्यक् संकल्प [शुद्ध भाव]
(३) सम्यक् वाक् [शुद्ध वचन]
(४) सम्यक् कर्मान्त [शुद्ध कर्म व्यवहार]
(५) सम्यक् आजीव [शुद्ध आजिवका]
(६) सम्यक् व्यायाम [शुद्ध श्रम या प्रयत्न]
(७) सम्यक् स्मृति [शुद्ध विचार]
(८) सम्यक् समाधि [शुद्ध ध्यान]

रोक्त नियमों के पालन करने से मनुष्य निर्वाण की प्राप्ति कर सकता है ।
स्थिति से मन द्वारा अविद्या रूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है और

जाति प्रथा का विरोध:—बुद्धजी ने जाति प्रथा का घोर विरोध किया। सभी मनुष्य युवा और वृद्ध, अमीर और गरीब, उच्च तथा निम्न, बिना जाति-पाँति के भेद भाव के सदाचारमय जीवन बिता कर निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं।

त्रिरत्नों का महत्व:—बौद्ध धर्म मे बुद्ध, धर्म और संघ का बहुत महत्व है। ये तीनों शब्द बौद्ध धर्म के संस्थापक, उनके सिद्धान्त और संगठन की महत्ता के परिचायक हैं। अतः इनमे विश्वास रखना प्रत्येक बौद्ध अनुयायी के लिये परम आवश्यक है।

बौद्ध धर्म का विकास

महात्मा बुद्ध स्वयं जीवन पर्यन्त धर्म प्रचार के लिये मध्य देश में भ्रमण करते रहे। उनके महानिर्वाण के समय यह धर्म मगध, कौशल काशी आदि राष्ट्रों में तथा शाक्य, वज्जी, मल्ल आदि गणराज्यों में फैल चुका था। महात्मा बुद्ध के देहान्त के तुरन्त बाद ही राजगृह में प्रथम बौद्ध संगीति का आयोजन हुआ। १०० वर्ष बाद दूसरी संगीति की बैठक वैशाली मे हुई। इन संगीतियों के फल स्वरूप बौद्ध धर्म का प्रचार दूर दूर होने लगा।

बौद्ध धर्म का विकास सम्राट् अशोक के काल में तीव्र गति से हुआ। अशोक के सद् प्रयत्नों से यह धर्म सम्पूर्ण भारत में फैल गया और भारत के बाहर लंका, भूटान, ब्रह्मा, तथा यवन देशो में भी इस धर्म का प्रचार हुआ। अशोक ने तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन पाटलिपुत्र मे किया। अशोक के बाद सम्राट् कनिष्क और हर्षवर्धन ने भी इस धर्म को प्रोत्साहन दिया। अब यह धर्म मध्य एशिया, चीन, कोरिया और जापान तक पहुंच गया। कनिष्क के समय में बौद्ध धर्म दो सम्प्रदायों में विभाजित हो गया। ये सम्प्रदाय हीनयान और महायान हैं। महायान धर्म का विदेशों मे अधिक प्रचार हुआ।

हीनयान और महायान:—प्रारम्भिक बौद्ध धर्म अनीश्वरवादी, मठ प्रधान और कठोर आचरण पर आधारित था। उसके कठोर नियमों का पालन साधारण व्यक्ति नहीं कर सकता था। अतः नियमों में सरलता लाना आवश्यक था। फलतः महायान सम्प्रदाय का उदय हुआ।

हीनयान और महायान सम्प्रदायों में भारी अन्तर है। हीनयान मे बुद्ध को गुरु व पथ प्रदर्शक माना जाता था। महायान मे उन्हें ईश्वर का रूप दिया गया, उनकी मूर्तियां बनने लगी और वे अवतारों की भांति पूजे जाने लगे। बुद्ध के साथ

अनेक बोधिसत्वों तथा अन्य देवी देवीताओं की कल्पना और पूजा होने लगी। ज्ञान के उच्च सिद्धान्त के स्थान पर भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। हीनयान व्यक्तिगत प्रयत्न और अच्छे कर्मों पर जोर देता था, परन्तु महायान धर्म श्रद्धा और भक्ति पर जोर देने लगा। इस प्रकार अब तर्क का स्थान श्रद्धा ने ले लिया। हीनयान धर्म के ग्रन्थ पाली भाषा में रचे गये थे। महायान ग्रन्थों की रचना संस्कृत भाषा में होने लगी। हीनयान शाखा के अनुयायियों से महायान मतावलम्बियों की संख्या अधिक थी।

बौद्ध धर्म की उन्नति के कारण

(१) **सिद्धान्तों की सरलता**—बौद्ध धर्म के सिद्धान्त अत्यन्त सरल व व्यवहारिक थे। बुद्धजी ने सरल और स्पष्ट शब्दों में समझाया कि मानव जीवन दुख:मय है और इसका कारण वासनाएँ है। इन पर विजय प्राप्त करना ही दुःख का अन्त है। यह मूल बात सर्वसाधारण बिना कठिनाई के समझ सका।

(२) **अनुकूल सामाजिक स्थिति**—बौद्ध धर्म के अभ्युदय के समय भारतीय समाज की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। यज्ञों मे बलि दीजाती थी, कर्म काण्ड जटिल थे, ब्राह्मणो में आडम्बर था, शूद्रों पर अत्याचार होते थे और जाति-भेद का बोल बाला था। बुद्धजी ने इन्ही के विरुद्ध आन्दोलन किया। समाज ने बुद्धजी की शिक्षाओं का स्वागत किया और उन्हें हृदयगम किया।

(३) **जाति प्रथा का विरोधी और समानता की भावना**—बुद्धजी के धर्म का द्वार प्रत्येक व्यक्ति के लिये खुला हुआ था। संघ मे जाति–पाँति अथवा ऊँच–नीच का भेद-भाव बिल्कुल न था। शूद्रों व अछूतों के लिये यह बहुत बड़ा आकर्षण था।

(४) **लोक भाषा का प्रयोग**—सस्कृत भाषा के स्थान पर बुद्धजी ने बोल-चाल की भाषा में उपदेश दिये। उन्होने जनता की भाषा द्वारा जनता तक अपने उपदेश पहुंचाने का प्रयास किया। इससे बौद्ध धर्म की शीघ्र उन्नति हुई।

(५) **प्रचार शैली की रोचकता**—बुद्धजी ने लोक भाषा के साथ रोचक शैली का भी प्रयोग किया। उन्होंने कथाओं और मनोरजक दृष्टान्तों का प्रचुर प्रयोग किया। उनकी इस शैली ने भी जनता को बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित किया।

(६) **महान व्यक्तियों द्वारा सहायता**—अशोक, कनिष्क और हर्ष ने महान सम्राटों ने इस धर्म की महान सेवा की। उन्होंने विहार बनवाये, बौद्ध

सहायता दी, एवं इस धर्म को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रत्येक
प्रदान किया।

जी का प्रभावशाली व्यक्तित्व—बुद्धजी के व्यक्तित्व और चरित्र
था। वे त्याग की एक दिव्य मूर्ति थे। समाज में उनका
जनता ने उनके धर्म का स्वागत किया।

धर्म में युग एवं आवश्यकता के अनुकूल
महान् गुण था। अपनी इस विशेषता के कारण यह धर्म
।

संगीतियों का प्रभाव—बौद्ध संगीतियों से धर्म के प्रचार और
बड़ी सहायता मिली। बौद्ध भिक्षु त्याग, सहिष्णुता और
ही थे। उन्होंने हर संगीति के बाद उत्साह व प्रेरणा के साथ
दिया।

धर्म की शिक्षण संस्थाएं—बौद्ध धर्म के प्रचार में बौद्ध
सक्रिय योगदान दिया। इस कार्य में तक्षशिला, महाबोधि,
ने सराहनीय भाग अदा किया।

से बौद्ध धर्म सम्पूर्ण भारत में फैल गया। धीरे २ भारत
को पार कर उसने शीघ्र विश्व धर्म का रूप धारण कर
धर्म के अनुयायियों की संख्या अधिक है, परन्तु आश्चर्य की
पर यह धर्म उत्पन्न हुआ वहां से पूर्ण रूपेण लुप्त हो
के पतन के कारण निम्नलिखित थे —

पतन के कारण

के आश्रय का अन्त—मौर्यों तथा कुषाणों के बाद बौद्ध
संरक्षण प्राप्त न हो सका। गुप्त नरेश ब्राह्मण धर्म के
ब्राह्मण धर्म को पुनः आयत किया और उसे संरक्षण प्रदान
बौद्ध धर्म से दूर होने लगी।

धर्म का पुनरुत्थान—मौर्यों के पतन के बाद हिन्दू धर्म की
। शुंग, कण्व व गुप्त शासकों ने वैदिक यज्ञों का आयोजन
ब्राह्मणों को मान्यता प्रदान की। वे शिव, विष्णु, वाराह,

बौद्ध धर्म की देन:—बौद्ध धर्म की सबसे प्रमुख देन कला क्षेत्र मे है। मूर्तिकला और शिल्पकलाओं का तो उद्भव ही प्रायः बौद्धधर्म के द्वारा हुआ। ईसा की छटी शताब्दी तक भारत की सबसे उत्तम कला बौद्धकला ही रही है। चीन, जापान, लका, बर्मा तथा स्याम और बो दूर का स्तूप, तिब्बत तथा नेपाल की धार्मिक कला, सबमे बौद्धकला का सर्वोच्च स्थान है।

साहित्य सृजन मे भी बौद्धधर्म की महत्वपूर्ण देन है। इनका सम्पूर्ण साहित्य प्रचुर और विशाल है। इस धर्म के उदय होने से भारत मे एक नवीन दार्शनिक साहित्य का सृजन हुआ। इनके दार्शनिक सिद्धान्तों व विचारो का खण्डन करने के लिए अन्य दार्शनिको जैसे शकराचार्य आदि ने अपना दर्शन प्रस्तुत किया। बौद्ध धर्म के कारण विदेशों मे भारतीय सस्कृति का प्रचार हुआ। ब्राह्मणो ने बौद्ध धर्म की बहुत सी श्रेष्ट बातो को ग्रहण कर लिया और अपने धर्म में अनेक सुधार किये। बौद्ध संघो की स्थापना भगवान् बुद्ध ने की और धार्मिक सघ इनकी अपनी विशिष्ठ देन है।

जैनधर्म

डॉ. ईश्वरीप्रसाद का कथन है "जैन तथा बौद्धधर्म भारतीय धर्माकाश मे कोई नवीन ग्रह के रूप मे प्रकट नही हुए वरन भिन्न भिक्षुवर्गो मे से ही दो वर्ग थे, यद्यपि प्रभाव दूसरो की अपेक्षा विशेष महत्वपूर्ण तथा स्थायी हुआ था।" जैन धर्म के वास्तविक प्रवर्तक महावीर स्वामी थे। वे जैनियो के २४वें और अन्तिम तीर्थङ्कर थे। ये गौतम बुद्ध के समकालीन थे। इन्होने सत्य, अहिंसा और सद्व्यवहार की शिक्षा दी। जैन मतावलम्बियों के अनुसार उनके धर्म का प्रारम्भ बौद्धकाल में महावीर स्वामी द्वारा नही हुआ था। उन लोगों के विचार मे सृष्टि के समान उनका धर्म भी अनादि है। महावीर स्वामी के प्रादुर्भाव से २५० वर्ष पूर्व तीर्थङ्कर पार्श्व का समय है। तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ के अनुयायी बौद्ध काल की धार्मिक सुधारणा मे विद्यमान थे। पार्श्वनाथ के मत के अनुसार न भिक्षु के लिये चार व्रत लेना आवश्यक है। (१) मैं जीवित प्राणियोंकी हिंसा नहीं करूंगा (२) मैं सदा सत्य भाषण करूंगा (३) मैं चोरी नही करूंगा (४) मैं कोई सम्पत्ति नही रखूंगा। पार्श्व द्वारा प्रतिपादित इन चार व्रतों के साथ महावीर ने एक व्रत और बढा दिया और वह था—मैं ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा।

महावीर का जन्म का नाम वर्धमान था और वज्जिराज्य-सघ के अन्तर्गत ज्ञानृक गण में राजा सिद्धार्थ तथा रानी त्रिशला के ये पुत्र थे। यद्यपि महावीर का

प्रारम्भिक जीवन साधारण गृहस्थ के समान व्यतीत हुआ, पर उनकी प्रवृत्ति सांसारि जीवन की ओर नहीं थी। वे 'प्रेममार्ग' छोड़कर 'श्रेय' मार्ग की ओर जा चहते थे।

तीस वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु के अनन्तर उन्होंने सांसारिक जीव को त्याग कर भिक्षु बनना निश्चित किया। उन्होंने भिक्षु बनते समय जो वस्त्र पह थे वे, तेरह मास बाद बिलकुल जर्जरित हो गये और फिर उन्होंने वस्त्र धारण न किया। तीस वर्षों तक उन्होंने कौशल, मगध तथा सुदूर पूर्व में धर्म का उपदेश किय और पावा में (पटना) मृत्यु को प्राप्त हुऐ। यह घटना सम्भवतः ४६० ई०पू० की है

जैनधर्म के अनुसार मानव जीवन का उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है। मोक्ष प्राप्ति के लिए यह जीवन के तीन सिद्धान्तों पर बल देता है सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्श तथा सम्यक् चरित्र।

ऊपर लिखे अनुसार पाँच अणुव्रत भी निर्धारित किये गये हैं—सत्याणुव्रत (सत्य बोलना), अचौर्याणुव्रत, (चोरी न करना), ब्रह्मचर्याणुव्रत, परिग्रह परमाणुव्रत तथा अहिंसाणुव्रत। अहिंसा पर इस धर्म में अत्यधिक बल दिया गया है। महावीर स्वामी का कहना था कि सद्‌जीवन व्यतीत करने से प्रत्येक जीवात्मा जन्म मरण से छूट सकता है।

बौद्ध व जैन, दोनों धर्म छठी व सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व सामान्य धार्मिक तथा अध्यात्मिक चेतना के प्रतिफल थे। उनमें अनेक समान बातें दृष्टिगोचर होती हैं। दोनों ने वैदिक कर्म कांड, जाति भेद तथा ब्राह्मणों की सामाजिक श्रेष्ठता का विरोध किया और वेदों को अपौरुषय न मानते हुए अहिंसा पर बल दिया। दोनों ने ईश्वर के प्रति उदासीनता अपनायी और सन्यास की महत्ता बतलाई। पुनर्जन्म तथा मोक्ष को दोनों मानते थे। इन लोगों ने भी कुछ मिलती जुलती पौराणिक कथाओं की सृष्टि की। डा० आर सी० मजूमदार की मान्यता है कि जैन और बौद्ध सम्प्रदायों में मूर्ति के प्रभाव को स्वीकार कर लेना इस तथ्य का द्योतक है कि ये दोनों साम्प्रदाय अनार्य विचारधारा से प्रभावित थे।

इन दोनों धर्मों में अनेक विषमताएं भी हैं। बौद्धधर्म निर्वाण प्राप्ति के लिये मध्यम पथ की आवश्यकता बतलाता है, किन्तु जैन धर्म में उपवास, उग्रतपस्या, तथा प्राण-त्याग आदि कठिन कर्मों को मोक्ष प्राप्ति का साधन बतलाते हैं। जैन धर्मावलम्बी अहिंसा पर बौद्धों से अधिक बल देते हैं। बौद्ध लोग अनात्मवादी है जब जैन प्रत्येक जीव में आत्मा का निवास मानते हैं। बौद्धों का दृष्टिकोण प्रारम्भ से

(ङ) हिन्दू धर्म का ऐतिहासिक विकास (च) शकराचार्य
(छ) महायान तथा हीनयान (ज) बुद्ध की शिक्षाएं
(झ) जैन धर्म की शिक्षाएं (ञ) महावीर स्वामी
(ट) बुद्ध तथा जैन धर्म की तुलना।

Objective type Test

Answer in not more than three lines or in 'Yes' or 'No' when required :—

(a) Definition of Religion according to Mahatma Gandhi or Dr. Radhakrishnan.
(b) Do you think Vedas are the only sources of Hindu religion ?
(c) The theory of 'Karma'.
(d) The theory of 'Moksha'.
(e) Brahma.
(f) Shankaracharya was the protector of Hindu Religion. 'Yes' or 'No'.
(g) Hindus do not believe in transmigration of sole. 'Yes or 'No'.
(h) Budhism was not a new religion. 'Yes' or 'No'
(i) Budhism was a branch of Hindu religion. 'Yes' or 'No'
(j) Jainism existed long before Hindu religion.

नई शैली के प्रश्न—

निम्नलिखित का उत्तर दीजिए। तीन पंक्तियों से अधिक में नही। तथा जहां 'हाँ' अथवा 'ना' की आवश्यकता हो वहां वैसा उत्तर दें।

(क) महात्मा गांधी अथवा डा० राधाकृष्णन् के अनुसार धर्म की क्या परिभाषा है ?
(ख) आपके विचार में क्या केवल 'वेद' ही हिन्दू धर्म के स्रोत हैं ?
(ग) 'कर्मवाद' का सिद्धान्त
(घ) 'मोक्ष' का सिद्धान्त
(ङ) 'ब्रह्म'
(च) शकराचार्य हिन्दू धर्म के रक्षक थे—'हां' अथवा ना
(छ) हिन्दू पुनर्जन्म मे विश्वास नही करते हैं- 'हां' अथवा 'ना'
(ज) बुद्ध धर्म कोई नया धर्म नही था। 'हां' अथवा 'ना'
(झ) बुद्ध धर्म हिन्दू धर्म की ही एक शाखा था। 'हां' अथवा 'ना'
(ञ) जैन धर्म हिन्दू धर्म से बहुत पहले विद्यमान था। 'हां' अथवा 'ना'

अध्याय ३

मध्यकालीन भारत में सांस्कृतिक समन्वय

(Cultural Sythesis during the Medieval Period).

मध्यकालीन भारत में इतिहासकार सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से सोलहवी शताब्दी के दूसरे शतक तक के काल को मानते हैं, अर्थात् सन् ६५० ई० से लेकर सन् १५१५ ई० तक का काल भारत के इतिहास में मध्यकाल के नाम से जाना जाता है। इस लम्बे समय का विभाजन पुनः दो काल मे किया जाता है—एक पूर्व मध्य काल और दूसरा मध्यकाल। भारतीय इतिहास के पूर्व मध्यकाल से अभिप्राय सातवी शताब्दी से बारहवी शताब्दी ई० तक का है। इस काल की विशेषता यह थी कि भारत अनेक छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों में विभाजित था और ये स्वतन्त्र राज्य राजपूत शासकों के अधीन थे। अतः यह काल राजपूत काल के नाम से भी प्रसिद्ध है। यद्यपि इस काल में राजनैतिक क्षेत्र मे पर्याप्त उथल-पुथल हुई तथापि राजनैतिक इतिहास की अपेक्षा इस युग का सांस्कृतिक इतिहास अधिक महत्व रखता है। इस काल में साहित्यिक तथा कलात्मक क्षेत्र मे जो अभूतपूर्व प्रगति हुई उसका न केवल भारतीय इतिहास में अपितु ससार के इतिहास मे भी ऊंचा स्थान है।

दूसरा काल ग्यारहवीं शताब्दी से सोलहवी शताब्दी के प्रारम्भ तक अर्थात् १५२६ ई० तक माना जाता है। इस काल में भारत का शासन तुर्कों के हाथ में आ गया था। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने "भारत की खोज" में लिखा है कि तुर्क आक्रमण के समय विदेशी थे, परन्तु जब उन्होंने भारत मे शासन करना आरम्भ कर दिया तो वे अपने को जड़ से भारतीय समझने लगे और भारत के अतिरिक्त अन्य देशों को उन्होंने विदेशी समझा। इसी प्रकार भारतवासियों ने मुसलमानो को आरंभ में विदेशी आक्रमणकारी समझा, परन्तु जब वे उनको भारत से निकालने में असमर्थ रहे तो उनके निष्ठुर तथा दुराचारी होते हुए भी उनको अपना पड़ोसी समझने लगे। इस प्रकार जब लगभग तीन सौ वर्ष तक भारत मुसलमानों द्वारा शासित होता रहा तो भारतवासियों तथा मुसलमानो के जीवन मे आपसी रहन-सहन तथा आचार-विचार मे समन्वय होना स्वाभाविक था। प्रो० मार्शल का कहना है कि—'मानवता के इतिहास मे दो व्यापक और समुन्नत किन्तु भिन्न सभ्यताओं के परस्पर मेल का ऐसा दृश्य कहीं नहीं मिलता।"

इन दोनों काल के, जो मध्य युग के अन्तर्गत आते हैं, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन का हम यहाँ क्रमशः अध्ययन करेंगे।

राजनैतिक जीवन:—समस्त भारत सातवीं शताब्दी से बारहवीं शता
तक अनेक छोटे छोटे प्रान्तों में बँटा हुआ था । महाराज हर्षवर्धन की मृत्यु
उपरान्त राजनैतिक एकता का आदर्श प्रायः लुप्त होने लगा था । छोटे छोटे प्रा
में स्थानीयता तथा वंश का आदर्श बल पा रहा था और इसका परिणाम विदेशि
के आक्रमण के रूप में सामने आया । किसी प्रान्तीय राज्य में उस आक्रमण
सामना करने की शक्ति नहीं थी । फलतः देश को अपनी स्वतन्त्रता से हाथ धो
पड़ा । कुछ राज्यों के प्रयत्न करने पर भी भारत एक राजनैतिक सूत्र में न
बंध सका । अतः राजनैतिक शक्ति का ह्रास हुआ । चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य
गणतान्त्रिक व्यवस्था को गणों का नाश कर समाप्त कर दिया । अतः राजनैतिक चेत
का भी लोप हो गया और राज्य एकतान्त्रिक होने के साथ साथ ही निरकुश भी
गये । ग्राम पचायतें केवल स्थानीय व्यवस्था से ही सम्बन्ध रखती थीं । अतः जन
अब राज–भक्त चाटुकारिता आदि दुर्गुणों को आदर्श मानकर चलने लगी ।
सांघिक शक्ति का भी अभाव हो गया और प्रान्तीय राज्य आपस मे संघर्ष करते रहे
सैनिक संगठन भी पुरानी लकीर पीटता रहा । सख्या में अधिक होते हुए भी भारत
सेना विदेशी सेनाओं का सामना करने में असमर्थ रही ।

ग्राम मे शासन का पूर्णाधिकार ग्राम सभा को था । शासन विभिन्न कार्य
लिए निर्मित विभिन्न समितियो के द्वारा होता था । इन समितियों के सदस्यों
चयन बड़े सुव्यवस्थित तरीके से किया जाता था । ग्राम सभा राजकीय कर वसू
करती थी, शिक्षा का प्रबन्ध करती थी, ग्राम की रक्षा करती थी, मड़ी की व बाज़
की व्यवस्था, ग्रामीणो के हित के कार्य आदि समस्त कर्तव्य भी ग्राम सभा के ही थे

बारहवीं शताब्दी के उपरान्त का मध्यकालीन भारत हमें भिन्न चित्र देता
जैसा कि ऊपर हम देख चुके हैं, भारतवर्ष की राजनैतिक एकता तो हर्षवर्धन की मृ
के उपरान्त ही समाप्त हो गई थी और जो कुछ राजपूत कालीन राजनैतिक जीव
छोटे छोटे प्रदेशों में विभक्त भारत में विद्यमान था वह अन्तिम हिन्दू नरेश पृथ्वीरा
चौहान की पराजय के पश्चात् समाप्त हो गया । यद्यपि यह भारत में मुस्लिम सत्त
का प्रारम्भिक काल था, परन्तु इस अपरिपक्व राजनैतिक अवस्था का भी भारत
वासियों पर प्रभाव पड़ा, क्योंकि समाज और जीवन राजनैतिक परिस्थितियों औ
प्रचलित शासनव्यवस्था से अवश्य प्रभावित होता है ।

दिल्ली के सुलतान स्वतन्त्र एव स्वेच्छाचारी थे । वे निरकुश शासन करते
थे । यही कारण था कि शनैः शनैः उन्होने खलीफाओं का नियन्त्रण अङ्गीकार करना
समाप्त कर दिया था । सुल्तान कुछ मन्त्रियों की भी नियुक्ति करते थे परन्तु वे मत्री

केवल सलाहकार के रूप मे होते थे। अन्तिम निर्णय सुल्तान का ही माना जाता था। श्री एस. आर. शर्मा का कथन है कि "वास्तव मे भारत मे मुस्लिम राज्य सभी अर्थों में स्वाधीन होता था और सुल्तान समस्त प्रशासनात्मक व्यवस्था मे रोडा होता था। कर्मचारियों की नियुक्ति में उसकी अनुकम्पा ही नियुक्त होने वाले अमीरों की योग्यता मानी जाती थी। अमीरों का अस्तित्व सुल्तान की इच्छा पर आधारित होता था। अतः सुल्तान राज्य का सर्वेसर्वा, सम्पूर्ण शक्ति तथा न्याय का स्रोत होता था। वह राज्य का प्रभुत्व-सम्पन्न प्रमुख तथा सेना का अध्यक्ष होता था। उसकी इच्छा ही कानून थी।

मुस्लिम शासन धर्म पर आधारित था। उलेमा लोग सुल्तान के सलाहकार होते थे। काजी न्याय करते थे। मुसलमान हिन्दुओं को काफिर कह कर पुकारते थे। उन्हें राजनैतिक अधिकारों से वंचित रखा जाता था। उन्हें राज्य मे उच्च पद प्रदान नहीं किये जाते थे। अधिकांश सुल्तान इसी धारणा के थे कि हिन्दुओ को इतना दीन बना दिया जाए कि उन्हे दोनों समय भोजन नसीब न हो। उन्हें घुड़सवारी जैसे साधन उपलब्ध नहीं थे। अलाउद्दीन कहा करता था, 'मैं इन हिन्दुओं को मेरे भय से भयभीत कर इस प्रकार घरो में घुसा देखना चाहता हूँ जिस प्रकार कि बिल्ली के भय से चूहे बिल मे घुस जाते हैं।" इस प्रकार हम देखते है कि हिन्दुओं का राजनैतिक जीवन में कुछ भी प्रभाव नहीं रहा था।

साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभाजित था। यद्यपि विभिन्न प्रान्तों के सूबेदारों की नियुक्ति सुल्तान स्वयं करता था और उन्हें हटाना भी सुल्तान ही के हाथों में था, तथापि सूबेदार सुल्तान को कर देकर अपने को अन्य कार्यों में पूर्ण स्वतन्त्र समझते थे। इनके पास स्वयं की सेना होती थी जिस पर समय समय पर सुल्तान को भी निर्भर रहना पड़ता था। इसी कारण प्रायः सूबेदार स्वतन्त्र होने का प्रयास करते थे। इन दिनों सिंहासन–रोहण का कोई नियम नहीं था। शासक की कसौटी उसकी शक्ति थी। राजनैतिक जीवन मे इस प्रकार के परिवर्तन होते हुए भी भारत के प्राचीन स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं पर मुस्लिम शासन का कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

सामाजिक जीवन:—पूर्व मध्यकालीन समाज का विकेन्द्रीकरण हो रहा था। अब वर्ण- जाति जन्म से मानी जाने लगी और इनमे स्थानीय, साम्प्रदायिक तथा व्यवसाय सम्बन्धी अनेक वर्ग हो गये। समाज भी छोटी छोटी इकाइयों मे बँट गया। यह भेद भोजन, विवाह, रीति-रिवाज, पूजापद्धति आदि में विभिन्नता के कारण बढ़ता गया। समाज मे संकीर्णता एवं ऊँच-नीच के विचार बढ़ रहे थे। निम्न वर्ग मे

चांडाल, शूद्र आदि समाज से बहिष्कृत कर दिये गये थे और इनका सामाजिक पृथक हो गया था, फिर भी अभी तक समाज में कट्टरता नहीं आई थी। समान वर्ण विवाह उत्तम माने जाते थे, किन्तु अन्तर जातीय तथा अन्तर धार्मिक विवाह भी ह थे। कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द का विवाह बौद्ध राजकुमारी कुमारदेवी के साथ हु था। विवाह अधिकतर वयस्क आयु में ही होते थे। स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी छुआछूत बढ़ती जा रही थी, किन्तु उच्चवर्ण के समाज में अभी तक सहभोज हो था। वैदिक काल की तुलना मे स्त्रियों का स्थान काफ़ी गिर गया था, फिर भी अभी तक उनका समुचित आदर होता था। कन्याओं की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया जाता था। हमे कई विदुषी स्त्रियों के उदाहरण मिलते हैं—मडन मिश्र की पत्नी भारती, गणित शास्त्र मे प्रवीण भास्कराचार्य की पुत्री लीलावती, काश्मी की रानी दिद्दा और वारंगल की रुद्राम्बा, राजशेखर की पत्नी प्रसिद्ध कवियित्र अवन्ति सुन्दरी आदि। पर्दा प्रथा का प्रचलन प्रारम्भ हो गया था। सती प्रथा का काफी प्रचलन था। सुदूर दक्षिण में देवदासी प्रथा चालू हो गई थी। विधवा विवाह केवल छोटी जातियों में होता था।

उत्तर मध्यकाल मे यद्यपि भारतवासियों के जीवन में कोई महान परिवर्तन नहीं हुआ, तथापि सैकड़ों वर्षो के सहवास से मुस्लिम जीवन का हिन्दुओं पर और हिन्दुओं का मुसलमानों पर प्रभाव पड़ा। हिन्दुओं की राजपूत कालीन सामाजिक अहमन्यता अब क्षीण होने लगी। मुसलमान तो प्रारम्भ से ही हिन्दू सभ्यता को समाप्त करने पर तुले हुए थे। लाखों हिन्दुओं को यवन बनाया गया और हजारों देवालयो को धराशायी किया गया। कत्लेआम तथा जबर्दस्ती धर्म परिवर्तन के पश्चात् भी जब वे भारत को मुसलमानों का देश न बना सके तो इन्होंने शान्ति से उनके साथ रहने का प्रयास किया। जब बल पूर्वक मुसलमानों ने हिन्दू महिलाओं के साथ विवाह करना प्रारम्भ किया, तो उन हिन्दू स्त्रियो ने उनके हरम में हिन्दू रीति रिवाजों का प्रचलन आरम्भ किया और मुसलमानों के शुष्क हृदय में सरसता का संचार का उनकी निष्ठुरता एव कठोरता को कोमलता में परिणित करने का प्रयास किया, परन्तु हिन्दू समाज पर इसका उलटा प्रभाव पड़ा। स्त्रियों ने अपनी इज्जत के लिए सती-प्रथा का कठोरता से पालन करना प्रारम्भ किया, तथा उनमे पर्दा प्रथा बचाने कठोर रूप से चालू हुई।

माता-पिता ने अपनी इज्ज़त रखने के लिए अपनी पुत्रियों की बाल्यवस्था मे ही शादी करना प्रारम्भ किया। यद्यपि हिन्दुओं की जाति-प्रथा की बुराइयाँ स्पष्ट होने लगी थीं, किन्तु फिर भी अपने सामाजिक अस्तित्व को बनाये रखने के लिए उन्होंने जाति-प्रथा का दृढ़ता से पालन किया। जार्ज बर्डवर्ड ने ठीक ही कहा है कि

"जब तक हिन्दू जाति-प्रथा को कायम रखेंगे तब तक ही हिन्दुस्तान हिन्दुस्तान रहेगा अन्यथा नही।"

मुसलमानों के हाथ भारत की अतुल सम्पत्ति आ गई थी क्योंकि वे यहाँ के शासक बन गये थे। मुस्लिम शासकों ने हिन्दू जनता से करों के रूप मे खूब धन एकत्र किया। भूमि कर, धार्मिक कर अथवा जजिया उस समय के प्रमुख कर थे। जजिया उस समय मुस्लिम शासकों की आयका तथा हिन्दुओं को अपमानित करने का प्रमुख साधन था। भूमि कर की दर उस समय ⅓ से लेकर ½ तक थी। अलाउद्दीन खिलजी तथा मोहम्मद तुगलक ने ५० प्रतिशत तक भूमि कर वसूल किया। इसके अतिरिक्त लूट तथा लावारिसों की सम्पत्ति को जब्त कर लेना भी दिल्ली के सुलतानों की आमदनी का एक अच्छा साधन था। लूट के माल से कभी कभी सैनिक भी धनवान हो जाता था, परन्तु उन्होने यह धन प्रजा हित में व्यय न कर अपने आमोद-प्रमोद में व्यय किया। यही कारण था कि उनका जीवन विलासी बन गया था और हिन्दू दरिद्र बन गये थे। हिन्दू स्त्रियो को मुसलमानों के यहाँ निम्न कोटि के कार्य करने पड़ते थे। देश का व्यापार तब भी हिन्दुओ ही के हाथों में था। व्यापार बराबर उन्नत होता जा रहा था। अतः हिन्दू व्यापारियों की आर्थिक दशा अधिक शोचनीय नहीं हुई थी। कृषि की अवस्था मुसलमानों के आक्रमणों के कारण अवनत हुई और कृषकों का शोषण भी सर्वाधिक हुआ। अतः अमीर खुसरो ने लिखा है कि, "शासकों के मुकुट का हर मोती किसानों के रक्त बिन्दुओं से बना है।" गृह उद्योग निरन्तर विकसित होते रहे।

धार्मिक जीवन:—गुप्त काल में उत्पन्न धार्मिक प्रवृत्तियाँ मध्यकाल के प्रारम्भ तक चलती रहीं। वैदिक प्रति सुधारणा के फल स्वरूप ब्राह्मण धर्म अधिक लोकप्रिय हो रहा था और अन्य सम्प्रदायों को अपने में पचा रहा था। इस काल मे कुमारिल और शंकराचार्य जैसे सुधारक हुए। कुमारिल ने वैदिक कर्मकाण्ड को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। शंकराचार्य ने अद्वैत वेदान्त का ऊँचा तत्वज्ञान दिया। उन्होने जैन और बौद्ध दर्शन के अनेक सिद्धान्तों को वैदिक धर्म में सम्मिलित किया, तथा बौद्ध मत का घोर खंडन किया। इस काल में ही बुद्ध की गणना ब्राह्मणों के दस अवतारो में होने लगी। अपनी इस समन्वय शक्ति से वैदिक धर्म समाज का व्यापक धर्म हो गया। धार्मिक क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण बात धर्म का कई सम्प्रदायों व उपसम्प्रदायों मे बँटना था—जैसे वैष्णव, शैव, शक्ति, ब्राह्म सौर, गणपत्य आदि। इनमें भी अनेक उप-सम्प्रदाय थे। अब बाह्य आडम्बर बढ़ गया। वैष्णवों मे गोपी लीला समाज, शैवों में पाशुपत, कापालिक तथा अघोरपन्थी समाज, शक्ति मे आनन्द भैरवी, भैरवी चक्र, सिद्धि मार्ग आदि अनैतिक पन्थ उत्पन्न होगये। ब्राह्मणोंमें भी

"जब तक हिन्दू जाति-प्रथा को कायम रखेंगे तब तक ही हिन्दुस्तान हिन्दुस्तान रहेगा अन्यथा नहीं।"

मुसलमानों के हाथ भारत की अतुल सम्पत्ति आ गई थी क्योंकि वे यहाँ के शासक बन गये थे। मुस्लिम शासकों ने हिन्दू जनता से करों के रूप में खूब धन एकत्र किया। भूमि कर, धार्मिक कर अथवा जज़िया उस समय के प्रमुख कर थे। जजिया उस समय मुस्लिम शासकों की आयका तथा हिन्दुओं को अपमानित करने का प्रमुख साधन था। भूमि कर की दर उस समय ⅙ से लेकर ½ तक थी। अलाउद्दीन खिलजी तथा मोहम्मद तुगलक ने ५० प्रतिशत तक भूमि कर वसूल किया। इसके अतिरिक्त लूट तथा लावारिसों की सम्पत्ति को जब्त कर लेना भी दिल्ली के सुलतानों की आमदनी का एक अच्छा साधन था। लूट के माल से कभी कभी सैनिक भी धनवान हो जाता था, परन्तु उन्होंने यह धन प्रजा हित में व्यय न कर अपने आमोद-प्रमोद में व्यय किया। यही कारण था कि उनका जीवन विलासी बन गया था और हिन्दू दरिद्र बन गये थे। हिन्दू स्त्रियों को मुसलमानों के यहाँ निम्न कोटि के कार्य करने पड़ते थे। देश का व्यापार तब भी हिन्दुओं ही के हाथों में था। व्यापार बराबर उन्नत होता जा रहा था। अतः हिन्दू व्यापारियों की आर्थिक दशा अधिक शोचनीय नहीं हुई थी। कृषि की अवस्था मुसलमानों के आक्रमणों के कारण अवनत हुई और कृषकों का शोषण भी सर्वाधिक हुआ। अतः अमीर खुसरो ने लिखा है कि, "शासकों के मुकुट का हर मोती किसानों के रक्त बिन्दुओं से बना है।" गृह उद्योग निरन्तर विकसित होते रहे।

धार्मिक जीवन:—गुप्त काल में उत्पन्न धार्मिक प्रवृत्तियाँ मध्यकाल के प्रारम्भ तक चलती रहीं। वैदिक प्रति सुधारणा के फल स्वरूप ब्राह्मण धर्म अधिक लोकप्रिय हो रहा था और अन्य सम्प्रदायों को अपने में पचा रहा था। इस काल में कुमारिल और शंकराचार्य जैसे सुधारक हुए। कुमारिल ने वैदिक कर्मकाण्ड को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। शंकराचार्य ने अद्वैत वेदान्त का ऊँचा तत्वज्ञान दिया। उन्होंने जैन और बौद्ध दर्शन के अनेक सिद्धान्तों को वैदिक धर्म में सम्मिलित किया, तथा बौद्ध मत का घोर खंडन किया। इस काल में ही बुद्ध की गणना ब्राह्मणों के दस अवतारों में होने लगी। अपनी इस समन्वय शक्ति से वैदिक धर्म समाज का व्यापक धर्म हो गया। धार्मिक क्षेत्र में सबसे अहितकर बात धर्म का कई सम्प्रदायों व उपसम्प्रदायों में बँटना था—जैसे वैष्णव, शैव, शक्ति, ब्राह्म सौर, गणपत्य आदि। इनमें भी अनेक उप-सम्प्रदाय थे। अब बाह्य आडम्बर बढ़ गया। वैष्णवों में गोपी लीला समाज, शैवो में पाशुपत, कापालिक तथा अघोरपन्थी समाज, शक्ति में आनन्द भैरवी, भैरवी चक्र, सिद्धि मार्ग आदि अनैतिक पन्थ उत्पन्न होगये। ब्राह्मणोंमें भी

ा रहा था । इन भ्रष्टाचारी मार्गों से समाज की रक्षा करने के
का जन्म हुआ जिससे ब्राह्मण धर्म इस्लाम का सामना कर जीवित
में शकराचार्य, रामानुजाचार्य, तामिलमें आलवार वैष्णव सन्त,
मे नन्द शैव धर्म, कर्नाटक में लिंगायत आदि उल्लेखनीय है ।

की तरह बौद्ध धर्म में भी बाह्याडम्बर, 'विलासिता' भ्रष्टाचार
ो तान्त्रिक और वाम मार्गी हो गये थे । इनके विहार विलासिता
तिब्बत और हिमालय प्रदेश की जातियों के सम्पर्क के कारण
ी चली गई । ह्वेनसांग ने स्वय इस प्रवृत्ति को सिन्ध में प्रच-
न दशा मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व भी थी । ऐसे जर्जरित
ौर रामानुज का आन्तरिक प्रहार और मुसलमानों का बाह्य
हुआ । परिणाम यह हुआ कि बौद्ध धर्म भारत में सदा के
जैन धर्म ने भी अपना मार्ग बदला । मन्दिर, मूर्ति पूजा, अर्चना,
ा के साथ साथ अब इसमें अन्ध-विश्वाश भी घर कर गया
ादाय व उपसम्प्रदाय बन गये । फिर भी इनके कठोर आचार
इनमे वाम मार्गी तथा भ्रष्टाचारी प्रवृत्तियां का समावेश नहीं
चार तथा तपस्या के कारण जैन धर्म के अनुयायियों की सख्या
इस धर्म के मानने वाले गुजरात व महाराष्ट्र मे कर्नाटक व
गए थे । इस प्रकार सामान्य धार्मिक जीवन मे कई एक अन्ध-
थे, जिससे जनजीवन मे अपने भविष्य के प्रति अविश्वास,
विश्वास, भाग्यवाद, पुनितज्योतिष, भूत-प्रेत, जादू-टोना
ा गया ।

मे मुसलमानों के भारत पर आक्रमण तथा आक्रमण के
ने हिन्दुओं की धार्मिक भावना को बड़ी ठेस पहुँचाई । जिस
ने भारत-विख्यात सोमनाथ की मूर्ति खंडित की तो हिन्दुओं
श्रद्धा उठने लगी और उन्हें परमात्मा के अस्तित्व में शका
र्मिक जीवन में शनैः शनैः उदासीनता प्रवेश कर रही थी । फिर
मन्दिरों बनाने लिए संस्कार, अथवा स्थान नहीं दे सके ।

नहीं था और उपनिषदों में इसका बीज मिलता है तथा 'गीता' व 'भागवत' में इसका विशद विश्लेषण किया गया है तथापि विभिन्न समय पर विभिन्न धर्माचार्यों ने विभिन्न प्रकार से इस पर जोर दिया है। तेरहवीं व चौदहवीं शताब्दी में भक्ति आन्दोलन में सहयोग देने वाले महात्माओं का संक्षेप में विवरण दिया जाता है।

रामानुजाचार्य:—ये भक्ति आन्दोलन के प्रथम प्रवर्तक थे। इनका जन्म १०१६ ई० में कांजीवरम् में हुआ था। ये विशिष्टाद्वैतवादी थे। ये स्वामी शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित ब्रह्मात्मैक्यवाद से सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने वैष्णव मत के आधार पर एकेश्वरवाद का प्रचार किया। उनका मन्तव्य था कि ईश्वर किसी शून्यता का नाम नहीं है, किन्तु प्रेम तथा सौन्दर्य की मूर्ति को ही ईश्वर कहते हैं। उनका कहना था कि विष्णु सर्वेश्वर हैं और वे मनुष्य पर दयाकर इस पृथ्वी पर जन्म लेते रहते हैं। उन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की, तथा अपने विचारों को प्रसारित करने के लिए ७०० मठों की स्थापना की।

रामानन्द—ये ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे और वैष्णव थे। ये जाति-प्रथा में विश्वास नहीं रखते थे। इनके समाज में सभी वर्ग के शिष्य विद्यमान थे। इनके समय से पूर्व कृष्ण-भक्ति प्रधान थी। इन्होंने राम भक्ति का प्रचार किया। इनके शिष्यों ने घूम घूम कर राम-भक्ति का प्रचार लोक भाषा हिन्दी में किया।

कबीर—कबीर का जन्म १३९८ ई० में हुआ था। इनका पालन-पोषण नीरू तथा नीमा नाम के मुस्लिम परिवार ने किया था। ये एक अच्छे सुधारक थे और अद्वैतवाद में विश्वास करते थे। ईश्वर की एकता में उनका अटल विश्वास था। वे निराकार निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। इन्हें भी जाति प्रथा से घृणा थी और मूर्तिपूजा में भी इन्हें विश्वास नहीं था। ये अपनी स्पष्टवादिता के लिए विख्यात हैं। उन्होंने हिन्दू व मुसलमान दोनों को बाह्य आडम्बर के लिए फटकारा। उन्हें रहस्यवादी कवि भी माना जाता है।

नामदेव:—इनका नाम दक्षिण भारत के भक्त कवियों में विख्यात है। ये एक निम्न जाति के मराठा साधु थे। इन्होंने जातिप्रथा की भी कटु आलोचना की है। इन्होंने मूर्तिपूजा पर बल देते हुए ईश्वर की एकता में विश्वास प्रकट किया है। वे भक्ति को ही मोक्ष का प्रमुख साधन समझते थे।

गुरुनानक—ये भी एक आदर्शवादी सुधारक थे। इनका जन्म १४६९ ई० में लाहौर के निकट तलवण्डी नामक ग्राम में हुआ था। इन पर इस्लाम की सादगी का गहरा प्रभाव पड़ा था। ये भी एकेश्वरवादी थे और जाति प्रथा को नहीं मानते

थे। ये सिक्ख धर्म के प्रवर्तक थे। सन्यास धारण करने के पश्चात् ये अपने विचारों को फैलाने के लिए देश के विभिन्न भागों में घूमते रहे और १५३८ ई० में करतारपुर के समीप इनका देहान्त हो गया।

वल्लभाचार्य—ये वैष्णवों की एक दूसरी शाखा के प्रधान पोषक थे। इनका जन्म १४७६ ई० में बनारस के समीप एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। ये कृष्ण के महान भक्त थे और कृष्ण को विष्णु का अवतार मानते थे। इन्होंने शुद्धाद्वैत का प्रसार किया। इनकी मान्यता थी कि मोक्ष प्राप्ति के लिए पहले संसार से विरक्ति लेना आवश्यक है। इनके सिद्धान्तों का प्रचार विशेष रूप से ब्रजमण्डल, गुजरात तथा राजस्थान में हुआ।

चैतन्य महाप्रभु:—ये बंगाल के महान सुधारकों में से थे। इनका जन्म १४८५ ई० में नदिया में हुआ था। इन्होंने २५ वर्ष की आयु में ही वैराग्य ले लिया था। चैतन्य अपने विचारों का प्रचार करने के लिए इधर उधर घूमते थे। ये भी जाति-प्रथा से घृणा करते थे। ये कर्म से भी अधिक भगवान की भक्ति को स्थान देते थे। इनके इष्टदेव कृष्ण थे। अतः ये जनसाधारण को भगवान कृष्ण की उपासना करने का ही उपदेश देते थे। इन्होंने आचरण की शुद्धता पर विशेष रूप से जोर दिया। १५३३ ई० में इनका स्वर्गवास हो गया।

भक्ति आन्दोलन पन्द्रहवीं शताब्दी में ही समाप्त नहीं हुआ, वरन् आगे भी चलता रहा। महात्मा तुलसीदास, सूरदास तथा मीराबाई ने इसे सफलता पूर्वक संचालित किया और भारत-वासियों को भगवद्-भक्ति का पाठ पढ़ाया।

इस आन्दोलन के फलस्वरूप भारतीय जन जीवन में एकेश्वरवाद का प्रचार हुआ। हिन्दू-धर्म में से मिथ्याडम्बर दूर किया गया। किसी सीमा तक हिन्दू समाज में से ऊंच-नीच की भावना भी कम हुई। निम्न वर्णों के लोगों को भी समाज में आदर मिलने लगा। संस्कृत के स्थान पर सरल हिन्दी भाषा का प्रयोग होने लगा। इस आन्दोलन से हिन्दू समाज में एक नई स्फूर्ति उत्पन्न हुई, जिसके कारण वे मुसलमानों के सामाजिक जीवन के आगे पूर्णतया घुटने नहीं टेक सके। इसका एक परिणाम यह भी निकला कि हिन्दुओं ने मुसलमानों को और मुसलमानों ने हिन्दुओं को समझने का प्रयास किया।

सूफी मत:—मोहम्मद साहब ने ईश्वर की कल्पना करते हुए कहा था कि "खुदा मालिक है तथा इन्सान बन्दा।" समय के साथ ये विचार बदलते गए। डा. ताराचन्द के कथन के अनुसार, "मोहम्मद साहब की मृत्यु के कुछ समय उपरान्त ही

उनका सारा धर्म जीवन व तर्कशास्त्र के दबाव से कई सम्प्रदाय व भ्रम में बट गया।" राजनैतिक स्वार्थ के कारण संघर्ष हुए और इस्लाम में भी फिरके पैदा हो गए। फ़ारस, में शिया धर्म माना जाने लगा और कट्टर कुरान को मानने वाले सुन्नी कहलाए जाने लगे। शिया फिरके के लोग खुदा को पूर्ण सौन्दर्य तथा बन्दे को सौन्दर्य का पुजारी मानने लगे। इस धारा ने ही कालान्तर में सूफी मत का रूप ग्रहण किया। इसके मानने वालों ने इस्लाम में प्रेम भावना को स्थान दिया। सूफी मत की अनुगामिनी एक महिला रबिया ने लिखा है कि, "अल्लाह के प्रेम ने मुझे इतना निमग्न कर लिया है कि मेरे हृदय में घृणा और प्रेम जैसी चीज नहीं रहती है"।

भारत में इसके अंकुर बहुत पहले ही फूट आये थे, किन्तु विशेषतया दिल्ली सल्तनत के समय में इसका जोरदार प्रचार हुआ। यह सब से पहले सिन्ध में प्रसारित हुआ। इसमें हिन्दू, बौद्ध तथा जैन धर्म के तथ्य स्पष्ट दिखलाई देने लगे हैं।

सूफी मत की विशेषताएँ —डा० अब्दुल हकीम ने सूफी मत की निम्न लिखित विशेषताएँ बतलाई हैं :—

(१) समस्त वास्तविकता एक है अर्थात् हमें इस पृथ्वी पर जो दृष्टिगत होता है वह एक सत्ता का विकास रूप है।

(२) जिस प्रकार समस्त वस्तुओं का उद्‌गम एक तत्व है, उसी प्रकार उनका लौटना भी उसी तत्व में निश्चित है।

(३) सत्य का ज्ञान बुद्धि से होता है तर्क से नहीं।

(४) मानव जीवन का वास्तविक लक्षण यह है कि वह धार्मिक अनुभूतियों के द्वारा अन्तिम सत्य से साक्षात्कार करे।

(५) धार्मिक अनुभूति प्रेम है। प्रेम के भीतर ही स्वाभाविक रूप से सत्य का ज्ञान होता है।

(६) धर्म तथा नैतिकता का आधार प्रेम है। प्रेम के बिना धर्म और नीति दोनों निर्जीव हो जाते हैं।

सूफी मत संगीत को उच्चतम् स्थान देता है। उनके अनुसार संगीत से मन केन्द्रित होता है और फिर ईश्वर की ओर उठता है।

साहित्य :—पूर्व मध्यकाल में भारत की साहित्यिक भाषा संस्कृत थी, यहाँ तक कि बौद्ध और जैन भी संस्कृत में अपने ग्रन्थ लिखने लगे थे। राजकीय

दान-पत्र, प्रशस्ति पत्र तथा साहित्य और शास्त्रीय ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे जाते थे। लगभग दसवीं शताब्दी के अन्त में प्रान्तीय भाषाएं उदाहरणार्थ-हिन्दी, गुजराती मराठी, बंगला, तामिल, तेलगु, कन्नड़ और मलयालम आदि विकसित हो रही थीं। गुप्त कालीन साहित्यिक प्रगति का प्रवाह अब भी बह रहा था, परन्तु उसका वेग तीव्र नहीं था। हर्ष और बाण की रचनाओं के अतिरिक्त भवभूति, वाक्पतिराज, राजशेखर, क्षेमेन्द्र, कल्हण, विल्हण, जयदेव, भट्टनारायण, भोज, विग्रहराज, माघ तथा श्री हर्ष की रचनाएं उल्लेखनीय हैं।

दर्शन के क्षेत्र में शंकर, रामानुज, धर्मकीर्ति आदि के महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना हुई। व्याकरण, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, दण्डनीति, गणित, संगीत आदि विषयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे गए। इस युग के साहित्य में सरलता के स्थान पर क्लिष्टता आ गई। दर्शन में शुष्क तर्क का आविर्भाव हुआ। इस समय के लेखक दूरदर्शी व मौलिक नहीं थे केवल अतीत का अनुकरण करने वाले थे। समाज में शिक्षा का उच्च स्थान था। प्राचीन शिक्षा प्रणाली ही प्रचलित थी। समस्त भारत में बौद्ध विहार, मन्दिर, मठ, आश्रम और गुरुकुल फैले हुए थे। इस काल को मौलिक रचनाओं का काल नहीं कहा जा सकता।

मुस्लिम काल में तुर्कों और अफगानों की राज्य भाषा फारसी थी। भारत का जन–साधारण प्रान्तीय भाषा का प्रयोग करता था। शनैः शनैः दोनों भाषाओं का सम्मिश्रण प्रारम्भ हुआ। भारतीय जन साधारण की भाषाओं में फारसी व अरबी के शब्दों का प्रयोग होने लगा। इस प्रकार अनायास ही उर्दू भाषा का जन्म हो गया। उस के जन्म से हिन्दू–मुस्लिम सम्पर्क और निकटतम हो गया। साहित्यिक प्रगति भी सराहनीय रही। प्रसिद्ध मुसलमान कवि अमीर खुसरो ने हिन्दी भाषा में अपनी साहित्यिक रचनाएं भेंट की। जायसी ने अपने अमूल्य ग्रन्थ 'पद्मावत' की रचना इसी समय की। इसी प्रकार मुस्लिम सन्त कबीर आदि ने हिन्दी को खूब अपनाया। फारसी साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ। खुसरो, मौलाना मोयुद्दीन, मौलाना अहमद थानेश्वरी, मशहूर शायर शेख आदि ने अपने अमर ग्रन्थों की रचना इसी काल में की।

बङ्गला साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ और मुस्लिम सुल्तानों ने इसे काफ़ी प्रोत्साहन दिया। विद्यापति, कृतिवास आदि बङ्गाली कवियों को राज्याश्रय मिला।

कला :—पूर्व मध्य-कालीन भारत में राजाओं ने ललित कलाओं को न केवल प्रोत्साहन ही दिया था, बल्कि कलाकारों को आश्रय भी प्रदान किया। इस काल में

गुप्तकालीन कला की सरलता, सजीवता और मौलिक कल्पना का सर्वथा अभाव है, किन्तु यह कला लालित्य और शृंगार से परिपूर्ण है। मुसलमानों के आक्रमणों से कला के उच्चकोटि के नमूने तो नष्ट हो गये, फिर भी अनेक राजप्रासाद, देवालय, मूर्ति, द्वार आदि अब भी तत्कालीन कला के उत्कृष्ट नमूनो के रूप मे शेष हैं। उत्तर भारत मे मन्दिरो की नागर शैली थी, जिसमे ऊंचे-ऊंचे शिखर बनाये जाते थे। दक्षिण भारत मे वेसर शैली थी जिसके उदाहरण बीजापुर और एलौरा के आस-पास मिलते हैं। सुदूर दक्षिण मे द्रविड़ शैली थी जिसमें मन्दिरों के ऊपर विशाल विमान या रथ बनाए जाते थे। मन्दिरो में अलकार और सजावट अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुके थे। उत्तरी भारत के मन्दिरो मे बुन्देलखण्ड के देवगढ़ व खजुराहो, उड़ीसा मे भुवनेश्वर, आबू मे दिलवाड़ा तथा ग्वालियर, उदयपुर, काश्मीर आदि के मन्दिर भी प्रसिद्ध हैं। इलौरा का कैलाश मन्दिर वेसर शैलो का सुन्दर नमूना है। तजौर, कांची, मदुरा, महामल्लपुरम मे द्रविड़ शैली के मन्दिर विद्यमान हैं। मन्दिर निर्माण मे अतुल धनराशि व्यय की गई थी। मन्दिर कई भागों मे विभाजित होने के कारण विशाल रूप धारण कर गये थे। अनेक सम्प्रदाय, उप सम्प्रदाय बढने के कारण देवी-देवता यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा, नाग, पशु, पक्षी आदि की मूर्तिया बनती थी। ब्राह्मण देवताओ मे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य, गणेश आदि, बौद्धों मे बुद्ध, अवलोकितेश्वर आदि, जैनियो मे तीर्थङ्कर आदि की मूर्तिया बनती थी। मूर्तियां कला की दृष्टि से उच्च-कोटि की होती थी और पत्थर, कांसा, तांबा, सोना आदि की निर्मित होती थी।

चित्र कला विकसित थी फिर भी इसके इतने अधिक उदाहरण नही मिलते जितने कि मन्दिर और मूर्तियों के। चित्रकला के कुछ अच्छे नमूने अजन्ता के गुफा मन्दिरों में और कुछ चीनी, लका आदि के खण्डहरों में मिलते हैं।

मुस्लिम कालीन मध्यभारत में हिन्दू-मुस्लिम सम्पर्क का सबसे बड़ा प्रतीक हमे कला के क्षेत्र मे वास्तु कला मे मिलता है। इस कला की वास्तु कला को 'इण्डो-सारसेनिक अथवा 'इण्डो-मुस्लिम' या 'पठान कला' के नाम से पुकारते हैं। मुस्लिम सुल्तानो ने बृहद् इमारतें बनवाई, किन्तु उनके बनवाने में भारतीय कारीगरो का ही उपयोग किया गया। अन्तर विचार, डिजाइन आदि मुसलमानों के होते हुए भी भारतीय कारीगरों ने अपने आदर्शों की छाप उस समय के भवनो आदि पर डाल ही दी। इस कला के उत्कृष्ट नमूनो में कुतुब मीनार दरगाह औलिया, अढाई दिन का झोंपड़ा, अदीना मस्जिद आदि की गणना की भी जाती है।

इसी प्रकार संगीत कला में भी हिन्दु-मुस्लिम सम्पर्क से कई नवीन चीजों

का निर्माण हुआ। कव्वाली और खयाल मुसलमानों की देन हैं, जिसे कलान्तर में हिन्दुओं ने अपना लिया। चित्र कला का भी इस समय पर्याप्त विकास हुआ।

इस प्रकार मध्यकाल हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय का प्रारम्भिक युग था, जिसने मुग़ल काल के समन्वय की उत्तम पृष्ठ भूमि तैयार की। प्रो. हुमायूं कबीर के मतानुसार, "मध्य-युग का सच्चा भारतीय इतिहास तो हिन्दू और मुसलमानों में सहयोग व संयोग के प्रयासों का इतिहास है।"

Topics for essay (निबन्ध के विषय)

(1) Write an essay on the economic, social and religiovs condition of the people in medieval India under the Delhi Sultanate.

दिल्ली सल्तनत के आधीन मध्यकालीन भारत की आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक व्यवस्था पर एक निबन्ध लिखिये।

(2) What do you mean by the 'Bhakti Movement'? Show its importance in the History of India.

भक्ति आन्दोलन से आप क्या समझते हैं? भारत के इतिहास में इसका क्या महत्व है?

(3) Write a brief essay on the 'Sufi sect'.

सूफी मत पर एक छोटा लेख लिखिये।

Brief Notes (संक्षिप्त टिप्पणियां)

Write brief notes on the following :—

(1) Kabir (2) Guru Nanak (3) Chaitanya (4) Ramanuj (5) Sufi sect (6) Ramanand (7) Amir Khusrao.

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिये—

(१) कबीर (२) गुरु नानक (३) चैतन्य (४) रामानुज (५) सूफी मत (६) रामानन्द (७) अमीर खुसरो।

bjective Type Questions

Answer in not more than three lines or in 'Yes' or 'No' where required:—

(a) After conquering India and being settled there, the Muslims felt themselves foreigners — Yes cr No

(b) The Delhi Sultans were 'Autocrats' — Yes or No

(c) The Muslim state in India was 'Theocratic' — Yes or No

(d) Muslim rulers aimed at making their Hindu public economically rich — Yes or No

(e) The Art under the Sultans of Delht was known as — Muslim art, Hindu art, Sufi art, Indo- Sarcenic art, Mugal art (Pick out the correct name)

(f) The Sufi Sect spread in India first in Punjab, Rajasthan, Sindh, Kashmir (Pick out the correct name)

(g) The Bhakti cult had all the documents of the Vedas — Yes or No

नई शैली के प्रश्न

निम्नलिखित के उत्तर दें—(उत्तर तीन पंक्तियों से अधिक नहीं हो)

जहाँ 'हाँ' अथवा 'ना' की आवश्यकता हो वहा वैसा उत्तर दें—

(क) भारत विजय करने के पश्चात तथा वहा बस जाने के बाद मुसलमान अपने आपको विदेशी मानते थे—'हाँ' अथवा 'ना'

(ख) दिल्ली सुलतान स्वेच्छाचारी थे—'हाँ' अथवा 'ना'

(ग) भारत में मुस्लिम राज्य धर्म पर आधारित था—'हाँ' अथवा 'ना'

(घ) मुस्लिम शासक अपने राज्य में हिन्दू जनता को धनाढ्य बनाना चाहते थे—'हाँ' अथवा 'ना'

(ङ) दिल्ली सुलतानो के समय की कला का नाम मुस्लिम कला, हिन्दू कला, सूफ़ी कला, इन्डो–सारसेनिक कला, मुग़ल कला था (सही नाम चुनकर बतलाइये)

(च) भारत में सूफी मत सर्व प्रथम यहा फैला······पंजाब, राजस्थान, सिन्ध, काश्मीर (सही नाम बतलाइये)

(छ) भक्ति–मार्ग में वेदों की समस्त शिक्षायें निहित थी—'हाँ' अथवा 'ना'

भारत में पाश्चात्य प्रभाव

(The Impect of the West)

१८५७ ई० मे भारत में अंगरेजों के विरुद्ध विद्रोह हुआ। इस विद्रोह का उद्देश्य था अगरेजों को भारत से निकाल कर स्वाधीनता प्राप्त करना। यद्यपि इस विद्रोह का दमन क्रूरतापूर्वक किया गया, तथापि इसका प्रभाव देश के राजनीतिक जीवन पर पड़ा। ईस्ट इन्डिया कम्पनी के स्थान पर इंगलैण्ड की रानी का शासन स्थापित हुआ। इंगलैण्ड ने १८५८ ई० से १४ अगस्त १६४७ ई० तक भारत पर शासन किया। इस युग में ब्रिटिश शासन का भारत के राजनीति, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

राजनैतिक प्रभावः—

१८५८ ई० में इंगलैण्ड की सरकार ने भारतीय शासन प्रणाली में परिवर्तन करना आवश्यक समझा। इस परिवर्तन का आधार बना शासक और प्रजा के बीच निकटतम सबंध। ब्रिटिश शासकों ने अनुभव किया कि अंगरेजों के विरुद्ध विद्रोह का सबसे बड़ा कारण था इस्ट इण्डिया कम्पनी की प्रशासनिक असफलता। परिणाम-स्वरूप अंगरेजों ने भारत के निवासियों को भी शासन में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित किया, तथा कुछ ऐसी सुविधायें भी दी जिससे देशवासी ब्रिटिश शासन में भाग लेने के लिये आकृष्ट हों। भारतीयों को अखिल भारतीय सेवाओ में नियुक्त किया गया। इस प्रकार अगरेज और भारतीय साथ साथ काम करने लगे, जिसके फल-स्वरूप भारतीय अधिकारी ब्रिटिश शासन से परिचित हो गए। यद्यपि अगरेजों ने शासन का वास्तविक नियत्रण अपने हाथों में ही रक्खा, तथापि नीचे के पदों पर भारतीयों को नियुक्त किया गया।

(१) ब्रिटिश प्रशासन और न्याय पद्धति का विकासः—प्रशासन में परिवर्तन के साथ साथ न्याय पद्धति में परिवर्तन किया गया। पश्चिमी न्याय पद्धति के *सिद्धान्त, भारतीय न्याय पद्धति के साथ जोड़ दिए गए।* हिन्दुओ एव मुसलमानों के समस्त कानूनों का संकलन किया। दण्ड देने की एव न्याय पद्धति के विषय में विस्तार पूर्वक नियम बनाए गए। दीवानी और फौजदारी विधान तैयार किए गए। मुसलमान फौजदारी कानून (*Muslim Criminal Code*) के स्थान पर भारतीय दण्ड विधान (Indian Penal Code) लागू किया गया।

फौजदारी तथा दीवानी के मुकदमों के एक रूप नियम बनाए गए। इससे भारत के सभी भागों में (देशी राज्यों के अतिरिक्त) एकरूप न्याय पद्धति का विकास हुआ। न्यायालयों का संगठन भारतीय परम्परा तथा अंगरेजी पद्धति के समन्वय से हुआ। इन न्यायालयों में वकालत करने के लिए देशवासी इंगलैण्ड जाकर बैरिस्टर की परीक्षा पास करने लगे। इन परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप भारत में ब्रिटिश न्याय पद्धति स्थापित हुई। इसी प्रकार प्रशासन के प्रत्येक विभाग का संगठन किया गया।

पुलिस का संगठन इस प्रकार किया गया कि भारतीय सदा ब्रिटिश अधिकारियों के अधीन रहकर कार्य करें। दैनिक प्रशासन की व्यवस्था के लिए नौकरशाही (Bureaucracy) का विकास हुआ। इस प्रथा के परिणाम स्वरूप भारत का प्रशासन ब्रिटिश शासन का प्रतिबिम्ब बन गया। इस प्रथा की नींव इतनी गहरी डाली गई कि देश स्वतन्त्र होने पर भी इस प्रथा को समाप्त नहीं कर सका। न्याय पद्धति और प्रशासन के क्षेत्र में ब्रिटिश शासन की छाप अमिट है।

(२) ब्रिटिश सैनिक पद्धति का विकास :—विद्रोह के समय भारतीय सैनिकों ने अंगरेजों के विरुद्ध विद्रोह किया था। इस विद्रोह ने अधिकारियों के मन में यह बात बैठा दी थी कि भारतीय सेना का पुनंसगठन करना अत्यन्त आवश्यक है। ब्रिटिश तथा भारतीय सैनिकों के बीच २:१ का अनुपात बनाये रखने के लिए सैनिक टुकड़ियों का संगठन किया गया। सेना के समस्त महत्वपूर्ण पदों पर केवल ब्रिटिश सैनिक ही नियुक्त किये जाते थे। इस नीति से भारत का सैन्य संगठन ब्रिटिश पद्धति के आधार पर हुआ। कालान्तर में अंगरेजों ने स्वामी भक्त भारतीय सैनिकों को उच्च पदों पर नियुक्त करना प्रारम्भ किया, परन्तु उन्हें कभी किसी भी सैनिक टुकड़ी का स्वतन्त्र रूप से संचालन करने का अवसर नहीं दिया।

(३) प्रतिनिधित्व प्रणाली का विकास :—१८६१ ई० का भारत परिषद् अधिनियम उदार नीति के वातावरण में तैयार हुआ था। इस अधिनियम द्वारा शासक और प्रजा के बीच सम्पर्क की व्यवस्था की गई। केन्द्रीय व्यवस्थापिका के मनोनीत सदस्यों में भारतीयों को स्थान मिला। भारतीय परिषद् अधिनियम १८७४ ई० के अनुसार स्वयं लार्ड डफरिन ने स्पष्ट किया कि उसका उद्देश्य भारत में ब्रिटन की संसदीय प्रणाली का प्रवर्तन करना नहीं है। इसके उपरान्त १८९२ ई० के अधिनियम ने भारतीयों में उत्साह नहीं बढ़ाया। १९०९ ई० के सुधार विधेयक द्वारा निर्वाचन प्रणाली का विकास प्रारम्भ हुआ। यद्यपि इस विधेयक से निर्वाचन तथा प्रतिनिधित्व का क्षेत्र संकुचित ही बना रहा, तथापि इस अधिनियम से भारत में प्रतिनिधित्व तथा निर्वाचन प्रणाली का विकास प्रारम्भ हुआ।

१९१९ ई०में वैधानिक और प्रशासनीय व्यवस्था में सुधार किया गया, जिसके फलस्वरूप केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओं में निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ाई गई, तथा सदस्यों को अधिक अधिकार दिए गए। प्रान्तों में द्वैध प्रशासन प्रारम्भ हुआ यह स्वशासन की सार्वजनिक मांग को कुछ सीमा तक पूरा करने में सफल हुआ। इस अधिनियम ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को मजबूत बनाया। मुसलमान, पंजाब के सिख, बम्बई के मराठे, तथा मद्रास के ब्राह्मणों को विशेष प्रतिनिधित्व दिया गया। १९३५ ई० के अधिनियम द्वारा प्रतिनिधित्व का विस्तार किया गया। ब्रिटिश शासन मे प्रथम बार भारतीय मन्त्रियों ने प्रान्तीय शासन की बागडोर सम्भाली। इस प्रकार ब्रिटिश शासन के प्रभाव स्वरूप भारत मे प्रतिनिधित्व प्रणाली का विकास हुआ।

(४) स्थानीय स्वायत्त शासन का प्रारम्भ :—यद्यपि भारत में प्राचीन काल से गाँवों तथा व्यवसायियों की स्वायत्त शासन की संस्थाएं विद्यमान थीं, जो भीषण राजनीतिक एव सामाजिक उथल-पुथल के बीच भी जीवित रहीं, तथापि वैधानिक रूप से १८७० ई० मे स्थानीय स्वायत्त शासन प्रारम्भ हुआ। लार्ड मेयो के प्रान्तीय *अर्थ व्यवस्था के प्रस्ताव (१८७० ई०) में स्थानीय शिक्षा, स्वास्थ्य-व्यवस्था, चिकित्सा* की सुविधा आदि का उल्लेख था। इस प्रस्ताव के फलस्वरूप नगरपालिकाओं के लिए कानून बनाए गए। लार्ड मेयो के उपरान्त लार्ड रिपन ने स्थानीय स्वायत्त शासन के विकास के लिये प्रयत्न किया। इस प्रकार ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत स्वायत्त शासन प्रणाली प्रारम्भ हुई। सरकार ने स्वायत्त शासन के लिए कानून बनाए। स्वायत्त शासन प्रणाली से छोटी-छोटी इकाइयों में जनतान्त्रिक भावना का विकास भी हुआ।

(५) ग्रामीण स्वायत्त शासन का प्रारम्भ :—लार्ड रिपन ने १८८२ ई० में एक प्रस्ताव द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में भी स्थानीय संस्थाओं को चलाने का निर्देश दिया। उसने इस बात का समर्थन किया कि ग्रामीण संस्थाओं का क्षेत्र छोटा हो तथा सार्वजनिक हितों का निर्णय जिला परिषदों में किया जाय। इसके साथ यह सुझाव भी रखा गया कि छोटी-छोटी स्थानीय समितियों पर नियन्त्रण रखने के लिए जिला परिषदों की स्थापना की जाय। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में विकेन्द्रीकरण आयोग (Decentralisation commission) ने ग्रामीण स्वायत्त शासन के कार्य पर विशेष बल दिया। इस प्रकार ग्रामीण *स्वायत्त शासन की स्थापना हुई।*

(६) प्रेस और समाचार पत्रों का विकास :—प्रारम्भिक स्थिति मे भारतीय प्रेस ने सरकार का ध्यान आकर्षित नही किया, क्योंकि तब यह अंगरेजों के हाथों में

था और केवल स्थानीय समाचार छापता था। भारतीयों के हाथों में प्रेस ने स्वतत्र रूप धारण किया। यह राजनीतिक शिक्षा तथा राष्ट्रीयता का प्रचार करने लगा। प्रान्तीय भाषाओं में भी समाचार छपने लगे। समाचार पत्रों ने सरकार की आलोचना प्रारम्भ की, फलस्वरूप सरकार ने ऐसे अधिनियम बनाए, जिससे समाचार पत्रों पर अंकुश स्थापित हो। सरकार की आलोचना पर कड़ा प्रतिबन्ध लगाया गया। शासन को समय-समय पर ऐसे कानून बनाने पड़े जिससे प्रेस तथा समाचार पत्र स्थानीय समाचार अथवा साधारण लेखों के अतिरिक्त सरकार की आलोचना न छापें। इस नियन्त्रण के परिणाम स्वरूप समाचार पत्रों की सख्या बढ़ी। इस स्थिति से सरकारी कर्मचारियों में हलचल मच गई। दमनकारी कानूनो से बचने के लिए भारतीयों ने अंगरेजी मे समाचार पत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। जैसे जैसे समय बीतता गया समाचार पत्रो का प्रभाव बढ़ता गया।

(७) साम्प्रदायिकता का विकास :—साम्प्रदायिकता ब्रिटिश शासन प्रणाली का सबसे क्रूर अभिशाप है, जिसने भारत की एकता को नष्ट कर देश का विभाजन किया। १८५७ ई० के विद्रोह के बाद अंगरेज हिन्दू और मुसलमानो की एकता नष्ट करने का प्रयत्न करने लगे, क्योंकि दोनो के बीच भेदभाव उत्पन्न करना ब्रिटिश शासन की नीति रही। ब्रिटिश शासन प्रबन्ध ने साम्प्रदायिकता के विस्तार के लिए सरकारी नौकरी तथा व्यवस्थापिकाओं के प्रतिनिधित्व मे हिन्दू, मुसलमान, सिख, मराठा, हरिजन आदि के लिये आनुपातिक रूप से स्थान सुरक्षित रखना प्रारम्भ किया, फलस्वरूप शासन कार्य का आधार साम्प्रदायिकता बना। यह विष भारत के राष्ट्रीय जीवन में इतने दृढ़ रूप से फैला कि प्रशासन तथा राष्ट्रीय जीवन मे साम्प्रदायिकता के अतिरिक्त किसी और आधार अथवा सिद्धान्त पर शासन करना असम्भव हो गया। यद्यपि भारत स्वतन्त्र है तथापि साम्प्रदायिकता का विष हमारे देश की एकताके लिये आज भी सबसे बड़ा अभिशाप बना हुआ है।

इस प्रकार ब्रिटिश शासन का भारत के राजनीतिक जीवन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि देश स्वतन्त्र होने पर भी हम उस प्रभाव से मुक्त नहीं हो सके। आज हमारे देश का प्रशासनिक संगठन वही है जो अंग्रेजो के समय में था, केवल अन्तर इतना आ गया है कि इसने पूर्णतः भारतीय आवरण पहनने का प्रयत्न किया है।

आर्थिक प्रभाव :—आर्थिक क्षेत्र में भी ब्रिटिश-शासन का भारतीय जीवन पर प्रभाव पड़ा, जो इस प्रकार है :—

(१) कृषि और सिंचाई का विकास :—भारत सदा से कृषि प्रधान देश रहा है, परन्तु ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत कृषि में परिवर्तन और सुधार हुए। १८९६-९७ ई० में बंगाल को छोड़ कर सारे भारत में घोर अनावृष्टि के फलस्वरूप भयानक अकाल पड़ा। अकाल का सामना करने के लिये कृषि एवं सिंचाई की व्यवस्था में सुधार करना आवश्यक था। सरकार केवल कर वसूली से सन्तुष्ट रहती थी। कृषकों की अवस्था को सुधारने एवं वैज्ञानिक प्रणाली के अनुसार कृषि करने के विषय में सरकार बिल्कुल उदासीन थी। लार्ड कर्जन ने भूमि सुधार की योजनायें बनाई कृषि बैंक (Agricultural Banks) तथा सहकारी समितियों (Co-operative societies) की स्थापना की। कृषि सुधार की नई योजना के नियन्त्रण और निरीक्षण के लिए एक उच्च कृषि अधिकारी की नियुक्ति की गई। पूसा में एक कृषि अन्वेषण संस्था (Agricultural Research Institute) की स्थापना की गई। कृषि सम्बन्धी अन्वेषण और शिक्षण के लिए प्रान्तों में कृषि-कालेज तथा प्रशिक्षण केन्द्र खोले गए।

कृषि की उन्नति के साथ-साथ सिंचाई की व्यवस्था में भी उन्नति हुई। सर आर्थर कॉटन के नेतृत्व में वैज्ञानिक ढंग से सिंचाई की व्यवस्था की गई। एक जांच समिति नियुक्त की गई, जिसकी सिफारिशों के अनुसार पंजाब तथा उत्तर-प्रदेश, में नहर-प्रणालियों का निर्माण प्रारम्भ किया गया। नहर-प्रणालियों का प्रभाव लगभग ६५ लाख एकड़ भूमि पर पड़ा। इस प्रकार अनावृष्टि तथा अकाल से बचने के लिए सिंचाई व्यवस्था अत्यन्त लाभ दायक सिद्ध हुई।

(२) रेल सड़कें तथा जल मार्गों का विकास :—रेलों का जाल बिछाने का श्रेय ब्रिटिश शासन को ही प्राप्त है। यद्यपि रेल लाइन बिछाने का कार्य १८५७ ई० से पहिले प्रारम्भ हुआ था, तथापि इस दिशा में विशेष प्रगति नहीं हुई थी। दुर्भिक्ष जाँच समिति के सुझावों के फलस्वरूप सरकार ने स्वयं तथा कम्पनियों की सहायता से रेल लाइनों को बिछाने का कार्य प्रारम्भ किया। बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ से ही रेल लाइन बिछाने का कार्य बड़ी तेजी के साथ प्रारम्भ हुआ, तथा भारत स्वतन्त्र होने तक देश में रेल लाइनों का जाल बिछ गया। रेल-मार्ग का भारत के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। भारत का व्यापार वाणिज्य बढ़ा तथा देश में सामाजिक समन्वय की भावना विकसित होती दिखाई पड़ी।

रेल-मार्ग के साथ-साथ सड़कों तथा जल-मार्गों का विकास भी हुआ। अंग्रेजों ने सैनिक, तथा अन्य कारणों से सड़कों का निर्माण करना आवश्यक समझा। मुगलों के समय की सड़कों की मरम्मत की गई, तथा नई सड़कों का निर्माण किया गया, जिससे देश के सभी महत्वपूर्ण स्थानों पर सड़कों द्वारा पहुँचा जा सके। अनेक स्थानों

पर सीमेन्ट की सड़के भी बनाई गईं । यद्यपि व्यापार और वाणिज्य के लिये जल-मार्गों का विकास आवश्यक था, तथापि ब्रिटिश सरकार ने केवल उन्हीं जलमार्गों का विकास किया, जिनसे ब्रिटिश व्यापार और वाणिज्य को लाभ पहुंचे ।

वायुयान द्वारा यातायात तथा वस्तुयें भेजने का कार्य भी ब्रिटिश सरकार की देन है । भारत में वायुमार्ग का विकास धीरे-धीरे हुआ एवं अंग्रेजों के समय तक यह साधारणतः सैनिक कार्यों तक सीमित रहा । अ-सैनिक कार्यों के लिए पृथक उड्डयन विभाग की स्थापना हुई ।

(३) डाकघर, टेलीग्राफ, टेलीफोन तथा बेतार का विकास :—अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत डाक–तार विभाग की स्थापना हुई । तार की व्यवस्था लार्ड डलहौजी के समय से प्रारम्भ हुई तथा इसका विकास धीरे-धीरे सारे देश मे हुआ । देश के कोने-कोने में डाकघरों की स्थापना की गई तथा चिट्ठी आदि भेजने के लिये सुगम प्रणाली अपनाई गई । वायुयान द्वारा डाक भेजने की भी व्यवस्था की गई । इस प्रकार कम से कम समय मे काश्मीर से कुमारी अन्तरीप तथा गुजरात से आसाम तक पत्र तथा तार आदि आने और जाने लगे ।

डाक-घर की व्यवस्था के उपरान्त तार, टेलीफोन तथा बेतार (Wireless) द्वारा सन्देश भेजने की व्यवस्था की गई । देश में स्थान-स्थान पर बेतार-घर स्थापित किये गये तथा समुद्र, रेल एवं वायु मार्ग के बीच बेतार द्वारा सन्देश प्राप्त करने और भेजने की व्यवस्था की गई । रेडियो का प्रचार हुआ । इससे भारत तथा विश्व के समस्त देशों के बीच सम्पर्क स्थापित हुआ । इस प्रकार ब्रिटिश शासन-काल में यातायात तथा सवाहन के आधुनिक उपायों का विकास हुआ जिसने भारत की आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित किया ।

(४) औद्योगिक विकास व्यापार और वाणिज्य :-प्राचीनकाल से भारत औद्योगिक देश रहा है । जिस समय आधुनिक युरोप में असभ्य जातियाँ बसी हुई थीं, उस समय भारत अपने शिल्पियों के लिये प्रसिद्ध था । भारत का व्यापार एक ओर फारस की खाड़ी और मध्य पूर्व एशिया, तथा दूसरी ओर जावा और सुमात्रा तक फैला हुआ था । वास्तव में मध्य पूर्व के व्यापारिक मार्ग से होने वाला भारतीय व्यापार ही था, जिसने युरोपीय व्यापारियों को आकर्षित किया । अंग्रेजों के आगमन से भारतीय उद्योग-धन्धे और वाणिज्य बिगड़ने लगा । भारत इंगलैण्ड के अधीन हो चुका था इसलिये भारत इंगलैण्ड की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने लगा, जिसके परिणाम स्वरूप भारत के उद्योग धन्धे समाप्त हो गये ।

प्रथम विश्व युद्ध के समय अंग्रेजों द्वारा भारत में ऐसे कारखाने खोले जिनमें युद्ध की सामग्री तैयार हो सके। युद्ध के उपरान्त इन कारखानों को नष्ट नहीं किया गया वरन् उन्हें रूई, कपड़ा, ऊनी कपड़े आदि कारखानों में बदल दिया गया। इस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध भारतीय उद्योग धन्धे और व्यापार वाणिज्य के लिये वरदान सिद्ध हुआ। युद्ध के उपरान्त लोहा और फौलाद, पटसन, कोयला, पेट्रोलियम, रेशम, मैगनीज, कागज, सीमेन्ट आदि के कारखाने खुले। द्वितीय विश्व-युद्ध ने औद्योगिक विकास को खूब प्रोत्साहित किया। इस प्रकार अंग्रेजों के शासन का भारत के औद्योगिक विकास पर प्रभाव पड़ा।

यद्यपि व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में अंग्रेज अपना स्वार्थ छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे, तथापि औद्योगिक विकास के साथ व्यापार और वाणिज्य में वृद्धि हुई, तथा भारत पश्चिमी और पूर्वी देशों के बीच व्यापार और वाणिज्य का महत्वपूर्ण केन्द्र बना।

सांस्कृतिक प्रभाव :—ब्रिटिश शासन का भारतीय संस्कृति पर स्थायी प्रभाव पड़ा। यद्यपि मुसलमानों ने इस देश पर बहुत समय तक शासन किया, तथापि वे भारतीय संस्कृति की आत्मा एवं चेतना पर स्थायी प्रभाव न डाल सके। अंग्रेजों ने प्रारम्भ से ही भारतीय समाज की दुर्बलताओं से लाभ उठाना प्रारम्भ किया। उन्होंने भारत में केवल राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने के लिए ही संघर्ष नहीं किया, वरन् उन्होंने हमारे देश को अपने देश की संस्कृति में इस प्रकार रँगा कि हम धीरे-धीरे अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृति के दास अथवा उपासक बन गये। यह अंग्रेजों की सबसे बड़ी जीत थी, क्योंकि हमारे देश ने राजनीतिक दासता से मुक्ति प्राप्त की, परन्तु आज भी हम अंग्रेजी संस्कृति के प्रभाव से मुक्त न हो सके।

अंग्रेजी शासन के विकास के साथ पश्चिमी संस्कृति ने भारत में प्रवेश किया। पश्चिमी संस्कृति ने हमारे जीवन के प्रत्येक अङ्ग पर प्रभाव डाला। ब्रिटिश शासन का प्रभाव भारत के समाज पर पड़ा। सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों का अन्त किया गया, तथा आधुनिक सामाजिक प्रथाओं का प्रचार हुआ। ब्रिटिश शासन का भारतीय संस्कृति पर निम्न प्रकार से प्रभाव पड़ा :—

(१) आधुनिक शिक्षा का विकास :—भारत में पाश्चात्य शिक्षा तथा अंग्रेजी भाषा का प्रचार ब्रिटिश शासन की महत्वपूर्ण देन है। ईसाई प्रचारकों ने बंगाल, मद्रास तथा बम्बई में पाठशालायें खोली। भारतियों ने भी ऐसी पाठशालायें खोली। १८३५ ई० में लार्ड बेन्टिक के शासनकाल में लार्ड मैकॉले ने अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा देने की व्यवस्था की। इस कार्य के फलस्वरूप अनेक अंगरेजी पाठशालायें

की स्थापना हुई। इसके उपरान्त लार्ड हार्डिंग ने घोषणा की कि सरकारी नौकरी केवल ऐसे व्यक्तियों को मिलेगी, जिन्होंने अंग्रेजी पाठशाला में शिक्षा प्राप्त की हो। इस घोषणा के लगभग दस वर्ष बाद भारत में लन्दन विश्वविद्यालय के नमूने पर कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई।

अंग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप भारतीयों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन का प्रभाव हमारे देश के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक विचारों पर पड़ा जिसने उसके राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन की तीव्र लालसा उत्पन्न कर दी। १८५४ ई० में ईस्ट इंडिया के बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल के सभापति चार्ल्स वुड ने अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के लिये एक योजना बनाई। इस योजना के कारण से अंग्रेजी शिक्षा प्रसार का अतीव द्रुत प्रारम्भ हुआ। १८८२ ई० तक विश्वविद्यालय की शिक्षा में उन्नति हुई। प्रारम्भिक और माध्यमिक पाठशालाओं के खुलने से अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हुआ। १८८२ ई० में लार्ड रिपन ने जो उस समय गवर्नर-जनरल थे, डब्लू हन्टर के सभापतित्व में कतिपय सदस्यों का शिक्षा आयोग (Education commision) नियुक्त किया। इस आयोग ने वैज्ञानिक प्रणाली के आधार पर शिक्षा देने का सुझाव दिया, तथा यह भी सलाह दी कि देशी भाषाओं की शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाए तथा वैदेशिक ग्रन्थों पर निर्भर रहा जाए।

लार्ड कर्जन के समय से शिक्षा में सुधार होने प्रारम्भ हुए। उसने १९०२ ई० में एक विश्वविद्यालय आयोग (University commission) नियुक्त किया, जिसका उद्देश्य भारतीय विश्वविद्यालयों की जांच सुधार एवं सुझाव द्वारा उनका शिक्षण स्तर ऊँचा करना था। इस आयोग की सलाह के अनुसार १९०४ ई० में युनिवर्सिटी एक्ट बना। इस एक्ट में अनेक दोष थे। १९१७ ई० में माइकेल सैडलर के सभापतित्व में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग नियुक्त हुआ। इस आयोग की सिफारिशों पर अन्य विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। प्रथम विश्व-युद्ध के उपरान्त राष्ट्रीय चेतना, साम्प्रदायिकता आदि के कारण लगभग ६ विश्व-विद्यालयों की स्थापना हुई। इसी समय पूना में इण्डियन वीमेन्स युनिवर्सिटी की भी स्थापना हुई।

प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिये ८ वर्ग मील पर एक प्राथमिक विद्यालय खोला गया। माध्यमिक शिक्षा की ओर भी इसी प्रकार ध्यान दिया गया। जिला बोर्ड एवं म्युनिसिपैलिटियों को भी स्कूल खोलने की आज्ञा दी गई। इस प्रकार ब्रिटिश शासन के प्रभाव स्वरूप भारत में आधुनिक ढंग पर अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हुआ। इस शिक्षा का भारत की संस्कृति पर स्थाई प्रभाव पड़ा। स्वतन्त्र भारत अब शिक्षा के क्षेत्र में अनेक प्रयोग कर रहा है।

(२) प्रचीन साहित्य का पुनरुज्जीवन तथा आधुनिक भारतीय साहित्य का विकास—अंग्रेजों में बहुत से ऐसे व्यक्ति थे जो भारत की प्राचीन संस्कृति की ओर आकृष्ट हुए। इन्होंने भारत के प्राचीन ग्रन्थों की पुनः प्राप्ति के लिये प्रयत्न किया। अंग्रेजों ने वेदों का छापना प्रारम्भ किया। इसी प्रकार युरोप के विद्वानों ने भी बौद्ध एवं ब्राह्मण ग्रन्थों का सम्पादन और अनुवाद करना प्रारम्भ किया। सर चार्ल्स विल्किन्स, सरविलियम जोन्स, मोनियर विन्टर, निटज्, विलियम्स, मैक्समूलर जसे विद्वानों ने संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद किया, एवं इन पर टीकायें लिखी। जर्मनी के एक विद्वान ने दर्शन ग्रन्थों पर भाष्य लिखे। पोलैण्ड के महान् संस्कृत के आचार्य एवं माईकेलस्की ने अपना समस्त जीवन भारत के प्राचीन साहित्य के पुनरुज्जीवन के लिए अर्पण कर दिया। इङ्गलैण्ड और युरोप के विद्वानों के परिश्रम स्वरूप भारत का प्रचीन गौरव विश्व के सम्मुख प्रस्तुत हुआ। इसका भारत की संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा। प्राचीन साहित्य के पुनरुज्जीवन से देश का राष्ट्रीय गौरव बढ़ा, और सास्कृतिक जागरण हुआ। प्राचीन भाषाओं के अध्ययन के लिये बंगाल एशियाटिक सोसायटी की स्थापना हुई।

ब्रिटिश शासन की प्रान्तीय भाषाओं पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। प्रत्येक प्रान्त में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हुआ। प्रान्त के लोगों ने अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया एव प्रान्तीय साहित्य को अंग्रेजी साहित्य की विशेताओं से रंग दिया। इस परिवर्तन के फलस्वरूप भारत की प्रान्तीय भाषाओं मे आधुनिक साहित्य का विकास हुआ। साहित्यिकों ने अपनी अपनी भाषा के साहित्य में अंग्रेजी भावना, शैली, दृष्टिकोण, निरुपण आदि अपना ली।

भारत में गद्य साहित्य का विकास अंग्रेजी पुस्तकों के अनुवाद से प्रारम्भ हुआ। वास्तव में हमारे गद्य-साहित्य का विकास अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव स्वरूप हुआ। हमारे नाटकों पर भी अंग्रेजी साहित्य की छाप स्पष्ट नज़र आती है। गाल्सवार्दी तथा वर्नार्ड शॉ के नाटकों का अनुकरण किया गया। एकांकी नाटक अंग्रेजों की महत्वपूर्ण देन है।

उपन्यास एवं छोटी छोटी कहानियों पर भी अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव पड़ा। अनुवाद और मौलिक गन्थ लिखे गये। इन ग्रन्थों से नवीन साहित्यक परम्परा का विकास हुआ एवं ज्यों ज्यों प्रान्तीय भाषाओं के साहित्यकों का विदेशी .. का ज्ञान बढ़ता गया, त्यों त्यों हमारी साहित्यिक परम्परा बदलती गई।

काव्य के क्षेत्र में भी अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव पड़ा। सॉनेट (Sonnet) ּ (Ode) की शैली का अनुकरण किया गया। अतुकान्त कविता verse) का विकास हुआ एवं भारत के प्रसिद्ध कवियों ने अतुकान्त

कवितामों के रचना के अंग्रेजी गीत काव्य (Lyrics) का भी अनुकरण किया गया। रोमान्टिकवाद (Romanticism) का भारतीय काव्य पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा। इस प्रकार भारत का प्राधुनिक काव्य का विकास नवीन ढंग से हुआ।

निबन्ध रचना, भाषा-कोष, व्याकरण, तथा ऐतिहासिक साहित्य के विकास पर अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव पड़ा। समाचार पत्रों में लिखने की शैली एवं सम्पादन कला भी अंग्रेजो की देन है।

(३) ललित कलाओं का विकास.—ब्रिटिश शासन का भारत की ललित कलाओं पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। यद्यपि अंग्रेजो की कलात्मक भावनायें पूर्णतः विकसित हो चुकी थी, तथापि उन्होने भारत की ललित कलाओं के प्रति विशेष रुचि दिखाई। अंग्रेजो ने भारत की कलात्मक कृतियो की रक्षा एवं अध्ययन के लिये विभागो का संगठन किया। इन विभागो पर योग्य व्यक्ति नियुक्त किए गए।

भारतीय चित्रकला पर अंग्रेजी तथा युरोपीय प्रणाली (Technique) का प्रभाव पड़ा। रंग, चित्रों की रचना, चित्रों का विषय, एवं चित्रकला के अन्य अंगों पर अंग्रेजी एवं युरोपीय प्रभाव पड़ा जिसके फलस्वरूप भारत में प्राधुनिक शैली का विकास हुआ। तैल-चित्र (Oil painting) पेस्टल रंग, सूखे रंग का पानी के साथ प्रयोग तथा पेन्सिल और स्याही द्वारा चित्रांकन की पद्धति का विकास अंग्रेजों की ही देन है। इस प्रकार चित्रों का विषय एवं उसकी सजावट में भी अंग्रेजी चित्रकला का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।

वास्तुकला के क्षेत्र में अंग्रेजो ने एक नवीन शैली को जन्म दिया, जिसमे भारतीय एवं युरोपीय शैलियो का सुन्दर समन्वय था। यहां पर यह याद रखने योग्य बात है कि भारत मे जितने गिरजाघर बने वे युरोपीय शैली के ही थे, परन्तु निवास स्थान, सचिवालय अथवा अन्य कार्यों के लिये जो भवन बने उनमें भारतीय एवं विदेशी शैलियों का समन्वय था। इस नीति के फलस्वरूप अंग्रेजों के गिरजाघर पुराने ढंग के हैं, तथा उनकी बनाई हुई इमारतें नवीन ढंग की। दिल्ली का राष्ट्रपति भवन, सचिवालय, कलकत्ते का विक्टोरिया मेमोरियल हॉल, मद्रास के उच्च न्यायालय का भवन, तथा बम्बई की कुछ इमारतों में देशी और विदेशी शैलियों का सुन्दर समन्वय दिखाई पड़ता है।

अंग्रेज ठंडे देश के रहने वाले थे अतः उनके लिए भारत की गर्मी में काम करना असम्भव था। उन्होंने प्रत्येक प्रान्त के सुन्दर पहाड़ी स्थलों पर बगले, क्लब, सचिवालय आदि बनाने प्रारम्भ किये जिससे वे गर्मियों से छुटकारा पा सकें तथा काम भी कर सकें। इस नीति के फलस्वरूप भारत में पहाड़ी नगरों (Hill Stations) का विकास हुआ जो आज भी हमारे लिये पर्यटन तथा स्वास्थ्य उन्नति के स्थान है।

भारत की मूर्तिकला पर भी अंगरेजी शैली का प्रभाव पड़ा। यह प्रभा मुख्यत. टेकनिक के रूप में था।

संगीत और नृत्य पर भी अंगरेजी प्रभाव पड़ा। यद्यपि हमारे देश शास्त्रीय संगीत पर विदेशी प्रभाव नाम मात्र के लिये भी नहीं पड़ा तथापि लोक-प्रि संगीत पर अंगरेजी तथा युरोपिय प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर है। कविगुरु रविन्द्रना ठाकुर के संगीत पर अंगरेजी प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता हैं। गीतों की रचन एवं उनकी स्वरलिपि में अंगरेजी गीतों का प्रभाव पड़ा। यन्त्र संगीत के क्षेत्र मे धीरे धीरे अंगरेजी धुनों का अनुकरण किया गया। आर्केस्ट्रा (Orchestra) का प्रारम्भ विदेशी शैली की देन है।

नृत्य के क्षेत्र मे भी अंगरेजो ने युरोपीय शैली का अनुकरण किया था। इस अनुकरण का प्रभाव भारत पर भी पड़ा। यद्यपि शास्त्रीय नृत्यों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ तथापि समूह नृत्य के क्षेत्र में 'बैले' (Ballet) अंगरेजों की ही देन है।

नाट्य कला के क्षेत्र मे नाटयशाला का निर्माण, मंच की सजावट एव 'टेकनिक', रोशनी डालने की प्रणाली, वेश-भूषा, मेक-अप, ओडिटोरियम (Auditorium) की व्यवस्था, ध्वनि प्रसारण एव नियंत्रण की प्रणाली आदि अंगरेजों की ही देन है। भारतीय नाट्यशालाओं एवं मच का आधुनिकरण अंगरेजी संस्कृति की देन है।

(४) धार्मिक और दार्शनिक विचारों में परिवर्तन:—ब्रिटिश शासन काल में ईसाई धर्म प्रचारको ने अपने धर्म का प्रचार करना प्रारम्भ किया। उन्होंने स्कूल और अस्पताल खोले तथा भारतीय जनता पर इस प्रकार का प्रभाव डाला कि विश्व मे ईसाई धर्म के अतिरिक्त कोई और धर्म न तो इतना उदार है और न इतना सचा। इस प्रचार का प्रभाव शिक्षित वर्ग पर पड़ा। कुछ मनुष्यों ने ईसाई धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन किया तथा ईसाई बन गए; परन्तु इसका सबसे अधिक प्रभाव ब्रह्म समाज के विकास पर पड़ा। ईसाई धर्म ने हिन्दू धर्म को चुनौती दी एवं इस चुनौती के परिणाम स्वरूप भारत में सुधारवादी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन के प्रमुख नेता थे राममोहनराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस आदि। इस धार्मिक आन्दोलन के परिणाम स्वरूप हिन्दू धर्म का पुनरुज्जीवन हुआ।

दार्शनिक विचारों पर ब्रिटिश शासन का प्रभाव पड़ा। यद्यपि भारत में दार्शनिक ... पूर्ण विकास हो चुका था तथापि पाश्चात्य दर्शन का भारतीय दार्शनिक प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव साधारणतः राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में

दिखाई पड़ा। नैतिक एवं धार्मिक क्षेत्र में विदेशी विचारों ने भारतीय दर्शन को प्रभावित नहीं किया।

(५) विश्व के देशों से सम्पर्क:—ब्रिटिश शासन ने भारत को विश्व के समस्त देशों से परिचित कराया। अमेरिका, युरोप, आस्ट्रेलिया, न्युजीलेण्ड, अफ्रीका तथा अन्य देशों के साथ भारत का जो सांस्कृतिक एवं आर्थिक सम्बन्ध स्थापित हुआ वह ब्रिटिश शासन की देन है। यदि जर्मनी के संस्कृत के विद्वान, वेदों का संग्रह करना चाहते थे तो उन्हें यह कार्य ब्रिटिश सरकार के सहयोग से करना पड़ता था। यदि अमेरिका, जापान अथवा जर्मनी के व्यापारी भारत में अपनी वस्तुएँ बेचना चाहते थे तो उन्हें ब्रिटिश शासन के सहयोग पर भरोसा करना पड़ता था। इस प्रकार भारत का विश्व के जिस देश से भी सम्बन्ध स्थापित हुआ उसका श्रेय ब्रिटिश शासन को प्राप्त है। अंगरेजों के आर्थिक स्वार्थों की पूर्ति के कारण भारत को विश्व से परिचित करना आवश्यक था। इस सम्पर्क के परिणाम स्वरूप हमारे देश के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक जीवन पर प्रभाव पड़ा।

(६) वैज्ञानिक भावना और प्रणाली का विकास:—अंगरेजी शिक्षा का भारतीय विचार धारा पर गहरा प्रभाव पड़ा। किसी भी समस्या पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने की इच्छा, प्रत्येक कार्य में वैज्ञानिक प्रणाली का अनुसरण तथा वैज्ञानिक तथ्यों की खोज करने की जिज्ञासा अंगरेजी भाषा और शासन की देन है। रामानुज, जगदीश चन्द्र बोस, सी. वी. रमण, डा० मेघनाद शाह, पी. सी. राय, जे. सी. घोष बीरबल सहानी, आदि वैज्ञानिकों ने भारत में वैज्ञानिक भावना और प्रणाली के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया। आधुनिक ढग की मशीनें, रेडियो, टेलिविजन, तार, टेलीफोन तथा अन्य प्रकार के वैज्ञानिक यंत्रों से भारतीय विचार धारा में महान् परिवर्तन दिखाई पड़ा। हमारे देश की धार्मिक और सामाजिक विचार धारा में परिवर्तन दिखाई दिया। जिन वस्तुओं को हम दैविक घटना मान कर डरते अथवा आनन्द मनाते थे उनका वैज्ञानिक विश्लेषण हुआ जैसे—चन्द्र अथवा सूर्य ग्रहण, राहु-केतु का ग्रास नहीं रह गया वरन् उसका वैज्ञानिक कारण स्पष्ट रूप से हमारी समझ में आने लगा। इसी प्रकार दैनिक जीवन की घटनाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण होने लगा एवं इससे वैज्ञानिक भावना और प्रणाली का विकास हुआ।

(७) सामाजिक परिवर्तन:—ब्रिटिश शासन का हमारे देश के समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। हमारे देश की वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन, सामाजिक चलन आदि में अंगरेजी छाप स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगा। वेश-भूषा में पतलून, कोट, कमीज, टाई, हेट आदि का प्रयोग प्रारम्भ हुआ; खान-पान, में अंगरेजी

शिष्टाचार और बर्तनों का प्रयोग हुआ; इसी प्रकार रहन-सहन तथा सामाजिक च
में अंगरेजों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ा।

१८५७ ई० के उपरान्त अंगरेजों ने पिट्ठुओं का एक विशेष वर्ग बनाया इस वर्ग में उच्च मध्यम वर्ग तथा मध्यम वर्ग के लोग थे। वास्तव में इस वर्ग जन्म एक महान उद्देश्य को लेकर हुआ। यह उद्देश्य था—भारत में अंगरेज शासन को चिरस्थायी बनाने के लिए एक ऐसे वर्ग की आवश्यकता जो ब्रिटि शासन को सर्वोत्कृष्ट माने, वफादारी से राष्ट्रीय आन्दोलन को भरसक दबाने चेष्टा करे, अंगरेजी स्वार्थों की रक्षा करे, तथा किसानों और अपने क्षेत्र के मनुष्य पर इस प्रकार का प्रभाव रक्खे कि वे कभी भी ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रो करने का साहस तक न करें। इन समस्त कार्यों के पुरस्कार स्वरूप उन्हें ब्रिटि साम्राज्य की पदवियों से विभूषित किया गया, तोपों की सलामी निश्चित की ग अंगरेजों के क्लबों में बैठने और मिलने का मौका दिया गया, तथा इंगलैण्ड जा पर सम्राट अथवा रानी से हाथ मिलाने का भी अवसर दिया गया। इस वर्ग क सन्तानों को चाहे वे अनपढ़ और मूर्ख क्यों न हों नौकरियां दी गईं। इस प्रका अंगरेजों ने हमारे समाज में एक ऐसे वर्ग या संगठन किया जो भारतीय होते ह भी अपने कार्यों, चाल-चलन तथा बोलचाल से विदेशी लगने लगे। यह वर्ग हमा राष्ट्रीय जागरण के लिये अहितकर सिद्ध हुआ।

साधारण मध्यवर्ग पर विदेशी शिक्षा का दूसरे रूप में प्रभाव पड़ा। जिन्होंने मैजिनी, बर्क, शेरीडन आदि के भाषण पढ़े, जिन्होंने फ्रांस की क्रान्ति, अमेरिका का स्वातंत्र्य युद्ध, इंगलैण्ड की रक्तहीन क्रांति तथा आयरलैण्ड के संघर्ष के विषय में पढ़ा उन्होंने भारत में स्वाधीनता का मन्त्र फूंका। उन्होंने सब कुछ त्याग कर भारत की परतन्त्रता की बेड़ियाँ तोड़ीं। यह वर्ग भारत के समस्त कल्याणकारी कार्यों का पथप्रदर्शक बना। इस प्रकार अंगरेजी शासन के परिणाम स्वरूप हमारा सामाजिक ढांचा बदला।

(८) भारत में पुनर्जागरण—उपर्युक्त सभी प्रभावों के फलस्वरूप भारत में पुनर्जागरण (Renaissance) हुआ। प्रारम्भ में यह केवल बौद्धिक जागरण था परन्तु क्रमश इसने नैतिक शक्ति का रूप धारण कर लिया। कालान्तर में नैतिक शक्ति का भारत की राजनैतिक विचार धारा पर प्रभाव पड़ा तथा इसने स्वतन्त्रता आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। सामाजिक जीवन में अराजकता और अव्यवस्था के स्थान पर सुधार हुआ, राजनैतिक जीवन में मुक्ति आन्दोलन छिड़ा, साहित्य और ललित कला के क्षेत्र में आधुनिकरण हुआ, शिक्षा के क्षेत्र में अंगरेजी भाषा का प्रचार हुआ, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत ने कदम बढ़ाया तथा विविध प्रकार के आन्दोलनों के भारत पुरानी रूढ़ियों को छोड़कर नवनिर्माण की ओर बढ़ा।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ब्रिटिश शासन की स्थापना से पूर्व भारत की सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक अवस्था दयनीय थी। अंग्रेजों के सम्पर्क से इन सब पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव अवश्य पड़ा, किन्तु फिर भी वे विकासोन्मुख हुए। सामाजिक व धर्म सुधार आन्दोलन से भारत में एक नवचेतना प्रस्फुटित हुई। शिक्षा के विस्तार से भारतवासियों का अन्धविश्वास दूर हुआ, तथा उनके मस्तिष्क विकसित हुए। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पश्चिमी-सम्पर्क बढ़ा और इससे राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव हुआ। ब्रिटिश शासन से भारत का आर्थिक शोषण अवश्य हुआ तथा अनेक आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ गईं, फिर भी हमें यह अवश्य स्वीकार करना पड़ता है कि ब्रिटिश शासन से ही यहाँ औद्योगिक विकास का बीजारोपण हो गया। भारत ने ब्रिटिश प्रभुता के आधीन रहते हुए भी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक क्षेत्रों में उन्नति की।

Topics for Essay निबन्ध के विषय

1. Write an essay on the social condition of India during the British rule explaining the reforms introduced during that period.
   अंग्रेजों के समय की भारत की सामाजिक अवस्था तथा उस समय उसमें किये गये सुधारों पर एक निबन्ध लिखिये।

2. Write an essay on the impact of the British rule on the political life of India.
   "ब्रिटिश शासन का भारत के राजनैतिक जीवन पर प्रभाव" विषय पर एक निबन्ध लिखिये।

3. Write an essay on the economic life of India which changed under the British rule.
   ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भारत के आर्थिक जीवन में कहां तक परिवर्तन हुए। एक निबन्ध लिखकर स्पष्ट कीजिए।

4. Is it correct to say that the greatest impact of Britrish rule was on our culturel life ?
   क्या यह सत्य है कि ब्रिटिश शासन का सबसे अधिक प्रभाव हमारे सांस्कृतिक जीवन पर पड़ा ?

5. What is the contribution of the Britrish rule to our social & religious life ?
   ब्रिटिश शासन की हमारे सामाजिक तथा धार्मिक जीवन को क्या देन है ?

Brief Notes

Write brief notes on the following:—

(a) *Bureaucracy* (b) *Beginning of Local-self Government in India* (c) *Decentralization Commission* (d) *Indian Renaissance.* 1967
(e) Proportionate Representation.

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिये:—

(क) नौकरशाही (ख) भारत में स्वायत्त-शासन का समारम्भ (ग) विकेन्द्रीकरण आयोग (ख) भारत में पुनर्जागरण (ङ) प्रतिनिधित्व प्रणाली ।

Objective Type Questions

Answer in not more than three lines or in "Yes" or "No" where required:—

(a) Communalism in India was a sequal to British rule—'Yes' or 'No'.

(b) Press and News paper got an impetus under the British rule—'Yes' or 'No'.

(c) Western culture made Indians irreligious—'Yes' or 'No'

(d) *English literature effected indian Poetry—Give the names* of the type of Poetry emulated by Indians.

(e) Give the names of five most important Indian Scientists of the present century.

तीन पंक्तियों से अधिक उत्तर न दें—जहां आवश्यकता हो "हां" अथवा "ना" में उत्तर दें—

(क) भारत मे साम्प्रदायिकता की भावना ब्रिटिश शासन की देन है—'हां' अथवा 'ना'

(ख) प्रेस तथा समाचार पत्रों को ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत प्रोत्साहन मिला हैं—'हां' अथवा 'ना'

(ग) *पश्चिमी संस्कृति ने भारतवासियों को अधार्मिक बना दिया,—'हां'* अथवा 'ना'

(घ) "अंगरेजी साहित्य ने भारतीय कविता को प्रभावित किया'–उन काव्य शैलियों का नाम बतलाइये जिनमें भारतवासियों ने अंगरेजों की नकल की ।

(च) वर्तमान शताब्दी के पांच प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिकों के नाम बतलाइये ।

अध्याय ५

भारत में पुनर्जागरण

प्राचीन आध्यात्मिक तथा अर्वाचीन व्यावसायिक भावना का समन्वय

(The story of Indian Renaissance etc.)

भारतवर्ष संसार के देशों में अपना उच्चतम् आदर्श स्थान रखता है। इसकी संस्कृति अत्यन्त मौलिक व प्राचीन है। समाज में अनेक विषमताओं के रहते हुए भी देश में एकता की भावना का गहरा बीज रोपा हुआ पाया जाता है। यह एक अत्यन्त प्राचीन देश है, जिसका इतिहास अनूठा व निराला है। यह इतिहास विदेशी आक्रमणों से व उनके शासन की घटनाओं से परिपूर्ण है किन्तु, यहाँ की संस्कृति इतनी प्रबल व उदार रही है कि सबका पाचन करती रही है। फलस्वरूप अनेक संकटों का सामना करते हुए तथा सब प्रलोभनों से अपने आपको बचाते हुए, यहां के संतों ने ऐसे साहित्य व समाज का सृजन किया, जिसने भारतीय संस्कृति की मर्यादा को उसकी मौलिकता का पुट दिए हुए, सुरक्षित रखा है। अनेकों परिस्थितियां इस एकता को बनाने में अनुकूल हुई हैं।

भिन्नता रखने में भी भारतीय समाज अग्रगणी है। जाति पाँति और फिर उसमें भी सहस्रों शाखायें; विभिन्न धर्मों का संग्रहालय; आर्थिक विषमता, प्राकृतिक विषमता आदि अनेकों विषमतायें इस महान देश में पाई जाती हैं; किन्तु फिर भी सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भारत एक है। भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि यहां के दर्शन में निहित है और यही संस्कृति यहां के नागरिक जीवन को विशुद्ध व पवित्र करती रहती है। जहां के नागरिकों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि इतनी आदर्श पूर्ण हो कि जिसमें नागरिक जीवन को पग-पग पर संचालित करने का विधान पाया जावे, वहां का नागरिक जीवन हेय हो, यह एक बड़े आश्चर्य की वस्तु है।

राजनैतिक इतिहास का नागरिक जीवन पर पूरा प्रभाव पड़ता है। सहस्रों वर्षों से भारत दासता की शृंखलाओं में जकड़ा रहा। न्यूनाधिक आर्थिक शोषण, सांस्कृतिक व सामाजिक आघात इसे सहन करने पड़े, किन्तु धन्य है, यहां के मनीषियों को जिन्होंने संस्कृति निर्माण में योग देकर नैतिक स्तर सबके सामने रक्खा। भारत के नागरिकों के सामने जो आदर्श पाया जाता है और जिस आदर्श पर सहस्रों वर्ष पूर्व उसके पुरखे चलते रहे हैं, वह आज भी केवल पुस्तकों की वस्तु नहीं है।

इसमें सन्देह नहीं कि नागरिक स्तर सहस्रों वर्षों के आघात से जर्जर होकर रसातल तक भी पहुँच गया, किन्तु फिर भी निराशा के लिए स्थान नहीं है। नवनिर्मित भारत अवश्य ही उस आदर्श को लाने में सफलीभूत होगा।

लगभग ७०० वर्ष के मुस्लिम शासन ने तथा २०० वर्ष के अंग्रेजी शासन ने यहां के नागरिक जीवन पर अनेक घात किये। मुस्लिम शासकों ने नागरिकों को आलसी, विलासप्रिय, धर्मच्युत व संकुचित विचार वाला बनाया तो अंग्रेजों ने उनको अपनी संस्कृति के प्रति विश्वास ही डिगा दिया। नौकरियों के लिए प्रलोभन देकर वेषभूषा से प्रभावित कर और ऐसे ही अन्य प्रलोभनों के साथ-साथ उनकी आर्थिक शोषण की नीति ने भारतीय नागरिक को पंगु बना दिया। प्रतिक्रिया होना अवश्यम्भावी था। धार्मिक आन्दोलनों ने, अंग्रेजी शिक्षा ने तथा देश के नवयुवकों के विदेशी गमन (मुख्यतया इङ्गलैंड में) ने सोये हुए देशवासियों में नया जोश भर दिया। फलतः उन्हें अपनी हीन दशा का तथा गिरते हुए नैतिक व सांस्कृतिक जीवन का आभास हुआ और नागरिकता के नव-निर्माण का श्रीगणेश हुआ। देश राजनैतिक दासता से मुक्त हुआ और भारतीय नागरिकों में जो कमियां आ गई थी, वे क्रमशः दूर की जाने लगी। आज का भारत जागरूक है और पुनः राम राज्य की आदर्श नागरिकता का स्वप्न देख रहा है, यह देश का सौभाग्य है। विदेशी अनुकरण जो अन्धे होकर किया जा रहा था, उसका बहिष्कार किया गया। ग्रामोद्धार, शिक्षा-प्रचार, आर्थिक उन्नति, हरिजनोद्धार, स्वास्थ्य व सफाई आदि बहुमुखी योजनाओं को लिए, आज का नागरिक सदियों की आई कमजोरी को दूर करने में संलग्न है।

धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आन्दोलन—धर्म का जीवन में बहुत बड़ा महत्व है। उसे केवल ईश्वर आराधना तक ही सीमित नहीं समझना चाहिए वास्तव मे यह जीवन का एक ढंग भी है। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो संसार में सभी धर्मों के मूल में एक ही बात है किन्तु तरीके भिन्न-भिन्न होने से ही सब झगड़े उठते हैं। भारतीय जीवन में तो धर्म का बहुत ही उच्च स्थान है। भारत एक आध्यात्मिक देश रहा है जब कि विदेशों का मूल आधार भौतिकवाद है। आधुनिक भारतीय जीवन में धर्म भौतिक प्रगति को रोके हुए है और इस प्रकार आज के संसार में भारत के पतन का एक कारण यहां का धर्म भी माना जाता है।

भारत के मुख्य धर्मों में हिन्दू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म, सिक्ख धर्म, ईसाई और पारसी धर्म है। इन धर्मों की अलग अलग विवेचना करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि भारत में

(२) उनके अनुसार जाति व सम्प्रदाय का भेद समझे बिना प्रत्येक मनुष्य को परमेश्वर की उपासना का अधिकार मिलना चाहिए ।

(३) मूर्ति-पूजा का उन्होंने खण्डन किया ।

(४) उपासना में वे बलि का प्रयोग नहीं करना चाहते थे ।

(५) उनके अनुसार धार्मिक स्थानों पर केवल ऐसी प्रार्थनाएं व कथाएं होंगी जो केवल मानव को भगवत्-भक्ति की ओर आकर्षित करें ।

श्री जे. एन. फरखुहर ने लिखा है कि राजा राममोहन राय उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दू जाति में धार्मिक, सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी क्षेत्रों में स्फूर्तिदायक प्रगति लाने वाले कर्णधार हैं ।

प्रार्थना समाज—सन् १८६७ में महाराष्ट्र में इस समाज की स्थापना हुई । यह विशेषतया ब्रह्म समाज से प्रभावित था । इसके प्रमुख सदस्य रानाडे, भण्डारकर, चन्द्रावकर आदि थे । यह समाज सामाजिक सुधार, विशेषतः जाति-प्रथा का अन्त, विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा आदि बातों पर जोर देता था । धार्मिक विचारों में यह मुख्यतः ब्रह्म समाज से प्रभावित था ।

आर्य समाज—इसके प्रारम्भ करने वाले स्वामी दयानन्द सरस्वती थे । उनका जन्म सन् १८२४ मे गुजरात के एक ब्राह्मण परिवार मे हुआ था । वे हिन्दू धर्म में फैले आडम्बरों को देख घबरा उठे और इनके सुधार के लिए उन्होंने एक जबर्दस्त आन्दोलन की ठानी । उनका उद्देश्य पुनः आर्य धर्म स्थापित करना था । मूर्ति पूजा क वे कट्टर विरोधी थे । अनेक वर्षों के भ्रमण अध्ययन व साधु-संन्यासी सगति से उन्होन धर्म का सार निकाला । उन्हेने वेदो के प्रति अपार श्रद्धा रखना प्रत्येक आर्य का धम बतलाया । उनके व्याख्यान सरल भाषा में तर्क युक्त होते थे । सन् १८७५ मे बम्बई मे, फिर लाहौर तथा उत्तर प्रदेश में आर्य समाज की स्थापना हुई । विशेषतः पजाब मे इसका सगठन व प्रचार हुआ । पाकिस्तान बनने से आर्य समाज को बहुत भारी धक्का लगा ।

स्वामी दयानन्द की शिक्षाओं का सार इस प्रकार है:—

ससार का निर्माता ईश्वर एक है और मूर्तियों द्वारा उसकी पूजा करना मूर्खता है । वेद ईश्वरीय वाणी है और उसमें ही समस्त सत्य निहित है । वेद कर्म और आवागमन का सिद्धान्त सिखलाते हैं और आवागमन से छुटकारा पाने का नाम ही मोक्ष है । आर्य समाज का क्षेत्र व्यापक रहा है । यह धार्मिक, सास्कृतिक सामाजिक व राजनैतिक आन्दोलन है और राष्ट्र की सर्वाङ्गीण उन्नति करना ही इसका ध्येय है ।

रामकृष्ण-मिशन—स्वामी विवेकानन्द इसके संस्थापक रहे हैं और अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस के नाम से उन्होंने इसे चालू किया था। बेलूर तथा मायावती में इनके मठ भी स्थापित हुए हैं। रामकृष्ण बंगाली ब्राह्मण थे। इनके पिता पुजारी थे। इन्होंने कम अवस्था में ही संन्यास ले लिया। उनके मतानुसार ईश्वर निराकार है तथा मनुष्य के ज्ञान और पहुँच के बाहर है। संसार के सब काम ईश्वर से संचालित व निरीक्षित हैं।

इनके शिष्य विवेकानन्द इस मिशन के संस्थापक रहे हैं। ये प्रारम्भ में नास्तिक थे। उन्होंने भारतीय धर्म तथा दर्शन का सुचारु रूप से अध्ययन किया। पुनः वे सर्व धर्म सम्मेलन में शिकागो गये। ये अमेरिका में प्रचार करते हुए, इङ्गलैण्ड होते हुए भारत आये और यहाँ रामकृष्ण मिशन संगठित किया।

इनका कहना है कि प्रत्येक धर्म सत्य है, इस कारण धर्म-परिवर्तन मूर्खता है। ईश्वर निराकार है और आत्मा ईश्वरीय है। हिन्दू संस्कृति "सत्यं शिवं, सुन्दरम्" है और जगद्गुरु है। पाश्चात्य भौतिकवाद के प्रभाव से इसकी रक्षा करना प्रत्येक हिन्दू का कर्तव्य है। इस मिशन ने सामाजिक क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है। दीन दुखियों की सहायता करना, बाढ़ और अकाल पीड़ितों की सहायता करना तथा हिन्दू संस्कृति को उच्चतम स्थान देना इनके कुछ कार्य क्षेत्र हैं।

अन्य आन्दोलन—भारत में ऊपर लिखे प्रमुख आन्दोलनों के अतिरिक्त कुछ छोटे-मोटे और कई आन्दोलन हुये हैं जैसे राधास्वामी सत्संग, देव-समाज इत्यादि जिन्होंने सीमित क्षेत्रों में सुधार किये हैं। दक्षिण में भी इसी प्रकार कार्य हुआ है।

मुस्लिम सुधार आन्दोलन—पाकिस्तान होने से स्थिति दूसरी हो गई है अन्यथा हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही राष्ट्र के अङ्ग थे। वैसे भारत में आज भी यही बात मान्य है। इस कारण मुस्लिम आन्दोलनों का भी संक्षिप्त विवेचन अनिवार्य है। मुसलमानों में मुख्यतया तीन आन्दोलन वर्णन योग्य हैं वहाबी आन्दोलन, अलीगढ़ आन्दोलन तथा अहमदिया आन्दोलन। मुसलमानों में कुरीतियों का आना स्वाभाविक ही था क्योंकि शिक्षा की उनमें कमी थी तथा वे जिन्होंने मुसलमान धर्म अपनाया था अपने संस्कारों को भुला न सके। अतः यहाँ भी मूर्ति-पूजा इत्यादि के स्थानों की पूजा आदि उन्होंने चालू कर दी।

वहाबी आन्दोलन—यह आन्दोलन १८ वीं शताब्दी के अन्तिम काल में अरब में आरम्भ हुआ। भारत में सैयद अहमद बरेलवी ने इसे चालू किया। इनके द्वारा कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया गया। यह केवल सम्प्रदायिक आन्दोलन था जो अपने इस्लाम का प्रचार करना चाहता था।

समाज में इस प्रणाली के फलस्वरूप ही पृथकता की भावना आ गई है। एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति के व्यक्ति के साथ हिल-मिल नहीं सकता। भारत की प्रमुख समस्या इस प्रणाली का ही प्रत्यक्ष परिणाम है। व्यापक जनतंत्र के लिए सभी जातियों के लिए समान रूप से मिलकर सार्वजनिक उन्नति के लिए कन्धे से कन्धा मिला कर प्रयत्न करना आवश्यक है। जाति-प्रथा और जनतन्त्र परस्पर विरोधी हैं।

जाति-प्रथा में अनेकों गुण विद्यमान रहे हैं, किन्तु आजकल तो जाति-प्रथा दोषों का समूह है। धार्मिक प्रगति तथा आध्यात्मिक प्रगति भी प्रत्यक्ष में जाति प्रथा के कारण ही रुकी हुई है। इसमें सन्देह नहीं कि शिक्षा के प्रसार से शिक्षित वर्ग में इसके बन्धन इतने जटिल नहीं रहे हैं फिर भी भारत के अधिकांश लोग अशिक्षित हैं। इस कारण जाति-प्रथा की बुराइयाँ इतनी क़ानून के द्वारा नहीं हटाई जा सकती जितनी शिक्षा से तथा जाति-प्रथा के प्रतिकूल वातावरण बनाने से। जितने धार्मिक क्षेत्र में बीसवीं या उन्नीसवीं शताब्दी में सुधारक हुए सबने इस प्रथा के जटिल बन्धनों को ढीला करने पर जोर दिया। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियोसोफीकल समाज आदि ने इस प्रथा का अनुमोदन नहीं किया। बीसवीं शताब्दी में महात्मा गांधी ने इसका विरोध किया। यह सब कुछ होते हुए भी इस प्रथा की कठोरता कुछ कम हो गई है किन्तु अब भी इसका पूरा प्रभाव है। शिक्षित वर्ग में खान-पान, कहीं-कहीं विवाह आदि के बन्धन टूटे हैं फिर भी इस ओर सुधार की आवश्यकता अधिक प्रतीत होती है।

संयुक्त परिवार—भारतीय समाज में परम्परा से चली आने वाली प्रणाली संयुक्त परिवार भी है। एक परिवार में पति-पत्नी, उनके बच्चे, बहुत निकट सम्बन्धी जैसे चाचा-चाची, दादा-दादी, भाई-भतीजे इत्यादि सब सम्मिलित रहते हैं। प्राचीन काल में जन संख्या कम थी। भारतीय नागरिक सात्विक प्रवृत्ति का था, तथा त्याग और तपस्या हर एक का कर्तव्य था। इस कारण इस प्रथा के प्रत्यक्ष लाभ थे। एक साथ रहने से परस्पर सहयोग, त्याग व सहानुभूति की भावना उत्पन्न होती रहती थी। किसी कुटुम्ब के सदस्य को दुर्घटना, बीमारी, बुढ़ापे आदि के कारण जीवन निर्वाह की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता था। आय के साधन अधिक होते थे। विपत्ति के समय परिवार एक इकाई की तरह काम करता रहा है। संयुक्त रूप से रहने के कारण अनेकों खर्चे भी कम हो जाते हैं।

इतना सब कुछ होते हुए भी आधुनिक भौतिक युग में इसके दोष सर्व विदित हैं। अपने निर्वाह की ओर से बेफ़िकर होने के कारण कुछ परिवार के सदस्य

भक्ति मार्ग सब जातियों के लिए समान रूप से बतलाया। उन्नीसवीं शताब्दी में राजा राममोहन राय ने जाति व्यवस्था के विरुद्ध प्रचार किया था। इसी प्रकार महर्षि दयानन्द ने कहा कि 'वेद इस व्यवस्था का समर्थन नहीं करते हैं।' उनके स्थापित किए हुए आर्य समाज ने इस ओर ठोस काम किया। स्वामी श्रद्धानन्द ने दलितोद्धार आन्दोलन तथा लाला लाजपतराय ने अछूतोद्धार आन्दोलन प्रारम्भ किए। अंग्रेजों ने राजनैतिक चाल के कारण इन्हें सहारा दिया किन्तु इनका सामाजिक नैतिक व आर्थिक स्तर ऊँचा करने का प्रयत्न उन्होंने कभी नहीं किया।

वास्तव में हरिजन हिन्दू समाज का एक प्रधान अंग है। १६३१ ई० में जब अंग्रेजों ने राजनैतिक चाल से उन्हें पृथक निर्वाचन देने का निर्णय किया तो महात्मा गाँधी ने आमरण अनशन किया। तब ही से इनके सुधार आन्दोलन का श्री गणेश हुआ। १६३२ व १६३३ में पुनः महात्मा गांधी ने अनशन किए। फलस्वरूप इसका प्रभाव सवर्ण हिन्दुओं पर इतना पड़ा कि कई स्थानों पर हरिजनों को मंदिर प्रवेश की आज्ञा दे दी गई। महात्मा गांधी ने 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना की और पंजाब में आर्य समाज में दलितोद्धार सभा की स्थापना हुई। कई राज्यों में छोटे-छोटे संगठन बनाये गये और लोगों की यह भावना जागृत हुई कि हरिजन उन्हीं के भाई-बन्धु हैं और उन्हें भी सब सामाजिक सुविधाएँ मिलनी चाहिए। कितने ही राज्यों में "मन्दिर प्रवेश अधिनियम" पारित किए गये हैं। भारतीय संविधान में अस्पृश्यता अवैध कही गई है।

यह सब कुछ होते हुए भी हरिजनों की हालत अभी पूर्णतया सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। सुविधाएँ उनको अवश्य दी गई हैं, किन्तु वे अभी इन सुविधाओं से लाभ उठा नहीं पा रहे हैं। उनमें अधिक शिक्षा की आवश्यकता है। उनका स्तर अधिक निम्न है। शिक्षा न होने के कारण ही उनका बहुमत अपने मूल अधिकारों को जानता ही नहीं जिससे कट्टर सवर्ण हिन्दू अब भी उनके साथ असमानता का व्यवहार करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी आशातीत उन्नति हुई है और भविष्य भी उज्ज्वल है।

उन्हें शिक्षा देने और सरकारी नौकरी प्राप्त करने की सुविधा देने के साथ उन्हें मितव्ययता का पाठ सिखाना चाहिए। इस सम्बन्ध में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसिपल बोर्ड काफी सेवा कर सकते हैं। सबसे बड़ा उपाय उच्च जाति के हिन्दुओं की मनोवृत्ति में परिवर्तन करना है। उनके प्रति अभी तक जो घृणा और उपेक्षा के भाव चले आ रहे हैं उनको मिटाना आवश्यक है।

हिन्दू समाज की अन्य कुरीतियाँ—हिन्दू समाज में कई अन्य कमजोरियाँ हैं जिनसे समाज का व राष्ट्र का दिन-दिन पतन होता जा रहा है। जैसे बाल-

विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल-विवाह, बहु-विवाह विधवा-विवाह, दहेज, कन्या-विक्रय, सहभोज, देवदासी प्रथा, परदा आदि। प्राचीन भारत में इन कुरीतियों का अंश-मात्र भी नहीं था। अधिक बुराईयाँ मुसलमानों के शासन के पश्चात् उत्पन्न हुई। फिर सुधारकों ने व धार्मिक प्रचारकों ने मध्यकाल मे ऐसा ही प्रचार किया जिससे इन कुरीतियों को धर्म का अङ्ग मान लिया गया। परन्तु पाश्चात्य शिक्षा, पाश्चात्य संस्कृति, विज्ञान एवं साहित्य के कारण देश में सामान्य जागृति हुई। कुछ सुधार सरकार की ओर से और कुछ स्वतः बिना क़ानून की सहायता के भाषणों से, लेखो

से तथा उपयुक्त वातावरण बनाने से हुए हैं।

आजकल विवाहों में सुधार के लिए प्रयत्न किये जा रहे हैं। अन्तर्जातीय विवाह के चलने से विवाह की कठिनाइयाँ कुछ कम हो रही हैं। दहेज की प्रथा हटाने का प्रयत्न किया जा रहा है, परन्तु अभी इस दिशा मे पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई है। बाल विवाह को रोकने के लिए शारदा क़ानून पास किया गया। हिन्दू विवाह अधिनियम केन्द्रीय सरकार ने आंशिक रूप से पारित कर दिया है। इस प्रकार समाज की अन्य सभी कुरीतियों को क़ानून द्वारा अथवा प्रचार द्वारा मिटाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

स्त्रियों की समस्या—हिन्दू समाज में स्त्रियों को बडा नीचा स्थान मिला है प्राचीन भारत मे उन्हें लगभग समान अधिकार थे। वे शिक्षित थी, हर कार्य में मनुष्य का हाथ बँटाती थीं। उन्हे विवाह आदि हर बात मे स्वतन्त्रता थी। किन्तु मुस्लिम सम्पर्क से, उन लोगों की बर्बरता से स्त्रियों के स्तर में पतन होने लगा। कुछ उन्नति अब फिर इस ओर दृष्टिगोचर हो रही है, किन्तु बहुत कम। स्त्रियों को आर्थिक क्षेत्र में पूर्णतया पुरुषों पर निर्भर रहना पड़ता है और इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी उनकी स्थिति दयनीय है।

विविध धार्मिक आन्दोलन द्वारा जैसे ब्रह्म समाज, आर्य समाज आदि से स्त्रियों की स्थिति सुधारने के विशेष प्रयत्न किए गये। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा रोकने में पूरा सहयोग दिया। श्री केशव चन्द्र सेन के प्रयत्नों से सन् १८५६ में विधवा विवाह को वैध माना गया। आर्य समाज ने बाल विवाह को रोका और विधवा विवाह को प्रोत्साहन दिया। सन् १६२० के राजनैतिक आन्दोलनों से स्त्रियों ने अपने अधिकारों के बारे में सोचना आरम्भ किया। सन् १६१७ में भारत मन्त्री मोन्टेग्यू से एक अखिल भारतीय शिष्ट मण्डल मिला और उसने स्त्रियों के लिए राजनैतिक अधिकारों की माँग की और सन् १६१६ के एक्ट से लगभग सवा तीन लाख स्त्रियों को वोट का अधिकार मिला। सन् १६२३ में धारासभाओं के चुनावों में स्त्रियों ने भाग लिया। गोल मेज सभाओं में उन्होंने लन्दन में भाग लिया। सन् १६३५ के

ऐक्ट से उनके राजनैतिक अधिकार और बढ़े। केन्द्रीय सभा तथा प्रान्तीय धारा सभा में उनके लिए स्थान सुरक्षित किए गये।

नये संविधान से पुरुष व स्त्री को समान अधिकार मिले। राजनैतिक व सामाजिक क्षेत्रों में वे पुरुषों के समान हैं, और उन्होंने शिक्षा में काफ़ी उन्नति की है। वे हर क्षेत्र में नौकरियाँ भर रही हैं। विवाह के मामलों में उन्हें काफ़ी स्वतन्त्रता है। परन्तु दु:ख केवल यह है कि सब प्रगति समाज के उच्च वर्ग में हुई—निम्न वर्ग का समाज, जो सच्चा भारत है अभी तक उसी प्रकार पिछड़ा हुआ है। स्त्री समाज की सच्ची स्वतन्त्रता उस दिन ही होगी जब वे अपनी दैनिक आवश्यकताओं के लिए पुरुष पर *निर्भर न रहेंगी।*

इस ओर प्रगतिशील भारत में स्त्रियों की छोटी-मोटी कई संस्थाएँ है, इनमें प्रमुख तीन है।

भारतीय-स्त्री संघ (Indian Women's Association)—यह १९१७ ई० में स्थापित हुआ। इस संघ का उद्देश्य स्त्रियों में शिक्षा प्रचार, सामाजिक व राजनैतिक सुधार रहा है। संघ का काम अभी तक चालू रहा है।

भारत में स्त्रियों की राष्ट्रीय कौंसिल (National Council of women in India)—सन् १९२५ में यह समाज सुधार का ध्येय लेकर स्थापित की गई।

अखिल भारतीय महिला सम्मेलन (All India women's Conference)—यह सन् १९२६ में स्थापित हुई। यह सबसे प्रमुख संस्था है। इसका क्षेत्र व्यापक है। समस्त समाज की कुरीतियों का यह विरोध करती रही है। सम्पत्ति के अधिकारों में स्त्रियों के लिए इसने ही माँग की थी। जाति-पाँति, छूआ-छूत सबका इसने विरोध किया। प्रति वर्ष इसकी सभा में स्त्रियों की विभिन्न समस्याओं पर विचार होता है।

इस सम्मेलन ने सन् १९४६ में कई मांगे रक्खी—

शिक्षा की व्यवस्था, परिवार सम्बन्धी शिक्षा, देश में अधिक जच्चाघर तथा *शिशु घरों का खुलना, एक Ministry of Social Affair की स्थापना तथा स्त्रियों* सम्बन्धी क़ानून में परिवर्तन इत्यादि इनकी माँगें हैं।

इस सुधार को कार्य रूप में परिणित करने के लिए एक कमेटी ने हिन्दू-लॉ में संशोधन करने का सुझाव दिया। संसद में "हिन्दू कोड बिल" इन्हीं के आग्रह से पेश हुआ। इसके अनुसार लड़कियों को सम्पत्ति पर उतराधिकारत्व; पत्नी तथा पुत्री को सम्पत्ति पर अधिकार; एक पति या पत्नि रहते दूसरे विवाह का निषेध, कुछ सीमा तक तलाक की आज्ञा तथा स्त्री को गोद लेने की आज्ञा आदि हैं। इनका

विरोध हुआ और दो वर्ष के प्रयत्नों के उपरांत लगभग यह सब आंशिक रूप में पारित हो गया।

शिक्षा सम्बन्धी सुधार—यह तो एक निर्विवाद सत्य है कि शिक्षा की जीवन में लगभग इतनी ही आवश्यकता है, जितनी भोजन की। ऐतिहासिक दृष्टि से भारत में प्राचीन हिन्दूकाल में शिक्षा का मुख्य आधार धर्म था। वर्णानुसार जीवन का मूल्यांकन था और वर्णानुसार ही शिक्षा दी जाती थी। नालन्दा जैसे विश्वविद्यालय विद्यमान थे। मुस्लिम शासन में शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। इसके विपरीत मुस्लिम धर्म को आधार बनाकर यत्र-तत्र मदरसे खुले। मुगलों ने अवश्य शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। अकबर के समय में इस ओर विशेष रुचि रखी गई।

अंग्रेजों ने शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया किन्तु प्रणाली बहुत खराब थी जिसके फल आज तक भोगने पड़ रहे हैं। वे ईसाई बनाने की नीयत से अथवा शासन के लिए क्लर्क प्राप्त करने के लिए स्कूल आदि खोल रहे थे। इसमें वे पूर्णतया सफल भी हुये। सन् १८३३ तक कम्पनी ने कलकत्ता, मद्रास, बनारस में संस्कृत कॉलिज, कलकत्ता संस्कृत कॉलिज, तथा दिल्ली संस्कृत कालेज स्थापित किये। इसके अतिरिक्त कुछ ईसाई धर्म प्रचारकों ने भी देश में अन्य स्थानों पर स्कूल खोले। अब तक कम्पनी की ओर से शिक्षा लोगों को दी जाती थी उसका माध्यम संस्कृत अथवा फारसी था। लार्ड मैकाले की सिफारिश से विलियम बेन्टिङ्क ने शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी कर दिया। राजा राममोहन राय इससे सहमत थे।

सन् १८५३ में पार्लियामेंट ने एक समिति सर चार्ल्सवुड की अध्यक्षता में शिक्षा की जाँच करने के लिए बनाई। इस समिति ने देश में प्रारम्भिक, माध्यमिक व उच्च शिक्षा को अलग-अलग करने की राय दी। साथ-साथ इसने यह भी कहा की सरकार की ओर से छोटे-छोटे स्कूल व कॉलेजों को सहायता देने का नियम भी बनाया जाय। फलस्वरूप शिक्षा विभाग खोला गया। सन् १८५७ ई० में कलकत्ता मद्रास व बम्बई में विश्वविद्यालय खोले गये। सन् १८७८ ई० में प्रान्तीय सरकारों को शिक्षा का प्रबन्ध सौंप दिया गया। सन् १८८२ ई० में हन्टर कमीशन ने प्रारम्भिक शिक्षा को बढ़ाने पर बहुत जोर दिया। रिपन के समय में प्रारम्भिक शिक्षा का भार नगरपालिका तथा जिलाबोर्ड के ऊपर डाल दिया गया। सन् १९०४ ई० में यूनीवर्सिटी कमीशन की सिफारिशों पर यूनीवर्सिटी एक्ट पास हुआ। सरकारी नियन्त्रण विश्वविद्यालयों पर और कठोर कर दिया गया। सन् १९१० ई० में केन्द्र में शिक्षा-विभाग खुला। पुनः सन् १९१९ के एक्ट से प्रान्तीय शिक्षा विभाग प्रान्तीय मन्त्रिमंडल के पूर्णतया

माधीन हो गये। यहाँ से ही शिक्षा की प्रगति बहुत तीव्र हुई। नये-नये स्कूल, विश्वविद्यालय, कॉलिज आदि अधिक संख्या में खोले गये, किन्तु फिर भी साक्षरता भारत की एक तिहाई आबादी को अब तक उपलब्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त प्रणाली के दोष तो अक्षम्य हैं।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली व संगठन—भारत के सभी प्रान्तों में शिक्षा-प्रणाली व संगठन लगभग एक से ही हैं। शिक्षा तीन श्रेणियों में बँटी है-प्रारम्भिक, माध्यमिक व उच्च या विश्वविद्यालय की शिक्षा।

प्रारम्भिक या बेसिक शिक्षा—प्रारम्भिक शिक्षालय सबसे पहले सन् १८८२ ई० में बंगाल में खोले गये, फिर और प्रान्तों में प्रगति हुई। सन् १८८२ में हन्टर कमीशन की सिफारिशों के फलस्वरूप प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय संस्थाओं के क्षेत्र में कर दी गई। प्राइमरी स्कूल भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न प्रकार के थे। लोअर प्राइमरी स्कूलों में दूसरी कक्षा तक तथा अपर प्राइमरी में चौथी कक्षा तक शिक्षा दी जाती थी। इन स्कूलों में मातृ-भाषा में शिक्षा दी जाती थी, शिक्षा के विषय में मातृ भाषा, भूगोल, अङ्कगणित, इतिहास, ड्राइङ्ग आदि रहे हैं। इन स्कूलों का निरीक्षण राज्य कर्मचारी करते हैं। शिक्षा विभाग द्वारा पाठ्य पुस्तकें निश्चित की जाती हैं। इस व्यवस्था के कई दोष हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह शिक्षा अनिवार्य नहीं है, तथा जैसी मिलती भी है उसका जीवन से सम्बन्ध नहीं है। इस कारण यह कृषकों को, गृह उद्योग करने वाले को अन्य प्रकार के उद्योग करने वालों को किसी प्रकार रुचिकर नहीं है। फलतः विद्यार्थी अपनी शिक्षा पूरी किये बिना ही छोड़ देते हैं। इस प्रकार प्राइमरी स्कूलों में लगभग १५ प्रतिशत धन राशि का उपयोग हो पाता है। अधिक दोष इसलिए भी है कि प्रारम्भिक शिक्षा पर पैसा कम व्यय किया जाता है। अध्यापक स्वयं पूर्णतया शिक्षित नहीं होते। उनका मानसिक विकास नहीं हो पाता।

भारतीय सरकार इस ओर से स्वयं चिन्तित है। संविधान के अनुसार सरकार ने १४ वर्ष तक की आयु के बालकों का प्रबन्ध करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है। शिक्षा के पाठ्यक्रम में काफ़ी परिवर्तन हो रहा है और काफी होना बाकी है। शिक्षकों का स्तर ऊँचा करने का प्रयत्न किया जा रहा है किन्तु काफ़ी काम इस ओर होना अनिवार्य है। कई स्थानों पर खेल-कूद तथा व्यायाम आदि का समुचित प्रबन्ध हो गया है, किन्तु इसका सारे भारत में अनिवार्य किया जाना आवश्यक है।

सर जान सारजेन्ट को द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ होने से पहले शिक्षा के बारे में अपनी रिपोर्ट देने को कहा गया था। उन्होंने ६ से १० तक के बच्चों की शिक्षा

निःशुल्क अनिवार्य करने की सिफ़ारिश की किन्तु इस प्रकार का तरीक़ा बतलाया जिसमे ४० वर्ष लगते थे। स्वतंत्र भारत में बी० जी० खेर की अध्यक्षता में कमीशन ने १६ वर्ष में इस योजना के पूर्ण होने की विधि बताई और उसे मान लिया गया। भारत सरकार द्वारा निर्मित शिक्षा आयोग की रिपोर्ट २६ जून ६६ को प्रकाशित होने वाली है, जिससे शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने की आशा है।

माध्यमिक शिक्षा—इस श्रेणी मे हाई स्कूल तक की शिक्षा सीमित है। यह भी भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न तरीकों से संगठित है। इस शिक्षा का प्रसार सन् १९२१ के बाद अधिक हुआ। सरकारी स्कूलों का सम्पूर्ण भार सरकार पर है तथा ग़ैर सरकारी संस्थाओं को आर्थिक सहायता दी जाती है। कुछ प्रान्तों मे यूनिवर्सिटी इनकी व्यवस्था करती है जैसे बनारस, अलीगढ़ व दिल्ली तथा कुछ मे मैट्रिक व हॉयर सैकन्डरी के बोर्ड अलहदा बने हुए हैं। सरकारी 'इन्सपैक्टरों' की देख-रेख में इन संस्थाओं को रहना पड़ता है। अंग्रेजी, गणित व मातृभाषा की शिक्षा अनिवार्य होती है। बाकी वैकल्पिक विषय होते हैं जैसे इतिहास, भूगोल, संस्कृत फ़ारसी, संगीत, मैन्यूअल ट्रेनिङ्ग, ड्राइङ्ग, आदि।

यहाँ भी किताबी शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाता है जिसका जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। कई वर्ष शिक्षण काल में व्यर्थ जाने से विद्यार्थियों का बहुमूल्य जीवनकाल खराब होता है। यह शिक्षा बिल्कुल लक्ष्य रहित है। इसमे अनेकों सुधारों की आवश्यकता है। शिक्षा का पाठ्यक्रम बदला जाना चाहिए जिससे जीवन सम्बन्धी शिक्षा मिल सके। दस्तकारी, कताई, बुनाई आदि बातो पर जोर होना चाहिए जिससे श्रम की महत्ता कम न हो। पाठ्यक्रम ऐसा हो जो जीवन का कम समय ले। सरकार का ध्यान इस ओर है अवश्य तथा दिल्ली, उत्तर प्रदेश व राजस्थान के कुछ प्रयोग जैसे बहुद्देशीय स्कूलों को खोलना इस ओर सराहनीय है, किन्तु अधिक तीव्र प्रगति की आवश्यकता है।

उच्च अथवा यूनीवर्सिटी शिक्षा—सबसे ऊँची शिक्षा विश्वविद्यालयों तथा उनसे सम्बन्धित कालेजों में दी जाती है। यहाँ कला विज्ञान, वाणिज्य, कृषि, चित्रकला, निर्माणकला चिकित्सा, कानून आदि विभिन्न विषय पढ़ाये जाते हैं। भारत में प्रायः दो प्रकार के विश्वविद्यालय हैं—एक ऐसे जो केवल उनसे सम्बन्धित रहने वाले कॉलेज की परिक्षा, पाठ्यक्रम आदि की व्यवस्था करते हैं। दूसरे वे जिनके अन्तर्गत कॉलेज का प्रबन्ध स्वयं विश्वविद्यालयों की एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिल और सिनेट के आधीन होता है। ये संस्थाएँ स्वयं स्वतंत्र हैं।

सेडलर कमीशन ने जो सन् १९१७ में कलकत्ता विश्वविद्यालय पर रिपोर्ट करने के लिए बनाया गया था, एक अन्तर-विश्वविद्यालय बोर्ड कायम करने की सिफारिश की थी। सन् १९२४ में यह स्थापित हुआ। इसका ध्येय आपस में सम्पर्क स्थापित करना। एक दूसरे के काम के बारे में सूचना प्राप्त करना, शिक्षकों के आदान प्रदान में सहायता करना आदि रहा है।

इस शिक्षा में कई दोष हैं। इस शिक्षा का व्यवहारिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसी शिक्षा लिया हुआ मनुष्य अपने को साधारण व्यक्ति से कुछ भिन्न समझने लगता है। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रहा है यद्यपि अब अवश्य सुधार हो रहा है। नैतिक चरित्र के विकास की ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया जाता। औद्योगिक तथा टेक्नीकल शिक्षा का अभाव रहा है।

हमारे यहाँ सर्वत्र एक से विषय पढ़ाने वाले विश्वविद्यालयों की अपेक्षा प्रादेशिक विश्वविद्यालयों की आवश्यकता है, जो अपने-अपने प्रदेशों के प्राकृतिक साधनों और विशेष परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए उसी क्षेत्र में विशिष्ट शिक्षा देने का प्रबन्ध करें। सरकारी नियन्त्रण कम से कम होना चाहिए तथा शिक्षकों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर ही होनी चाहिए।

विश्वविद्यालय कमीशनः—यह कमीशन भारत सरकार ने सन् १९४९ में डा० राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालयों के सुधार के उद्देश्य से बनाया था। इस कमीशन ने कहा कि इन्टरमीजिएट के स्थान पर हायर सैकेन्ड्री तथा तीन वर्ष का बी० ए० का कोर्स हो। हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य हो। केवल विश्व-विद्यालयों से लाभ उठाने वाले विद्यार्थी ही दाखिल किये जावें, शेष औद्योगिक व व्यवसायिक कॉलेजों में चले जावें। छुट्टियां कम हों, तथा अध्यापकों के वेतन की वृद्धि हो और ग्राम विश्वविद्यालय स्थापित हों। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना की गई जिससे अध्यापकों का वेतन स्तर तथा शैक्षणिक स्तर काफी ऊँचा उठा है। शिक्षा आयोग की रिपोर्ट और भी ऊँचा स्तर कर सकेगी।

औद्योगिक शिक्षा—कुछ हाथ के काम सिखलाने के लिए भी स्कूल खोले गये हैं। कृषि शिक्षणालय, संगीतालय, डाक्टरी, इंजीनियरिंग, जंगल विभाग आदि की शिक्षा के लिए अलहदा स्कूल व कॉलेज खोले गये हैं, किन्तु इनसे फिर भी पूरा काम नहीं हुआ। इस कारण सन् १९३६ में टेकनीकल शिक्षा का विकास करने के लिए एक कमेटी की स्थापना की गई, जिसने देश में कुछ जूनियर व कुछ सीनियर वोकेशनल स्कूल खोलने की सिफारिश की। पुनः सर जान सारजेन्ट ने युद्ध काल में तीन प्रकार के टेक्नीकल स्कूल अर्थात् जूनियर टेकनीकल या ट्रेड

स्कूल, टेक्नीकल हाई स्कूल तथा सैंट्रल टेकनीकल इंस्टीटयूशन खोलने की सिफारिश की। सरकार का प्रयत्न इस ओर काफी है। अनेक पालीटेक्नीक स्कूलों की स्थापना की गई हैं। अन्य कई प्रकार की संस्थाएं देश में प्रशसनीय कार्य कर रही हैं जैसे विभिन्न गुरुकुल, अमेरिकन मिशन स्कूल तथा अंग्रेजी पब्लिक स्कूल आदि।

भारत मे शिक्षा के क्षेत्र मे मुख्यतया तीन समस्याएं हैं—जन-शिक्षा, स्त्री-शिक्षा तथा सह-शिक्षा। जन-शिक्षा के सम्बन्ध मे वर्धा योजना तथा सार्जेन्ट योजना निकाली गई। वर्धा योजना सन् १६३८ मे गाँधी जी की प्रेरणा से निकाली गई। यह गांवों की योजना है और केवल प्रारम्भिक शिक्षा से ही इसका सम्बन्ध है। यह दस्तकारी पर विशेष जोर देती है और खर्चा कम कर भारत को साक्षर करना चाहती है। इसमे व्यवहारिक शिक्षा पर विशेष जोर है।

सार्जेन्ट योजना मे माध्यमिक व उच्च शिक्षा के लिए भी योजना है। इसमें सबसे पहले नर्सरी शिक्षा, जो ३ से ६ वर्ष तक के बच्चो के लिए है, दी जाती है। यह अनिवार्य होगी। इसी प्रकार प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य तथा निःशुल्क होगी। इसमे जूनियर बेसिक व सीनियर बेसिक शिक्षा होगी। प्रारम्भिक के बाद हाईस्कूल शिक्षा होगी, जिसका पाठ्यक्रम ६ वर्ष का होगा। हाई स्कूल भी दो प्रकार के होंगे—एकेमेडिक तथा टेकनीकल। पुनः उच्च शिक्षा मे विश्वविद्यालयो में केवल योग्य विद्यार्थी ही भर्ती किये जावेंगे। व्यापारिक, व्यवसायिक तथा प्रौढ़ शिक्षा पर भी सुझाव दिये गये।

स्त्री-शिक्षा की समस्या भी भारत मे विकट ही रही है। आधुनिक काल में इस ओर पर्याप्त प्रबन्ध नहीं रहा, इसके विपरीत जो जो शिक्षा इन्हे मिली वह भी अनुपयोगी, रही जिसमे पश्चिम के गुणों को छोड़ सब बुराईयां विद्यमान रही हैं। नगरपालिकाओं ने, तथा विश्वविद्यालयो ने स्त्री शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया है फिर भी इस रूढ़िवादी देश मे केवल तीन प्रतिशत स्त्रियां शिक्षित थी। सह-शिक्षा की समस्या भी पक्ष व विपक्ष दोनों मे ही बलवान है। स्वतन्त्र वातावरण उत्पन्न करने के विचार से पश्चिमी देशों का अनुकरण करने वाले, विपक्षियों को संकुचित विचारो वाले आदि शब्दों से अलंकृत करते हैं किन्तु निस्सन्देह आधुनिक शिक्षा प्रणाली में सहशिक्षा केवल नैतिक पतन का एक सीधा साधन है। जब पुरुषों और स्त्रियों के पाठ्यक्रमों में भिन्नता की मांग की जा रही है तो सह-शिक्षा के समर्थन का अस्तित्व तो स्वतः ही लोप होना अवश्यम्भावी है।

आधुनिक भारतीय सरकार निस्सन्देह अभी तक शिक्षा की दिशा में अधिक नहीं कर पाई है किन्तु इतनी तीव्र और भीषण समस्याओं से घिरे हुए ये अन्तर्राष्ट्रीय

स्तर को कायम रखते हुए उनका प्रयास इस ओर सदा सराहनीय है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग इस ओर सराहनीय काम कर रहा है। भारत सरकार द्वारा निर्मित शिक्षा आयोग जिसकी सिफ़ारिशें २९ जून सन् १९६६ को प्रकाशित की जा रही हैं शिक्षा के क्षेत्र में आमूल क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकेगा और अवश्य स्तर को उन्नत कर सकेगा, ऐसा सब का विश्वास है।

Topics for Essays

1. Write an essay on the Indian Renaissance as a fusion of our traditional values and the ideas of Industrialized west.
2. Write an essay on the chief social reforms prepounded by Brahma Samaj and Arya Samaj.
3. Describe briefly the Religious and Social Reforms Movements in India.
4. Write an essay on the Educational system of India to-day and point out its defects.

Short Notes

Write brief notes on the following :—

(1) Raja Ram Mohan Roy.
(2) Swami Vivekanand,
(3) Swami Dayanand Saraswati.
(4) Ram Krishna Mission.
(5) Ahmedia Movement.
(6) Problem of untouchables in India.
(7) University Act of India 1904.

Objective Test

Answer in not more than three lines or in No" or Yes where required :—

1. Pick out the names of the right people who were founders of the Movement out of the list and put against each in order.
 Movement :—Arya Samaj, Brahma Samaj, Rama Krishna Mission, Theosophical Movement, Harijan uplift, Ahmedia Movement, Wahabic Movement, Prarthana Samaj :—

Founders :—Madame Blevotsvki; Vivekanand, Dayanand, Raja Ram Mohan Roy, Ranade, Syed Ahmed Wahabi, Mirza Gulam Ahmed, Mahatma Gandhi.

2. Answer in Yes or No.
   (a) Brahma Samaj was established in the year 1928 A. D.—'Yes or 'No'.
   (b) Raja Ram Mohan Roy was a strong follower of Idol worship—'Yes' or 'No'.
   (c) Arya Samaj believes firmly in untouchability.
   (d) University Commission 1949 and University Grants Commission are one and the same—'Yes or 'No'.
   (e) Education Commission has been established permanently to look after the working of education in India—'Yes' or 'No'.

निम्बन्ध के विषय

1967 १. भारत मे पुनर्जागरण पर एक निबन्ध लिखिये और यह बतलाइये कि यह प्राचीन आध्यात्मिक तथा अर्वाचीन व्यावसायिक भावना का समन्वय है।

२. ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज द्वारा प्रतिपादित मुख्य मुख्य सामाजिक सुधारों पर एक विवेचनात्मक निबन्ध लिखिये।

३. भारत मे धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आन्दोलनों पर एक निबन्ध लिखिये।

४. आज की शिक्षा प्रणाली पर एक निबन्ध लिखिये तथा उसकी बुराइयों पर प्रकाश डालिए।

संक्षिप्त टिप्पणियाँ

(१) राजा राममोहन राय
(२) स्वामी विवेकानन्द
(३) स्वामी दयानन्द सरस्वति
(४) राम कृष्ण मिशन
(५) अहमदिया आन्दोलन
(६) भारत में अछूतों की समस्या
(७) सन् १६०४ का भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम

नई शैली के प्रश्न

निम्न लिखित का संक्षेप में उत्तर दें (तीन पंक्तियों से अधिक नहीं)—

१. नीचे लिखी सूची में से क्रमानुसार विभिन्न आन्दोलनों के प्रणेताओं के नाम सूची में से चुनकर प्रत्येक के सामने अंकित करें—
आन्दोलनः—आर्य समाज; ब्रह्म समाज; रामकृष्ण मिशन; थियोसोफिकल् आन्दोलन, हरीजन उत्थान आन्दोलन; महमदिया आन्दोलन; वाहबी आन्दोलन; प्रार्थना समाज।

प्रणेताः—मैडम ब्लोवोटस्की; विवेकानन्द; दयानन्द; राजा राममोहन राय; रानाडे; सैयद महमद वाहबें; महात्मा गांधी

२. 'हां' अथवा 'ना' में उत्तर दें—

(क) ब्रह्म समाज की स्थापना सन् १८२८ ई० में हुई थी— 'हां' या 'ना'

(ख) राजा राममोहन राय प्रबल मूर्ति उपासक थे— 'हाँ' या 'ना'

(ग) आर्य समाज दृढ़ता से छुआछूत में विश्वास करता है—'हाँ' अथवा 'ना'

(घ) विश्वविद्यालय आयोग सन् १९४९ ई० तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एक ही हैं।

(च) शिक्षा आयोग भारत में स्थायी रूप से शिक्षा की देख रेख के लिए स्थापित किया गया है—'हाँ' अथवा 'ना'

राष्ट्र और भारतीय जनता के एकीकरण में स्वातंत्र्य आन्दोलन का योग

(The role of freedom Movement in unifying the country and its people)

कोई भी राष्ट्र व्यक्तियों का समूह मात्र नहीं होता है, किन्तु वह एक समाज है जिसके आधार भूत तत्व-हृदयों का मिलन और मस्तिष्कों का स्वतन्त्र आदान प्रदान होते है।[1] भारतवर्ष भी एक ऐसा ही विशाल देश है, जहाँ विविधता और विभिन्नतायें विद्यमान रही हैं। स्वर्गीय श्री जवाहर लाल नेहरू ने स्वयं कहा था-"It was absurd, of course, to think of India or any country as a kind of anthropomorphic entity. I did not do so I was also aware of the diversities and divisions of Indian life, of classes, castes, religions races, different degrees of cultural development. Yet I think that a country with a long cultural back ground and common out look on life develops a spirit that is peculiar to it and that is impressed on all its children, however much they may differ among them-selves."[2]

विभिन्नतायें और विविधतायें

इस तथ्य को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता है कि यह विशाल देश, जिसका क्षेत्रफल १२,६६,६४० वर्ग मील है, जिसमें ४३ ८ करोड़ की जन संख्या निवास करती है। भारत सभी प्रकार के विभिन्न व्यक्तियों का निवास स्थल है, जिसमें भाषा, लिंग धर्म और जाति की असंख्य विभिन्नतायें हैं।

भारतीय जन जीवन वंश के विषय में एक विचित्र चित्र प्रस्तुत करता है पंजाब, राजस्थान, कश्मीर का क्षेत्र इन्डोआर्यन; गुजरात, महाराष्ट्र, सैथो द्रुवेडियन उत्तर प्रदेश, पूर्वी राजस्थान, बिहार, आर्य-द्रुवेडियन; बंगाल, उड़ीसा के क्षेत्र, मंगोल द्रुवेडियन; हिमाचल, असाम, नेपाल, भूटान, सिक्किम के प्रदेश मंगोलोइड श्रेणी

1. S. Radhakrishnan.
2. Jawahar Lal Nehru as quoted by V. V. THIRTHA. in Nation Integration P.P.

तथा मद्रास, आन्ध्र, मध्यप्रदेश, मैसूर, केरल जैसे क्षेत्र द्रविड़ वंशों में आते हैं। इस दृष्टि से भारत किसी एक विशिष्ट शुद्ध वंश समुदाय में नहीं रखा जा सकता है।[3] फिर भी वंश सम्बन्धी समस्याएं भारत में उतनी जटिल नहीं हैं, जितनी अन्य राष्ट्रों में हैं।

भाषा सम्बन्धी क्षेत्र में राष्ट्रीय जीवन ८४५ भाषा एवं उपभाषाओं से प्रभावित है। १९५१ की जनगणना के आधारपर भारत में ७२० भारतीय भाषायें तथा ६३ अभारतीय भाषायें हैं। भाषा के दृष्टिकोण से भारत को मुख्यतः चार समुदायों-इण्डोआर्यन, द्रविड़ियन, आस्ट्रो-एशियाटिक एवं तिब्बेतिबर्मीय में बांटा जाता है। सब से पुरानी भाषा का उल्लेख वेदों में है, यही आगे चलकर पाली, प्राकृत आदि में परिवर्तित हुई। कालान्तर में मध्यकालीन इण्डो-आर्यन बोलियां आधुनिक भाषाओं के रूप में विकसित हुईं, जिनमें हिन्दी, बंगला, कश्मीरी, उड़िया, असमी, मराठी, बिहारी, राजस्थानी, पंजाबी एवं पहाड़ी प्रमुख हैं।

द्रविड़ समुदाय में तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम, तुलु, टोडा, कोडागू, गोंड एवं राजमहल मुख्य हैं। आस्ट्रो-एशियाटिक समुदाय की भाषायें ५० लाख व्यक्तियों से भी अधिक द्वारा बोली जाती है। सथाली, मुन्दरी, हो, खासी, निकोबारी भाषायें इसी समुदाय की हैं। तिब्बे तिबर्मीय समुदाय में नेवरी, मैथेई भाषायें अधिक महत्व रखती हैं।

इसके अतिरिक्त भारतवासी ६३ अन्य अभारतीय भाषाओं का प्रयोग करते हैं। उनमें मुख्यतः अंग्रेजी, फारसी, अरबी, बर्मी, पुर्तगाली, फ्रेंच भाषायें आती हैं। ये भाषायें भारत में विदेशी सम्पर्क के फलस्वरूप विकसित हुई।

इस प्रकार भारत में भाषीय क्षेत्र विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र ही नहीं है, अपितु एक सुन्दर ढंग से बुने हुये कालीन पर मिश्रित कलाकृतियों का अनूठा नमूना है। फिर भी उत्तर भारत की अधिकांश जनसंख्या हिन्दी को ही विचार विनिमय का माध्यम मानती है और दक्षिणी भारत में तेलगु एवं तामिल भाषाओं का बाहुल्य है।

इसके अतिरिक्त भारतवर्ष विभिन्न धर्मावलम्बियों का देश है, जहाँ व्यक्ति को धार्मिक स्वतन्त्र दिया हुआ है। देश की समस्त जनसंख्या का ८४.९९% हिन्दू धर्मावलम्बी एवं ९.९१% मुस्लिम सम्प्रदाय आते हैं। शेष अल्पमत में ईसाई, सिक्ख, जैन, बौद्ध मतावलम्बी आदि हैं। राधा कुमुद मुकर्जी ने लिखा है कि "No state

3. Guha : Racial Elements in the Population.

can ever be homogeneous social composition made up of only one community. It is bound to be made up of different communities, one of which must necessarily be the majority".

विभिन्न धर्मावलम्बी समस्त देश में फैले हुये हैं। भारतीय राजनैतिक जीवन में इन धर्म समूहों ने ब्रिटिश शासन काल में भी योग दिया है। देश में ऐच्छिक समूह हैं जो निजी विश्वसनीयता (Loyalities) रखते हैं। कई बार साम्प्रदायिक अशान्ति भी भड़क जाती है और कोई प्रमुख धार्मिक समूह सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक लाभों की पूर्ति के लिये सामूहिक सौदेबाजी करते भी देखे गये हैं। फलस्वरूप प्रतिस्पर्द्धा एवं तनाव बढ़ता है। हिन्दू मुस्लिम तनाव इतिहास में प्रसिद्ध है, इसलिये राजाओं, सुल्तानों एवं बादशाहों ने तनावों को संतुलित रखने के लिए विवाह एवं राजनैतिक मित्रता (Political alliance) का आश्रय लिया।

इसके अतिरिक्त भारतीय इतिहास का विद्यार्थी पिछले कुछ वर्षों से हिन्दू-सिक्ख, हिन्दू-ईसाई के तनावों के अध्ययन में भी रुचि रखता है। पंजाब का विभाजन भी इसी से सम्बन्धित आज की एक नई समस्या है।

राष्ट्रीय एकय—उपरोक्त विविधताओं को कम करके राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने का श्रेय देश की प्रकृति (Nature), संस्कृति, एवं इतिहास को भी है, किन्तु प्रमुख रूप से देश को एकता के सूत्र में बांधने में देश के राष्ट्रीय आन्दोलन एवं राजनैतिक नेताओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसी महत्वपूर्ण योगदान का अध्ययन हम इन पृष्ठों में अलग करना पसन्द करेंगे।

देश की प्राकृतिक सीमायें उत्तर में हिमालय और उसकी पर्वत श्रेणियाँ; पश्चिम, पूर्व व दक्षिण में अरब सागर, हिन्द महासागर, एवं बंगाल की खाड़ी द्वारा बनाई जाती हैं। इन्हीं सीमाओं ने देश को अन्य राष्ट्रों से पृथक रक्खा। यहाँ तक कि विदेशी विजेता, जो यहाँ आकर बसे वे अपना सम्पर्क अपने स्वयं के देश से स्थापित न कर सके और इस प्रकार वे अपने पैतृक-क्षेत्र (Parent Region) से दूर रहे और कालान्तर में यहाँ की सामान्य संस्कृति के सागर में घुलमिल गये। आर्य आगमन, मुस्लिम सम्पर्क एवं ब्रिटिश संस्कृति ने देश को एक नया सांस्कृतिक समन्वय प्रदान किया। ऋग्वेद में लिखित देश की नदियों से की गई प्रार्थना में इस प्रकार के एकय के दर्शन होते हैं। ऋचाओं में लिखा है कि—

> "इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वतिशुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
> असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ।"

[हे गंगा, यमुना, सरस्वति, शुतुद्रि (सतलज) और परुष्णी (रावी) मेरी प्रार्थनायें सुनिये। हे मरुद्वृधा, असिक्नी (चिनाव) वितस्ता (झेलम) आर्जीकिया (व्यास) ,सुषोमा (सिन्धु) मेरी प्रार्थनायें सुनिये]

आगे—

> 'गंङ्गे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वति ।
> नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेस्मिन् सन्निधि कुरु ॥

[हे गंगा, यमुना, गोदावरि, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु कावेरी के जल मेरे इस स्नान के जल में सान्निध्य करें।]

इस प्रकार इन प्रार्थनाओं मे एक आधारभूत एकता के दर्शन होते है। देश के विभिन्न कोनों पर स्थित चार बड़े बड़े मठ द्वारिकाधीश, सेतुबन्ध रामेश्वरम्, जगन्नाथपुरी एवं बद्रिकाश्रम—हमारे ऐक्य के प्रतीक हैं। तभी तो इन भौगोलिक तत्वों ने स्वदेश प्रेम, एक राष्ट्र और एक नागरिकता की भावना को जन्म दिया है।

इतिहास के पृष्ठों में भी देश के ऐक्य के विषय में हमे अनेक व्यक्तियों की देने देखने को मिलती हैं जिसमें विविधताओं के बीच एक रूपता के दर्शन होते हैं। उत्तर से लगाकर दक्षिण में ब्राह्मणों ने वैदिक संस्कृति का प्रचार कर देश को इच्छित ऐक्य प्रदान किया। रामायण और महाभारत के काव्य आज भी समान रूप से देश के कोने कोन मे गाये और पढ़े जाते हैं।

राजनैतिक दृष्टि से चन्द्रगुप्त मौर्य और उनके पोते अशोक महान् ने अपने साम्राज्य की सीमायें उत्तर से दक्षिण तक ही नहीं फैलाई, अपितु शासकों ने राजनैतिक व सांस्कृतिक ऐक्य प्रदान कर देश में एकता की भावना को मजबूत किया। इस दिशा में अशोक महान् द्वारा किये गये प्रयत्नों का अध्ययन बड़ा रुचिकर है। समुन्द्रगुप्त, हर्षवर्धन के साम्राज्यों की सीमायें उत्तर दक्षिण, और पूर्व पश्चिम तक फैली हुई थी।

भारत मे हिन्दू मुस्लिम सम्पर्क की कहानी राष्ट्रीयता के एकीकरण की कहानी है, जिन्होंने मिलजुलकर राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कंधे से कंधा लगाकर संघर्ष किया है। अलाउद्दीन खिलजी, बाबर, अकबर महान, शाहजहाँ आदि की देन राष्ट्रीय एकता की दिशामे विशिष्ट उपलब्धियां हैं।

भक्ति सम्प्रदाय एवं समाज सुधार आन्दोलनों के अन्तर्गत सन्त महात्माओं एवं विद्वानों ने अपने विशेष योगदान से सांस्कृतिक मेल व एक राष्ट्र की भावना को जागृत किया है। महात्मा कबीर, रहीम, सूर, तुलसी, मीरा, रसखान, जैसे महापुरुषों ने भावात्मक ऐक्य के साथ राष्ट्रीय ऐक्य की आवाज बुलन्द की।

पाश्चात्य सम्पर्क ने एक्य की भावना के साथ साथ "एक राष्ट्र एक भाषा" की विचार धारा से जन साधारण को परिचित करवाया और अंग्रेजी शिक्षा ने समानता, स्वतंत्रता, और भ्रातृत्व भावना को प्रोत्साहित कर एक्य में एक नया मंत्र फूंक दिया। शनैः शनैः जनतंत्र, समाजवाद, एवं धर्मनिरपेक्षता जैसी विचार-धाराओं ने राष्ट्र को एकता की ओर पुनः अग्रसर किया।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो गया है कि भारत में विविधताओं के बीच एकता है और इस एक्य की भावना के प्रसार का श्रेय प्राकृतिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक कारणों के अतिरिक्त देश व्यापी जन आन्दोलन को भी है, जिसने भारतीय राजनैतिक जीवन को नया मोड़ देकर एकीकरण के तत्वों की जड़ों को स्थायित्व प्रदान किया है।

एक्य की ओर एक नया प्रयत्न

१८५७ की क्रान्ति:—भारत में सन् १८५७ की क्रान्ति जिसे ब्रिटिश इतिहास-कारों ने 'विद्रोह' की संज्ञा दी थी, कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, किन्तु अनेक कारणों का परिणाम थी। इस क्रान्ति की पृष्ठ भूमि में एक व्यापक आर्थिक तथा राजनैतिक असंतोष की अभिव्यक्ति विद्यमान थी। प्रारम्भ में यह क्रान्ति सिपाहियों का विद्रोह मात्र था, किन्तु कालान्तर में इसने एक सर्वतोमुखी व्यापक क्रान्ति का रूप धारण कर लिया। श्रीमती एनी बिसेंट ने राष्ट्रीय असंतोष फैलने के अनेक कारणों का उल्लेख किया है। उनका कहना है कि ब्रिटिश शासन ने भारतीयों के स्थानीय रीति-रिवाजों, जन साधारण की योग्यता व प्रतिभा पर ध्यान नहीं दिया। अंग्रेजी शासन की विभिन्न नीतियों के परिणाम स्वरूप अशिक्षा में वृद्धि हुई, सिंचाई व सफाई की अवहेलना हुई, भारतीय उद्योग और कलाओं का पतन हुआ। ब्रिटिश शासन इतना खर्चीला था कि वह भारतीय सम्पत्ति पर बोझ था जो आरम्भ से ही दमनात्मक तथा दासत्व में विश्वास करने वाला था[1]।

अंग्रेजों का उद्धत आचरण, अमानवीय व्यवहार, असहिष्णुता, नौकरियों में भेदभाव, न्याय में भ्रष्टाचार, अनुत्तरदायी कार्य, शासन की नीतियों के आधार बने। भारतीय उद्योग धंधों का विनाश, प्रतिद्वंदिता की भावना, भारत में विदेशी वस्तुओं का आयात, कृषि की अवनत दशा, व्ययसाध्य शासन-व्यवस्था, निम्न जीवन स्तर तथा भारतीय राजा महाराजाओं पर भी भीषण अत्याचार कुछ ऐसे और भी कारण बन गये, जिन्होंने सन् १८५७ में क्रान्ति के लिये जन साधारण को तैयार कर दिया।

1. Annie Besant: How India fought for her freedom. PP, 1—IX

फलस्वरूप एक दिन सभी भारतीय ऊँचनीच की भावना को छोड़, जाति-पाँति के बंधनों को भूल कर एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिये कमर कस कर क्रान्ति के संघर्ष में कूद पड़े। तात्याँ टोपे, नाना फड़नवीस, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, जैसे कर्म वीर परस्पर भेदभाव भूल कर राष्ट्र क्रान्ति में कूद पड़े। अखिल भारतीय स्तर पर कमल तथा रोटी के रूप में प्रतीकों का चुनाव हुआ, जो सर्वमान्य हुये। मंगल पाण्डे जैसी विभूतियों ने सिद्ध कर दिया कि इस क्रान्ति में सभी भारतीय एक हैं और इस एक्य का परिणाम यह हुआ कि सन् १८५७ के पश्चात् महारानी विक्टोरिया को सेवाओं और अधिकारों के क्षेत्र में घोषणा करनी पड़ी। विचारकों ने इस संघर्ष को आजादी की पहली लड़ाई की संज्ञा दी।

भारतवर्ष में राष्ट्रीय आन्दोलन का अध्ययन एक ओर रोचक है, तो दूसरी ओर रोमांचकारी भी है। किस प्रकार देश में स्वदेश प्रेम जगा और राष्ट्रीयता की भावना का—का उदय हुआ और किस प्रकार अंग्रेजों को देश से निकाल कर स्वतंत्रता के अरूणोदय के दर्शन किये, यह एक लम्बी कहानी है और अन्य राष्ट्रों के लिए अनुपम त्याग एवं बलिदान का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

देश में अंग्रेज व्यापार के लिये आये और समय के साथ उन्होंने देश के राजनैतिक जीवन में हाथ डालकर एक दिन अंग्रेजी शासन की नींव डाल दी। देश में विदेशी हुकूमत के विरोध में असंतोष बढ़ा और देश में एक अखिल भारतीय संस्था की स्थापना करने की ओर विचारकों का ध्यान आकर्षित हुआ। सन् १८६६ में दादा भाई नौरोजी के प्रयत्नों ने East India Association की स्थापना, तथा रानाडे ने 'सार्वजनिक सभा' को प्रारम्भ किया। लार्ड लिटन के अमानवीय शासन ने राजनैतिक आन्दोलन को बल दिया और मि० एलेन ऑक्टेवियन ह्यूम ने सन् १८८५ में अखिल भारतीय कांग्रेस जैसी संस्था को जन्म दिया। डाक्टर पट्टाभि सीता रमैय्या का मत है कि Indian National Congress की स्थापना आर्थिक एवं राजनैतिक कारणों के सयोग और राजनैतिक दासता की अनुभूति का परिणाम था। इस संस्था ने आगे चलकर राष्ट्रीय पुनरुत्थान का प्रतिपादन करनेवाली संस्था का रूप ले लिया। प्रारम्भ में कांग्रेस की स्थापना मे अंग्रेजो का सहयोग रहा, क्योंकि उन्होंने कांग्रेस की स्थापना[1] भारत में ब्रिटिश शासन की रक्षा करने के उद्देश्य से

---

(1) Mr. Hume told his friend Sir Auckland Colvin that he had advanced the scheme as a safety valve for the escape of great and - forces generated by our own actions".

(Wedderburn I. A.O. Hume P. 71)

की थी । A.O. Hume ने Auckland colvin को लिखा था कि भारत में असंतोष की बढती हुई शक्तियों से बचने के लिये एक रक्षा नली की आवश्यकता थी तथा कांग्रेस से बढ़कर कोई दूसरी वस्तु नहीं हो सकती थी ।

पट्टाभि सीता रमैय्या ने आगे चलकर कांग्रेस की प्रगति के विषय में लिखा है कि जिस तरह एक बड़ी नदी का मूल एक छोटे से स्रोत से होता है, उसी प्रकार महान संस्थाओं का प्रारम्भ भी बहुत साधारण होता है । जीवन के प्रारम्भ में वह अत्यन्त वेग के साथ दौड़ती है, परन्तु ज्यों ज्यों व्यापक होती जाती है, त्यों त्यों उनकी गति मन्द किन्तु स्थिर होती जाती है, फलतः उन्हें अधिकाधिक सम्पन्नता मिलती है और यही उदाहरण हमारी कांग्रेस पर भी लागू होता है । महामना मालवीय ने भी इसी संस्था में समस्त देश की आवाज को प्राप्त किया ।

कांग्रेस का इतिहास जो प्रधानतः राजनैतिक आन्दोलन का इतिहास है मुख्यतः निम्न तीन भागों में विभाजित किया जाता है:—

(१) प्रथम काल (१८८५ से १६०५)
(२) दूसरा काल, (१६०६ से १६१८)
(३) तीसरा काल (१६१६ से १६४८)

कांग्रेस जैसी संस्था के उद्देश्य की चर्चा करते हुये सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा था कि अखिल भारतीय संस्थाओं के मूल में निम्न उद्देश्य रहने चाहिये:—

(१) देश में सबल तथा सतर्क जनमत का निर्माण करना,
(२) समान राजनैतिक उद्देश्यों तथा आकांक्षाओं के आधार पर भारत की विभिन्न जातियों का एकीकरण,
(३) हिन्दू-मुसलमानों के बीच मैत्री भावना की स्थापना,
(४) तत्कालीन सार्वजनिक आन्दोलनों में किसानों का सहयोग प्राप्त करना।

इन उद्देश्यों में राष्ट्रीय एकीकरण के लिये किये गये प्रयत्न विशेष महत्व रखते हैं। यह सब कुछ तभी सम्भव हो सकता था, जब सारा राष्ट्र एक मत हो। शहरी जनता के अतिरिक्त गाँवों में जन साधारण तक पहुंचाना भी उद्देश्यों के अन्तर्गत रक्खा गया, ताकि यह आन्दोलन एक तरफ राजनैतिक अधिकारों को देने के लिये ब्रिटिश हुकूमत को मजबूर करे और दूसरी ओर जन साधारण को एकता की भावना में प्रबलता से बाँध सके ।

भारत गाँव में रहता है और जब तक ग्रामीण जनता एक्य में नहीं बंधती है तब तक आन्दोलन की सफलता संदिग्ध ही थी, अतः भारतीय कृषक को भी इसमें

सम्मिलित कर विभिन्न जातियों का एकीकरण करने की दिशा में कदम उठाये गये।

इसके पूर्व कि हम आन्दोलन को एकीकरण के दृष्टिकोण से विचार करें, हम आन्दोलन के इतिहास का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे।

१८५८ की घोषणा के पश्चात् इंगलैण्ड की रानी विक्टोरिया भारत साम्राज्ञी बनी। साम्राज्ञी ने अपनी घोषणा में स्पष्ट किया था कि हम भारतवासियों को बिना जाति, धर्म व रंग के भेद के उन्नति का समान अवसर देंगे। भारतवासियों की उन्नति हमारी उन्नति होगी। पर यह घोषणा केवल घोषणा ही रही, ब्रिटिश सरकार ने भी कम्पनी की घोषणा की नीति ही अपनाई। जन साधारण और राजा व नवाबों का शोषण बदस्तूर जारी रहा। हिन्दुस्तानियों के साथ व्यवहार अच्छा नहीं किया गया और उनको पग-पग पर अपमानित किया जाने लगा।

कांग्रेस का प्रारम्भ—कांग्रेस की स्थापना सन् १८८५ में एक अंग्रेज के सद्प्रयत्नों द्वारा हुई। डा० ह्यूम का कांग्रेस स्थापित करने का उद्देश्य केवल यह था कि भारतवासियों की बढ़ती हुई जागृति की भावना को रोका जाये। इसके अलावा वह कांग्रेस के द्वारा एक ऐसा संघ स्थापित करना चाहता था, जो शासन सम्बन्धी कार्यों में समय-समय पर केवल सरकार को सलाह देकर ही संतुष्ट हो जाये, जैसा कि बोम्बवाल के शब्दों से ज्ञात होता है कि कांग्रेस की स्थापना ब्रिटिश शासन के एक मित्र के रूप में हुई थी न कि शत्रु के रूप में। ("Congress came into being as an ally rather than an enemy of British Rule in India." Bombwall.)

इसका प्रथम अधिवेशन सन् १८८५ में बम्बई में हुआ, जिसमें कुल ७२ सदस्य उपस्थित थे, परन्तु इसका विकास शीघ्र ही हुआ और समस्त भारत पर इसका प्रभाव पड़ा। सुविधा के लिए हम आन्दोलन के इतिहास को भी तीन भागों में विभाजित करते हैं।

(१) १८८५ से १९०५ तक का समय—इस काल में कांग्रेस पूर्णतया शान्ति पूर्ण विचारों की रही। इस समय कांग्रेस ने अंग्रेजों के प्रति वफादारी ही प्रदर्शित की। कांग्रेस शान्तिपूर्ण तरीकों से ब्रिटिश सरकार से शासन में सुधारों की मांग करती रही। इन्हीं वर्षों में कांग्रेस ने यह भी मांग की कि शासन में भारतवासियों को अधिक से अधिक स्थान मिलने चाहिए। कांग्रेस की यह प्रथम मांग की बड़ी विजय है, १८९२ के सुधार कानून का पास किया जाना।

(२) १९०६ से १९१८—इस समय कांग्रेस में दो प्रमुख घटनाएं घटी। प्रथम कांग्रेस में गर्म और नर्म दल उत्पन्न हुए और १९०७ में कांग्रेस इन दो दलों

में विभाजित हो गई। इसके अलावा १६०६ में मुसलमानों को अल्पसंख्यक (Minority) कौम मान लिया गया और उनकी पृथक निर्वाचन (Communal Electorate) की मांग को स्वीकार कर लिया। इसी समय मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए लार्ड कर्जन ने बंगाल को दो भागों में विभाजित कर दिया था। इससे भारत में क्रान्तिकारी भावना ने जोर पकड़ा और गर्म दलवालों ने अपना हिंसात्मक कार्यक्रम जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। इनके फलस्वरूप १६०६ में मार्ले-मिण्टो सुधार की घोषणा की गई। परन्तु कांग्रेस सन्तुष्ट नहीं हुई। तब बाल गंगाधर तिलक और श्रीमती एनीबेसेंट ने १६१४ में 'होम रूल' आन्दोलन शुरू किया। भारतवासियों की राष्ट्रीयता को देख और अपने को प्रथम महायुद्ध के संकट में देख ब्रिटिश सरकार ने १६१७ में सुधारों की घोषणा की। परन्तु कांग्रेस सन्तुष्ट नहीं हुई। इसी समय जब अंग्रेजों ने टर्की पर आक्रमण किया तो भारत के मुसलमान अंग्रेजों से क्रुद्ध हो कांग्रेस में मिल गये। अतः १६१६ में लखनऊ समझौता (Lucknow Pact) हुआ। इन्हीं दिनों में महात्मा गांधी दक्षिणी अफ्रीका से भारत लौट आये और कांग्रेस की बागडोर उन्होंने संभाली।

(३) १६१६ से १६४७ (गांधी-युग)—सन् १६१६ में महात्मा गांधी ने कांग्रेस का नेतृत्व अपने हाथों में लिया। महात्मा गांधी ने 'स्वराज्य' की मांग को जनता के सामने रखा। उन्होंने कहा कि भारत में कानून द्वारा स्थापित की गई अंग्रेजी सरकार जनसाधारण के शोषण के लिए चलाई जाती है। (In Gandhi's view 'the Government established by law in British India is carried on for the exploitation of the masses.) जलियां वाला बाग के रक्त-रंजित नाटक के विरुद्ध महात्मा गांधी ने १६२०—२१ में स्वाधीनता आन्दोलन प्रारम्भ किया। इसमें मुसलमानों ने भी पूर्ण सहयोग दिया। १६२२ में इसी आन्दोलन को सविनय आन्दोलन के रूप में परिणित किया गया। इसी वर्ष चौरी चौरा की घटना घटी। जन साधारण में हिंसा की भावना पर अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया। आन्दोलन स्थगित होने के बाद गान्धी जी ने अपना ध्यान रचनात्मक कार्यों में लगाया।

सन् १६२७ में साइमन कमीशन की नियुक्ति हुई। भारत में साइमन कमीशन का काले झण्डों से स्वागत हुआ और शेरे पञ्जाब लाला लाजपतराय को इस सम्बन्ध में बुरी तरह पीटा गया और वह क्रान्ति का अग्रदूत फिर कभी अपनी कार्यवाई के न उठा। १६२६ में साइमन कमीशन की रिपोर्ट के बाद शासन सुधारों का आश्वासन दिया गया, पर राष्ट्रीय भावना उससे भी शान्त न हुई। सन् १६३० में महात्मा गान्धी ने पुनः आन्दोलन छेड़ा और उनकी नमक-कर विरोधी अहमदा-

बाद से दांडी यात्रा शुरू हुई। १२ नवम्बर सन् १६३० में प्रथम गोलमेज सभा हुई और कांग्रेस ने इसका विरोध किया। तब इर्विन ने ४ मार्च १६३१ को गान्धी से समझौता (Gandhi-Irwin Pact, 1931) किया। गान्धीजी जेल से रिहा किये गये और वे द्वितीय गोलमेज सभा (१४ सितम्बर १६३१) में भाग लेने इंगलैंड गये। इस गोलमेज को गान्धी जी ने पूर्ण असफल बताया। गान्धीजी को लन्दन से लौटते ही जेल के सीखचों में बन्द कर दिया और भारतवासियों पर पुनः दमन प्रारम्भ हुआ। १६३२ में तृतीय गोलमेज सभा हुई जिसमें अंग्रेजों ने साम्प्रदायिक निर्णय (Communal Award) किया। गान्धीजी ने पूना में इसके विरोध में आमरण अनशन किया, और यह अनशन पूना समझौता (Poona Pact, 1932) से भंग हुआ।

भारत में राष्ट्रीय भावना अंग्रेजों के क्रूर दमन के पश्चात् भी प्रबल होती जा रही थी। तब ब्रिटिश ने १६३५ में शासन सुधार की घोषणा की। सन् १६३६ में ब्रिटिश प्रान्तों मे चुनाव हुए। कांग्रेस ७ प्रान्तों में विजयी हुई और उसने सात प्रान्तों का शासन अपने हाथों में ले लिया, परन्तु १६३६ में जब द्वितीय महायुद्ध छिड़ा तो भारत सरकार द्वारा मित्र राष्ट्रों के पक्ष में युद्ध घोषणा करने पर कांग्रेस मन्त्री मण्डल ने सातों पदों से त्यागपत्र दे दिया।

द्वितीय महायुद्ध में कांग्रेस ने अंग्रेजों से सहयोग नहीं किया, और १६४० में महात्मा गांधी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन किया, जिसमें अहिंसा में पूर्ण विश्वास रखने वाले और गांधीजी के सिद्धान्तों को मानने वाले कार्यकर्ताओं को ही भाग लेने की अनुमति दी गई। १६४२ में सर स्टैफोर्ड क्रिप्स अपनी योजना के साथ भारत आया और असफल होकर यहां से गया। तत्पश्चात् ६ अगस्त १६४२ को कांग्रेस ने 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का भीषण आन्दोलन किया। लाखों भारतवासी जेल में मेहमान बने। १६४४ में गांधीजी जेल से रिहा हुए। जून १६४५ में शिमला मे एक सभा हुई पर कोई परिणाम नहीं निकला। १६४६ में पैथिक लौरेन्स की अध्यक्षता मे एक मन्त्रीमण्डल (Cabinet Mission) भारत आया, पर मुस्लिम लोगों की जिद्द के आगे कोई समझौता नहीं हो सका। अन्त में लार्ड वैविल ने ६ दिसम्बर सन् १६४६ ई० मे एक काम चलाऊ सरकार बनाई। २६ फरवरी १६४७ को इंगलैंड के प्रधान मन्त्री ने घोषणा की कि लार्ड वैविल का स्थान लार्ड माउन्टबैटन लेगा। जून १६४७ में भारत स्वतन्त्रता कानून (India Independence Act) पास हुआ। इस कानून से भारत दो भागों में विभाजित हुआ, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान। १५ अगस्त सन् १६४७ को भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू बने। भारत के स्वतन्त्र होते ही विधान परिषद ने विधान-कार्य प्रारम्भ

किया । २६ जनवरी सन् १६५० को, जिस २६ जनवरी १६३० को भारत में प्रथम स्वाधीनता दिवस मनाया गया था, भारत पूर्ण स्वतन्त्र हो गया और अपने संविधान से शासित होने लगा । यह सब कांग्रेस के सद्प्रयत्नों के फलस्वरूप ही था ।

महात्मा गांधी का कांग्रेस में स्थान—महात्मा गांधी ने कांग्रेस की बागडोर उस समय अपने हाथों में ली, जबकि वह दो दलों में विभाजित थी । कोई भी दल अपनी नीति निर्धारित करने मे समर्थ नहीं हो रहा था । इन्होंने कांग्रेस में आते ही स्वराज्य की माँग की । जलियां वाला बाग के रक्तरंजित नाटक के विरुद्ध १६२०—२१ में आपने सत्याग्रह करके कांग्रेस में नवीन चेतना का सचार किया । चेतना के अतिरिक्त आपने कांग्रेस को एक अद्भुत शस्त्र से सुसज्जित किया । आपका कथन था कि मनुष्य प्रेम और स्वयं कष्ट उठाकर ही शत्रु को जीत सकता है, उसके विनाश से नहीं, लेकिन उसे परिवर्तित करके (Love or self-suffering can overcome the enemy, not by destroying but changing him.-M.L. Vidyarathi.) यद्यपि प्रथम भारतवासियों ने सत्याग्रह में विश्वास नहीं किया; क्योंकि गर्म दल का इस समय भारत में अधिक प्रभाव था, पर फिर भी जैसा कि पं. जवाहरलाल नेहरू कहते हैं कि इनके नेतृत्व ने देश के महत्वपूर्ण तत्वों को आकर्षित कर लिया और कांग्रेस में नई शक्ति एवं प्रतिष्ठा उत्पन्न हुई । अतः आपको कांग्रेस को पुनर्जन्म देने वाला कहें तो उचित ही है ।

१६२२ के आन्दोलन में आपने अहिंसा का पाठ कांग्रेस को सिखाया । चौरी चौरा काण्ड से आपने आन्दोलन बन्द किया और कांग्रेस का ध्यान रचनात्मक कार्यों की तरफ लगाया । भारत के उत्थान की कुंजी उन्होंने गृह उद्योग-धन्धों का विकास बताया । उनके चर्खे रूपी सुदर्शन ने भारतीय समाज मे एक नवीन क्रांति की । अछूतों का उद्धार कर कांग्रेस को १० करोड़ मनुष्यों की शक्ति प्रदान की । कांग्रेस कार्य-कर्त्ताओं का ध्यान समाज-सेवा पर आकर्षित किया और गावों मे कांग्रेस का प्रचार किया गया । इसके अतिरिक्त आपने कांग्रेस को साम्प्रदायिकता से बचाया ।

आप अपने को कांग्रेस का एक सिपाही समझते थे । सन् १६३१ में दूसरी गोलमेज सभा में आपने कहा कि जब तक मैं यह प्रमाणित नहीं कर दू कि कांग्रेस अधिक भारतवासियों का प्रतिनिधित्व करती है, मुझे वापिस भारत जाना चाहिए और अवज्ञा आन्दोलन करना चाहिए । (Unless I prove that the Congress represents the bulk of the people, I must go back and restart civil disobedience.—M.K. Gandhi) इसके बाद १६३२ में Communal Award

से कांग्रेस की शक्ति विभक्त होती देखी, तो कांग्रेस को कायम रखने के लिए आपने पूना में आमरण अनशन किया। अतः आप कांग्रेस के सच्चे सिपाही थे।

सन् १९४२ में आपने 'अंग्रेजों, भारत छोड़ो, आन्दोलन का समर्थन किया और जेल के सींखचों में बन्द हो गए। सन् १९४४ में जब आप जेल से रिहा हुए तो देश को निराशा के सागर में निमग्न पाया। आपने अकेले पुनः राष्ट्र में चेतना लाने का प्रयास किया और १९४५ में शिमला कान्फ्रेंस के अवसर पर सारे कांग्रेस के नेताओं को आपने जेल से रिहा करवाया। कैबीनेट मिशन से आपने वार्ता की और अन्त में भारत स्वतन्त्र करवाया। अतः आपको 'राष्ट्रपिता' कहें तो अनुचित नहीं होगा।

आपने अपनी विचारधाराओं से कांग्रेस को समाजवाद का समर्थक बनाया। कांग्रेस की नींव आपने अहिंसा और सत्यमार्ग पर रखी। सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलन जैसे अमूल्य शस्त्र बताये। कांग्रेस की दशा जब शोचनीय थी तब उसमें शक्ति का संचार किया। भारत स्वतन्त्र आपके प्रयासों व आपकी नीति के सहारे हुआ, अतः राधाकृष्णन का कथन ठीक है, "गांधीजी एक स्वतन्त्र जीवन के अग्रदूत थे, जो अपनी अलौकिक पवित्रता और वीरता के गुण से लाखों मनुष्यों पर अपनी शक्ति का प्रभाव रखते थे।"

राष्ट्रीय आन्दोलन और राष्ट्रीय एकता:—उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य यद्यपि राजनैतिक सत्ता की प्राप्ति करना था, किन्तु आन्दोलन का प्रभाव बहुमुखी एवं बहुमुखी रहा। राष्ट्र के आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक जीवन को नया मोड़ देकर उसे नये युग के अनुरूप बनाना आन्दोलन की विशेषता रही।

राजनैतिक पक्ष और एकता :—यद्यपि अंग्रेजी शासन का स्वरूप अभिशापी रहा, किन्तु राष्ट्र को राजनैतिक एकता प्रदान करने का श्रेय प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से आन्दोलन को ही मिला। आन्दोलन के पूर्व देश में इस प्रकार का संगठन और एकता कभी भी प्रतिबिम्बित नहीं हुआ था। ब्रिटिश हुकूमत ने समस्त देश को एक इकाई बना देश पर हिमालय से कन्या कुमारी, द्वारिका से असम पहाड़ियों तक एक ही कानून एवं न्याय व्यवस्था से शासन किया। यद्यपि एक केन्द्रित व्यवस्था तथा यातायात के साधनों का विकास अंग्रेजों ने अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये किया। ताकि देश का शोषण अधिकाधिक किया जा सके, किन्तु इसके लिए यह आवश्यक था। अंग्रेजों द्वारा स्थापित राजनैतिक एकता से सामान्य राष्ट्रीयता की

एकता को जन्म मिला। राजनैतिक चेतना के विकसित होने पर स्थानीय भक्ति का स्थान स्वदेश-भक्ति ने लिया। भारतवासियों ने इसी के परिणामस्वरूप पहली बार एक अखण्ड तथा स्वतन्त्र भारत की कल्पना की। कांग्रेस द्वारा प्रदत्त राष्ट्रीय स्वरूप का उल्लेख करते हुये महात्मा गांधी ने लिखा था :—

"..........यह किसी विशेष जाति, वर्ग अथवा हित की प्रतिनिधि नहीं है। यह समस्त भारतीय हितों तथा सभी वर्गों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। ....मुझे यों कहना चाहिये कि इसमें सभी धर्मों, सम्प्रदायों तथा हितों का पूर्णता के साथ प्रतिनिधित्व होता है।"

प्रारम्भ में राजनैतिक अधिकार दिलाने की ही लालसा कांग्रेस को रही और यह मध्यवर्गीय, तथा बुद्धि-जीवी तथा व्यापारियों की संस्था बनी रही। धीरे धीरे आदर्शों का प्रसार शहरों से दूर एक ग्रामों तक हुआ, फलस्वरूप कृषक एवं श्रमिक वर्ग इस आन्दोलन में आ कूदे और जनसंख्या का एक बड़ा भारी प्रतिशत जो अब तक पृथक सा था, सम्मिलित कर लिया गया। कांग्रेस के अधिवेशनों ने देश को राजनैतिक दृष्टिकोण से बांधा और एकय के अंकुर के प्रस्फुरण में योग दिया। इन अधिवेशनों में शासन में सुधार, भारतीयों की सामाजिक तथा आर्थिक दशा में सुधार किये जाने के सम्बन्ध में बल दिया गया। कांग्रेस की ताकत बढ़ी और विदेशी सरकार मुसलमानों के प्रति अपनी नीति में परिवर्तन कर फूट डालने लगी। कार्यों को राजद्रोहात्मक ठहराया गया और दमन चक्र फिरा। इस दमन का सीधा परिणाम यह निकला कि राष्ट्र में राष्ट्रीय चेतना के साथ साथ 'एक सबके लिये और सब एक के लिये' की भावना का संचार हुआ। उदारवादियों में सभी नेता ब्रिटिश शासन के प्रति राजभक्त होते हुये भी देश भक्त रहे। उन्हें अंग्रेजों के न्याय, बुद्धि, तथा दया की भावना में दृढ़ विश्वास था। संसार की महानतम प्रतिनिधि सभा संसदों की जननी ब्रिटिश कॉमन्स सभा में उनका दृढ़ विश्वास था।

विभिन्न नेता और एकीकरण के प्रयत्न :—नेताओं द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रथम चरण में ही राष्ट्रीयता की भावना का निर्माण करने में कठिन प्रयत्न किये गये। भारतीयों को राजनैतिक शिक्षा प्रदान की गई और प्रजातन्त्रात्मक सिद्धान्तों का प्रसार कर प्रबल जनमत संगठित किया गया।

दादा भाई नौरोजी :—जिन्हें भारत के बढ़े वृद्ध पुरुष (Grand old man of India) के नाम से पुकारा जाता है का प्रारम्भिक राष्ट्र निर्माताओं में महत्वपूर्ण स्थान है। दादाभाई ने १८५० में एल्फिन्स्टन कॉलेज में प्रध्यापन कार्य

आरम्भ किया। १८५६ के पश्चात् एक पारसी कम्पनी की तरफ से इंगलैंड चले गये और लौटने पर सार्वजनिक जीवन में रुचि लेना प्रारम्भ किया। 'स्वराज्य' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग इन्हीं की देन है। भारत की आर्थिक समस्याओं का सीधा विश्लेषण कर उन्होंने विदेशी शासन की तीव्र आलोचना की। १९०५ के बंगविच्छेद के विरोध में आन्दोलन कर एक राष्ट्र का परिचय दिया।

गोपाल कृष्ण गोखले :—गोखले का स्थान चोटी के नेताओं में आता है। १८ वर्ष की अवस्था में अपने जीवन का प्रारम्भ एक अध्यापक के रूप में प्रारम्भ कर २२ वर्ष की अवस्था में बम्बई विधान परिषद् के सदस्य बने। १९०५ में वे कांग्रेस के अध्यक्ष बने। वेल्बी कमीशन के समक्ष उन्होंने दक्षिण सभा का प्रतिनिधित्व किया। इसी वर्ष उन्होंने Servants of India Society की स्थापना की, जो राष्ट्रीय एक्य की दिशा में अनूठा उदाहरण है। गोखले जो राष्ट्रवादी अत्यन्त संयत भाषा में बोलते थे और अपने तर्कों द्वारा जनता को आसानी से आकर्षित कर लेते थे। जब कर्जन ने शासन में कुशलता बढ़ाने के बहाने राष्ट्रीय प्रगति और एकता में रोड़े अटकाने शुरु किये तो उनके देश-प्रेम से भरे हृदय में छिपा हुआ विद्रोह पनपने लगा। फलतः इनके भाषणों में काफी उग्र व चुटीली भाषा का प्रयोग बढ़ने लगा और एक नये उग्रवाद का जन्म हुआ।

भारतीय राजनैतिक जीवन में एक नई बात यह हुई कि अब तक तो राष्ट्रीय आन्दोलन में केवल मध्यवर्ग के शिक्षित लोग ही भाग लेते थे किन्तु शनैः शनैः यह आन्दोलन एक जनवादी आन्दोलन का रूप लेने लगा। राजनैतिक सुधारों के लिये उदारवादी नीति छोड़कर उग्रवादी नीति की नींव पड़ी और ब्रिटिश वस्तुओं तथा संस्थाओं का बहिष्कार आरम्भ हुआ और राष्ट्रीय *न्याय मंडल, जनतन्त्र संस्थाओं* आदि की माँग हुई। लार्ड कर्जन के प्रतिगामी शासन ने केन्द्रीकरण की नीति को प्रोत्साहन दिया। विश्व विद्यालयों का सरकारीकरण ऑफिसियल सिक्रेट एक्ट का पारित करना, बंगाल विभाजन, भारतीयों के प्रति अविश्वास की भावना, सैनिक नीति, दिल्ली दरबार आदि ने जनता को एक साथ आवाज़ उठाने को बाध्य किया। शासन की ओर से अकाल तथा महामारी से पीड़ित जनता के कष्टों का निवारण करने के लिये जिस नीति को क्रियान्वित किया, उसने भी राष्ट्रीयता की जागृति और ऐक्य में योगदान दिया। सरकारी सहायता अपर्याप्त रही। पूना में फैले प्लेग में १७३००० व्यक्ति काल कवलित हुये।

लोकमान्य तिलक :—को भारतीय राजनीति के पदार्पण एक महत्व पूर्ण घटना है। तिलक का जीवन नवयुवकों के लिये उग्रवादी दृष्टिकोण लेकर आया।

'स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' का नारा बुलन्द हुआ। आर्थिक असंतोष का कारण बढ़ती हुई निर्धनता थी, जिसका उत्तरदायित्व अंग्रेजी सरकार की नीतियों पर लादा गया।

इसी समय अन्तराष्ट्रीय घटनाओं ने भारतीय जन जीवन को प्रभावित किया और उदारवादियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। लोकमान्य तिलक ने अपने 'केसरी' और 'मराठा' समाचार पत्रों के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को फैलाने में अभूतपूर्व कार्य किया। उन्होंने महाराष्ट्र के नवयुवकों में आत्म निर्भरता, आत्म विश्वास, तथा आत्म बलिदान की भावना जाग्रत करने के लिये गोवध विरोध समितियाँ, अखाड़ों व लाठी क्लबों की स्थापना की। गणपति, शिवाजी उत्सवों को प्रारम्भ करने का उद्देश्य लोगों में मिल जुलकर कार्य करने की प्रेरणा को जाग्रत करना, तथा शौर्य में शिवाजी के आदर्शों को सामने रखते हुये अंग्रेजों से मोर्चा लेना और देश को आजाद करना रहा। लाठी प्रदर्शन, जुलूस, सभाओं, भाषणों, कथाओं जैसे कार्य-क्रम रख, देश को स्वतन्त्र करने का प्रयत्न किया गया।

'केसरी' में लेखों का प्रकाशन हुआ और सरकारी नीति की भर्त्सना की गई चॉफेकर बन्धुओं को गिरफ्तार कर फाँसी की सजा दी गई। तिलक ने पत्रों में प्रतिवाद छापा और उन्हें सपरिश्रम कारावास का दण्ड दिया गया। तिलक को माण्डले जेल भेजा गया और मुक्त होने के बाद फिर उन्होंने श्रीमती एनीबिसेंट के साथ होम रूल आन्दोलन में भाग लिया। इन्होंने अपूर्व संगठन किये और भारतीय राष्ट्रीयता के प्रसार में डटकर प्रयत्न किये। बंग विच्छेद आन्दोलन यद्यपि राजनीतिक था, किन्तु उसने धार्मिक रूप ले लिया। हिन्दुओं पर अत्याचार हुये और सरकार द्वारा मुसलमानों को आश्रय दिया गया। फलतः विपिन चन्द्र पाल और अरविन्द घोष जैसे दो नेता देश का नेतृत्व करने आगे बढ़े।

विपिन चन्द्रपाल :—ने १८८७ में कांग्रेस में प्रवेश किया उनके लेख उग्र होते थे और भाषण प्रभावशाली। "New India" का सम्पादन कर उन्होंने फैले हुये असंतोष की सूचना सरकार को दी। उन्होंने निष्क्रिय विरोध विचार धारा (Passive Resistance School) को जन्म दिया और स्वदेशी का प्रयोग, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, निष्क्रिय विरोध, तथा सरकारी नौकरियों का बहिष्कार जैसे कार्य-क्रम अपना कर, क्रान्तिकारी दलों को प्रोत्साहन दिया।

अरविन्द घोष जिनका जन्म बंगाल में ब्राह्मण परिवार में हुआ था, अंग्रेजी शिक्षा से प्रभावित थे। स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों में घोष का नाम विशेष रूप

से उल्लेखनीय है। उन्होंने 'वन्दे मातरम्' पत्र प्रकाशित कर 'भारत जननी' की कल्पना की। उनकी विचारधारा धार्मिकता से ओत प्रोत और उनकी गर्म आध्यात्मिकता से ओत प्रोत थी। वे आयरलैण्ड की सिनेफेन पार्टी के कार्य-क्रम में विश्वास रखते थे। आतंकवादी कार्य-क्रमों के लिये उन्हें गिरफ्तार किया गया किन्तु अपराध सिद्ध न होने के कारण उन्हें छोड़ दिया गया और तत्पश्चात् उन्होंने देश में धार्मिक एक्य के प्रसार के लिये राजनीति से सन्यास ले लिया और पांडिचेरी में योगाश्रम की स्थापना की।

लाला लाजपत राय :—का नाम पंजाब प्रान्त से जुड़ा हुआ है। पंजाब में लालाजी का प्रवेश एक धार्मिक तथा सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में हुआ। वे "पंजाब केसरी" के नाम से विख्यात हुये और समाज सेवा का व्रत लेकर कर्मभूमि में उतर पड़े। गोखले के साथ लालाजी ने भारत का कई बार प्रतिनिधित्व किया। महात्मा गान्धी के असहयोग आन्दोलन में भाग लेकर 'स्वराज्य दल' की नीति का समर्थन किया। साइमन कमीशन के विरोध में किये गये प्रदर्शन के समय जब पुलिस द्वारा उन पर लाठी चार्ज किया गया तब उन्होंने लिखा था-'मुझ पर किया गया लाठी का एक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के कफन में कील बन कर रहेगा।' इसका सीधा परिणाम यह निकला कि जन साधारण उनके इस प्रतिशोध का बदला लेने के लिये कमर कस कर तैयार हो गया। सभी प्रान्त प्रतिशोध के लिये तैयार हो गये और देश एक बार फिर एक्य की आवाज से गूंज उठा। शीघ्र ही आन्दोलन ने जनवादी आन्दोलन का रूप धारण कर लिया।

दादा भाई नौरोजी :—रानाडे, इत्यादि नेताओं ने देश की एकता के लिये अधिक प्रयत्न किये। यूरोप में श्यामजी के नेतृत्व में क्रान्तिकारी अपने कार्य-क्रम में संलग्न थे। विदेशों में 'यंग इण्डिया एसोसियशन' तथा इण्डो अमेरिका एसोशियशन की चर्चा हुई। इन संस्थाओं का निर्माण आयरलैण्ड के क्रान्तिकारियों के दलों की पद्धति पर हुआ। भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, जतीन्द्रनाथ दास ने अंग्रेजी शासन को आमूल उखाड़ फेंकने के लिये कमर कस डाली। इन क्रान्तिकारियों ने हंसते हंसते अपने प्राणों की बलि देकर राष्ट्र को यह दिखा दिया है कि स्वतन्त्रता के लिये प्राणों की बाजी भी कम है और भारत का प्रत्येक कोना इस प्रकार के बलिदान के लिये तैयार है।

भारत में राजनैतिक आन्दोलन के प्रारम्भ की सफलता और एक होकर संघर्ष करने की भावना ने अंग्रेजों को सतर्क कर दिया। 'फूट डालकर शासन करने की नीति' ने देश के राजनैतिक गगन में साम्प्रदायिकता का प्रवेश करवाया।

हिन्दू व मुसलमानों दोनों के मध्य जो 'जातीय विभेद था, उसका लाभ उठाकर अंग्रेजों ने साम्प्रदायिक समस्याओं को जन्म दिया। अंग्रेजों की प्रारम्भिक नीति में मुसलमानों की स्थिति अधोगति की ओर थी। आर्थिक क्षेत्र में मुसलमान बरबाद हो गये। हस्त कला, कौशल, और उद्योग-धन्धे चौपट हो गये। बंगाल के स्थायी बन्दोबस्त ने भी इनकी दशा में गिरावट ही उत्पन्न की। मुसलमान समय की गति के साथ नहीं चल सके और विद्वेष के कारण वे सभी क्षेत्रों में पिछड़ गये। मुसलमानों में असंतोष फैला और अलीगढ़ आन्दोलन चल निकला।

सर सैय्यद अहमद खाँ :—सर सैय्यद ने जो राष्ट्रवादी थे, अंग्रेजों की सहानुभूति [illegible]ने के लिये मुसलमानों को राजभक्ति प्रदर्शन का एक मात्र उपाय बताया। [illegible]ग्रेजों ने इनकी स्थिति का लाभ उठाकर इस वर्ग को कांग्रेस से अलग रखने का [illegible]यत्न किया। मुस्लिम ऐजूकेशन कान्फ्रेंस की स्थापना हुई। सर सैय्यद खाँ विचारों [illegible]प्रिंसीपल बैक का प्रभाव प्रतिलक्षित हुआ और विघटन तथा साम्प्रदायिक संघर्ष [illegible]तत्वों को बल मिलने लगा। धीरे धीरे मुसलमानों ने अंग्रेजों की पूरी [illegible]हानुभूति प्राप्त करली। १९०५ मे बंगाल विभाजन के समय मुसलमानों का एक [illegible]ष्ट मंडल वायस राय से सर आगा खाँ के नेतृत्व में मिला। मुसलमानों को पृथक [illegible]तिनिधित्व देने के सिद्धान्त पर समझौता हुआ और १९०६ मे मुस्लिम लीग की [illegible]थापना हुई।

१९१३ तक मुस्लिम लीग जो प्रारम्भ मे कांग्रेस के विरोध मे स्थापित की [illegible]यी थी अब अपने दृष्टिकोणों में परिवर्तन लाने लगी और लीग का प्रतिनिधित्व [illegible]र से राष्ट्रवादी विचारकों के हाथ मे आया। मोहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में [illegible]स्लिम लीग में भी अपवाद ने जन्म लिया और मुसलमानों में राष्ट्रीय चेतना का [illegible]ार किया गया। इन्होंने संकुचित साम्प्रदायिकता, तथा अंग्रेजी शासन के प्रति [illegible] प्रदर्शन की मौनीति का विरोध किया। मौलाना आजाद, मुहम्मद अली तथा [illegible]त अली के प्रयत्नों से १९१६ में कांग्रेस व लीग मे समझौता हुआ और राष्ट्र एक [illegible] फिर एक्य की दिशा की ओर बढ़ा।

महात्मा गान्धी और राष्ट्रीय ऐक्य के प्रयत्न :—महात्मा गांधी अफ्रीका से [illegible]साथ जीवन का एक विशिष्ट दर्शन तथा एक ऐसी राजनैतिक टेकनीक लाये जिसकी उपयोगिता सिद्ध हो चुकी थी। चम्पारन, खेडा, अहमदाबाद मे किये सत्याग्रहों ने जनता का ध्यान आकर्षित किया और रौलट एक्ट का विरोध [illegible]को सारा देश एक बार फिर एक होकर गांधीजी के साथ आ डटा।

सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ और महात्मा गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया। पंजाब में इसी एक्ट के विरोध में जलियाँ वाले बाग में सभा हुई और डायर द्वारा गोली चलाई गई जिसमें सैकड़ों व्यक्ति मार दिये गये। एण्ड्रयूज महोदय के शब्दों में यह हत्याकाण्ड 'कत्ले आम' था। दमनचक्र चला और भयंकर अमानवीय व्यवहार के दर्शन हुये। इसे मार्शल लॉ कहा गया।

मार्शल लॉ तथा हत्याकाण्ड के लिये सारे देश में असंतोष प्रकट किया गया और प्रत्येक क्षेत्र में सरकार के कामों की निन्दा की गई। यह राजनैतिक व स्वतन्त्रता आन्दोलन का ही फल था कि देश व जातियाँ अपने मत-भेदों को भूलकर एक होकर संघर्ष के लिये आ खड़े हुये। इसी की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुआ। सभी प्रान्तों के देश भक्त और कांग्रेसी नेता अधिवेशन में भाग लेने अमृतसर दौड़ पड़े। अमृतसर की कांग्रेस ने यह दिखा दिया कि राष्ट्र एक है, राष्ट्र में रहने वाले व्यक्ति एक हैं यदि उसके एक अंग पर चोट पहुंचे तो दूसरा अंग भी तिलमिला उठता है।

राष्ट्र में जो अंग्रेजों की 'फूट डालो शासन करो' की नीति से कटुता आ गई उसकी ओर युग पुरुष गांधी का ध्यान आकर्षित हुआ। महात्मा गांधी ने २४ नवम्बर १९१९ को अखिल भारतीय सम्मेलन शुरु किया। गांधीजी ने इसे हिन्दू मुसलमानों के बीच मैत्री बढ़ाने, तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में मुसलमानों की सहानुभूति प्राप्त करने का एक स्वर्णिम अवसर समझा और महात्मा गांधी की एक आवाज पर अन्य सम्प्रदायों के व्यक्ति भी मुसलमानों की सहायतार्थ खिलाफत सम्बन्धी अहिंसात्मक आन्दोलन में सम्मिलित हो गये। आर्य समाजी नेता स्वामी श्रद्धानन्द ने भी आन्दोलन की सभी कार्यवाहियों में सम्पूर्ण सहयोग देकर हिन्दू-मुसलमान मत-भेदों को दूर करने में बड़ा प्रयत्न किया। अंग्रेजों ने उत्तेजित मुसलमानों के साथ कोई सम्मानपूर्ण समझौता न किया अतः 'हिजरत' हुआ और कांग्रेस की नीतियों में परिवर्तन आया।

महात्मा गान्धी के 'असहयोग आन्दोलन' ने भी देश की एकता को सुदृढ़ बनाया और जन जागृति की। बहिष्कारों द्वारा विदेशी हुकूमत को दूर फेंकने के कार्य-क्रम हाथ में लिये गये। सरकार ने जितना ही बहिष्कार आन्दोलन को दबाया उतना ही वह उभड़ा। अहमदाबाद अधिवेशन हुआ और फिर बारदोली, तथा चौरी चौरा काण्ड सामने आये। इसी समय राजनैतिक कार्य-क्रमों के साथ देश में धार्मिक सुधार की लहर दौड़ी।

महात्मा गांधी के इन आन्दोलनों ने देश में नवीन उत्साह की लहर दौड़ादी और जन आन्दोलनों का सूत्र हुआ।

स्वराज्यवादियों ने स्वराज्यदल की स्थापना की ताकि देश की शासन व्यवस्था मे पहुंचकर देश की आज़ादी की बात सोची जाय। देश बन्धु, मोतीलाल, चितरंजन दास जैसे व्यक्तियों ने कौंसिलों की कुर्सियों पर कब्जा करके सरकार के गढ़ को तोड़ना अत्यावश्यक समझा।

साइमन कमीशन की नियुक्ति से भारतीय क्षुब्ध हुये और समस्त नेताओं ने इसकी घोरनिन्दा की। सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया गया, जिसने एक बार फिर एक निर्णय ले राष्ट्रीय एकता का परिचय दिया। १९२९ मे इंगलैंड मे मजदूर दल सत्तारूढ़ हुआ और इरविन घोषणा आंसू पोंछने के लिये सुनाई गई। इरविन ने भारतीय नेताओं से भेंट की और जवाहरलाल नेहरू भारत के राजनैतिक मंच पर आये, नेहरू का २६ जनवरी का घोषणा पत्र इतिहास प्रसिद्ध है।

देश में सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरु हुआ, जिसमें सभी वर्गों ने भाग लिया और राष्ट्रीय एक्य का फिर से परिचय दिया गया। सप्रू जयकर शान्ति के प्रयास किये गये और गांधी इरविन पैक्ट हुआ।

भगतसिंह एवं गणेश शंकर विद्यार्थी के बलिदान अमूल्य रहे, जिन्होंने राष्ट्रीय एकता का परिचय दिया और साम्प्रदायिकता वादियों ने भी खुले आम राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेने को कमर कसी। गोलमेज कांफ्रेंस हुई और कांग्रेस संसदवाद की ओर दौड़ी। संसदवाद मे विश्वास और समर्थन ने राष्ट्रीय एक्य का फिर परिचय दिया। महात्मा गांधी ने राजनैतिक कार्य-क्रमो के अन्तर्गत रचनात्मक योजनायें रक्खी, जिन्होंने सभी वर्गों को एकीकृत करके समस्त राष्ट्र को लाभान्वित किया।

स्वतन्त्रता आन्दोलन के अन्तर्गत अन्य कार्य-क्रम और राष्ट्रीय एक्य :—

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि जन आन्दोलन ने देश के प्रत्येक कोने के व्यक्तियों का सम्पर्क स्थापित किया। सकीर्ण प्रान्तीयता और क्षेत्र-भावना टूटी और राजनैतिक एकता की स्थापना हुई। यद्यपि पाश्चात्य सभ्यता और शिक्षा का प्रसार देश मे हो रहा था, तथापि देश मे प्राप्त यातायात एवं सन्देश वाहन के साधनों के प्रसार से देश मे राष्ट्रीय एक्य पनपने लगा। अंग्रेजी भाषा के प्रसार से योरोपीय देशों की जनतन्त्रात्मक प्रणाली की नकल भारत में भी उचित समझी जाने लगी। ऐसा होने से विभिन्न प्रान्त निकट सम्पर्क में आये और सभी प्रान्तों के नेताओं

को एक ही मंच पर काम करने की सुविधा मिली। साथ ही साथ प्रत्येक प्रान्त के व्यक्तियों को राष्ट्रीयता के विकास में कंधे से कन्धा मिला कर काम करने का मौक मिला।

समाचार पत्र, साहित्य सृजन और एक्य :—भारत में छापेखाने का विकास आन्दोलन की ही देन है। कार्य-क्रमों को चलाने, अपनी विचार धाराओं के प्रचार, *राष्ट्रीय जागरण के लिए विदेशी शासन की त्रुटियों से जनता को परिचित कराने,* भारत विरोधी अनर्गल प्रलापों का मुँह तोड़ जवाब देने के लिए समाचार पत्रों तथा साहित्य का प्रकाशन आवश्यक बन गया। फलस्वरूप समाचार पत्रों का प्रकाशन हुआ। क्रान्ति के पश्चात् समाचार पत्रों के प्रकाशन की बाढ़ आ गई। राममोहन राय की सम्वाद कौमुदी बाम्बे, समाचार, बंगदूत, रास्त गुफ्तार, केसरी, मराठा, टाइम्स ऑफ इण्डिया, मद्रास मेल, स्टेट्स मैन, सिविल एण्ड मिलिटरी गजेट, अमृत *बाजार पत्रिका, ट्रिब्यून इत्यादि चल निकले। इन समाचार पत्रों का तत्कालिक* प्रभाव राष्ट्रीय एक्य की सुदृढ़ता के रूप में प्रतिलक्षित हुआ।

कथा तथा उपन्यासों द्वारा जनता को शिक्षित कर नये भावों का प्रसार *हुआ। बंकिमचन्द्र का 'आनन्द मठ' तथा 'वन्देमातरम्' बहुत प्रसिद्ध हुए। माइकेल* मधुसूदन दत्त, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, नर्मद, चिपलूणकर ने उत्कृष्ट साहित्य का सृजन कर राष्ट्रीय एकता की आवाज़ बुलन्द की।

नये व्यवसाय और एक्य :—पुरानी रूढ़िवादी सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन आया, पुरातन ग्रामीण व्यवस्था का विनाश हुआ, बुद्ध जीवियों, डाक्टरों, वकीलों, इन्जीनियरों के व्यवसायों में वृद्धि हुई। आगे चलकर ये ही व्यक्ति राष्ट्रीय आन्दोलन की धुरी बने। नागरिक स्वतन्त्रता की विचार धारा पनपी और सामूहिक आन्दोलनों को प्रोत्साहन मिला। नये व्यवसायों से राष्ट्रीय एकता के सूत्र और *मज़बूत बने, क्योंकि प्रत्येक वर्ग की शक्ति पारस्परिक थी।*

आर्थिक असन्तोष और एक्य :—अंग्रेज़ी शासन ने आर्थिक क्षेत्र में जिन *नीतियों को लागू किया उनसे जन-साधारण असन्तुष्ट रहा। भारत के समृद्ध उद्योग धन्धे चौपट हुए क्योंकि न उनका संरक्षण था अपितु दूसरी ओर विदेशी प्रतिस्पर्द्धा थी। विदेशी शासकों ने कुटीर उद्योग-धन्धे चौपट किये। कच्चे माल का निर्यात विदेशों को हुआ और विभिन्न प्रकार के करों के बोझ ने जन साधारण की कमर तोड़ दी। अंग्रेज़ों की भेदभरी नीति, अकाल, दुर्भिक्ष, महामारी, दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था आदि जो साधारण तौर बन गये थे, ने असन्तोष की ज्वाला को तीव्र किया*

और व्यक्ति एक होकर अपने सामान्य उद्देश्य (Common Cause) के लिये संगठित हो गये। इस प्रकार आर्थिक असन्तोष ने राष्ट्रीय एक्य को और भी मजबूत किया।

धार्मिक तथा सामाजिक सुधार :—उन्नीसवीं सदी में हुए इन आन्दोलनों से भारतीय राष्ट्र भावना का विकास हुआ और भारतीय पुरानी संस्कृति को पहचानने के योग्य बने। राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्रनाथ, केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस ने विघटित हिन्दू जाति को पुनः सगठित किया। धर्मों में फैली विभिन्न बुराइयाँ, जाति पाँति, अस्पृश्यता, बाल, विवाह एवं वृद्ध विवाह को आमूल उखाड़ कर स्वस्थ जनमत तैयार किया और राष्ट्रीय स्तर पर काम कर हिन्दू-जाति को और अधिक विघटित होने से बचाया।

समाज सेवा के क्षेत्र में रूसी महिला मैडम हेलेना पट्रोवना ब्लेवरनकी तथा अमरीकी सैनिक अफसर हेनरी स्टील ऑलकाट ने थियोसोफिकल आन्दोलन के सहारे नव जागरण किया और राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार किया।

ग्रामोत्थान्, कृषक और श्रमिक :—भारत वर्ष गाँवों में रहता है यह गाँधीजी मानते थे अतः अपने आन्दोलनों में ग्रामोत्थान तथा कृषक उन्नति के कार्य-क्रमों को विशेष स्थान देकर उन्होंने जन संख्या के इतने बड़े प्रतिशत को अपने साथ लिया। ग्रामोत्थान के काम उनके कार्य-क्रमों के विशेष अङ्ग बने और गाँवों के चतुर्मुखी विकास की योजना बन कृषि-सुधार के प्रयत्न हुए। अशिक्षा, गरीबी, भुखमरी, निर्धनता आदि का निवारण कर राष्ट्र में आत्म विश्वास की लहर दौड़ गई। गाँवों के लिये आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और स्वास्थ्य सम्बन्धी कई कार्यक्रम अपनाये गये। इस प्रकार ग्रामीण जनता को एक झण्डे के नीचे लाकर राष्ट्रीय एक्य का पाठ पढ़ा कर महात्मा गाँधी ने अपूर्व कार्य किया।

मजदूर वर्ग को, जो ब्रिटिश औद्योगिक क्रान्ति के दुष्परिणामों का फल भोगने लगा था, महात्मा गाँधी ने उठाकर गले लगाया और उनके उत्थान को अपने ध्यान में रखा। सामाजिक सुरक्षायें, [illegible] उन्हें भी नये जागरण से परिचित कराया। फलतः श्रमिक [illegible] लिये महात्मा गाँधी के साथ आ डटा।

[illegible] की समस्या बहुत ही [illegible] निम्न जातियों को

अपने समकक्ष नहीं मानते थे और उन्हें अछूत कहा जाता था। इन व्यक्तियों को न सामाजिक और न राजनैतिक अधिकार ही प्राप्त थे। उनके शरीर से छू जाने से सवर्ण हिन्दू को गंगाजल से स्नान करना होता था। यहां तक कि इनकी छाया भी भयानक थी। महात्मा गांधी ने समाज के इस पृथक् वर्ग से आगे बढ़ कर हाथ मिलाया और 'हरिजन' नाम से उन्हें सम्बोधित किया जाने लगा। महात्मा गांधी स्वयं हरिजन बस्तियों में गये और उनके दुःख दर्द के निवारण में लग गये। उनके लिए महात्मा गांधी ने सवर्ण हिन्दुओं द्वारा अच्छे व्यवहार की मांग की। मंदिर देवालयों के द्वार खुलवाये और सभी प्रकार के सामाजिक अधिकारों को दिला कर उन्हें संगठित किया। इनके लिए समाज में समुचित स्थान की प्राप्ति के प्रयत्न हुए और उन्हें भारतीय समाज के प्रमुख अङ्ग के रूप में स्वीकार कर सभी प्रकार का संरक्षण दिया। ऐसी स्थिति में महात्मा गांधी ने इस अवहेलित वर्ग को भी राष्ट्रीयता की भावना से ओत प्रोत कर राष्ट्रीय एक्य की नींव को और भी मजबूत किया।

नारी आन्दोलन और राष्ट्रीय एक्य :—महात्मा गांधी ने जब अपना असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया तो वे इस बात से भली प्रकार परिचित थे कि यह आन्दोलन नारी-समूहों के भाग लिये बिना सफल नहीं हो सकता है। १९२० में होने वाले कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में पहली बार १६० महिलाओं ने भाग लिया। महात्मा गांधी के अथक् प्रयत्नों के फलस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन को नारी सहयोग द्वारा विस्तृत किया गया। भारतीय महिलाओं में आत्म विश्वास जगा और उन्होंने राजनैतिक सजगता पाई, समस्त भारत की नारियों ने महात्मा गांधी द्वारा चलाये 'कोई कर नहीं आंदोलन', सामूहिक सत्याग्रहों, धरनों, पुलिस के घेरों को तोड़ना, पिकेटिंग, प्रदर्शन, जुलूसों, बहिष्कार, तथा सविनय अवज्ञा आंदोलनमें नारियों ने सम्मिलित होकर राष्ट्रीयता में सहयोग दिया। नारी जगत संगठित हुआ और समाज के इस बड़े भारी भाग ने जो अब तक घर की चार दीवारों में बँधा हुआ था आगे बढ़ कर राष्ट्रीय एक्य को प्रोत्साहन देकर अपने कर्तव्यों का पालन किया।

योग्यता-प्रश्न

1. Topics For Essays (निबन्ध के विषय)

Write an essay on (निबन्ध लिखिये)

(a) India and its diversities
(भारत और उसमें प्राप्य विभिन्नतायें)

(b) Unity amidst diversities,
(विभिन्नताओं में एक्य)

(c) Striggle for Independance in 1857
(१८५७ का स्वातन्त्र्य संग्राम)

(d) Indian Leaders and efforts for unity
(भारतीय नेता और एकता के प्रयत्न)

(e) Freedom Movement
(स्वातन्त्र्य आन्दोलन)

2. Brief Notes (संक्षिप्त टिप्पणियां)

Write brief notes on : (संक्षिप्त टिप्पणियां दीजिये)

(a) Problem of unity in India
(भारत में एक्य की समस्या)

(b) Part played by Histroy and Geography in unifying the Nation.
(राष्ट्र को एकीकृत करने मे देश के इतिहास और भूगोल का योग)

(c) Freedom Movement and its unifying Role
(स्वातन्त्र्य आन्दोलन और एकीकरण में योग)

(d) Gandhi ji and his role
(महात्मा गांधी और एकीकरण में योग)

(e) Efforts & other programmes under freedom Movement
(स्वातन्त्र्य आंदोलन के अन्तर्गत अन्य प्रयत्न एवं कार्य क्रम)

(f) Indian women and their contribution for National unity.
(भारतीय नारी और राष्ट्रीय एक्य में उनका योग दान)

3. Objective Type Questions

Answer is "yes" or "no"
निम्नलिखित का उत्तर 'हां' या 'ना' में दीजिये —

(a) People following only one religion live in India.
भारत में एक ही धर्म को मानने वाले व्यक्ति रहते हैं।

(b) Indian life is influenced by only one language and one race.
भारतीय जीवन केवल एक भाषा और एक जाति द्वारा प्रभावित है।

(c) There is not a single Non-Indian language in India.
भारत में एक भी अभारतीय भाषा नहीं है।

(d) *Social Reforms and Bhakti cult hindered National unity.*
सामाजिक सुधारों एवं भक्ति सम्प्रदाय ने राष्ट्रीय एक्य में बाधा डाली।

(e) History of Congresse is mainly a history of political Movement in India.
कांग्रेस का इतिहास मुख्यत भारत राजनैतिक आन्दोलन का इतिहास है।

(f) Lokmanya Tilak fought against Britishers through his papers.
लोकमान्य तिलक ने अंग्रेजो से अपने पत्रो द्वारा टक्कर ली।

(g) *Sir Syed Ahmed Khan's philosophy helped Britishers in* dividing India.
सर सैय्यद अहमद खां के विचारों ने भारत के विघटन में अंग्रेजों की मदद की।

(h) Non-Co-operative Movement aroused a feeling of unity.
असहयोग आन्दोलन ने एक्य की भावना को प्रोत्साहित किया।

4. Fill in the correct words सही शब्द भरिए :—

(a) Indian National Congress was formed is......[1836, 1863, 1885] by........[A.O. Hume, Auckland Colvin, Mahatma *Gandhi*]
भारतीय कांग्रेस की स्थापना.........(१८३६, १८६३, १८८५) में ......(ह्यूम, कॉलविन महात्मा गांधी) ......द्वारा की गई थी।

(b) Freedom Movement was a movement of....[Middle men, Farmers, Indians, Women, Political leaders]
स्वातन्त्र्य आंदोलन ...... (मध्यम वर्ग, किसान, भारतीयों, महिलाओं, राजनैतिक नेताओं का आन्दोलन था।

(c) Servants of India Society was started by........[*Ranade*, Gokhale, Tilak, Lal Bahadur Shastri]
सर्वेन्ट ऑफ इण्डिया सोसाइटी की स्थापना..... (रानाडे, गोखले, तिलक, लालबहादुर शास्त्री) द्वारा हुई थी।

(d) Divide and rule policy of..........[Syed Ahmed Khan, Jinnah, British rulers] was successful.

..........की 'फूटालो राज्य करो' नीति सफल रही । (अहमद खां जिन्ना, ब्रिटिश शासकों)

(e) Harijan Movement was started by.. ...[Gandhij, Sarojini Naidu, Dayanand Saraswati]

हरिजन आन्दोलन .... (गांधी, नायडू, दयानन्द सरस्वती) द्वारा चलाया गया था

(f) ....[Rural uplift, urban uplift] was one of the programmes of the Congress.

............(ग्रामोत्थान, शहरोत्थान) कांग्रेस पार्टी के रचनात्मक कार्यक्रम में से एक था ।

5. Fill in the blanks. (खाली स्थानों को भरिये)

(a) The total area of India is....Sq. miles and there are diversites like (a)......(b)...... & (c) ....

भारत का कुल क्षेत्र फल.......... वर्ग मील है जिसहैं (अ)..........
(ब) .... (स)...........जैसी असंख्या विभिन्नतायें ।

(b) All the four temples (1)........(2)......(3)...... (4)... of India are the Symbol of our unity.

(प) भारत में चारों मंदिर (१)........ (२) ... .(३) ....
(४)... ....हमारी एकता के प्रतीक हैं ।

(c) ...., ..., ..., were among the rulers who tried to give a political, and cultural unity to India.

............राजाओं में से थे जिन्होंने देश को राजनैतिक एवं सांस्कृतिक एकता दी ।

(d) The main objectives of the Congress were :-
(1)......(2)......(3)......(4)..........
कांग्रेस के मुख्य उद्देश्य (१).........(२) ....(३)...............(४)
.... थे ।

(e) (1)......(2)......(3)......(4)......all participated in the Revolution of 1857.

(१)......(२)........(३).........(४).......सभी ने १८५७ की क्रांति में भाग लिया था।

(f) Besides political Movement the Congress also orgainsed (a)......(b)......(c)........(d)........movements.

कांग्रेस ने राजनैतिक आन्दोलन के साथ (१)........(२)..........(३).........(४).........आन्दोलनों को भी चलाया।

राष्ट्रीय अन्दोलन में विभिन्न राजनैतिक प्रवृत्तियां और आन्दोलन का देश के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन पर प्रभाव

(Various political trends in the Nationalist Movements. Impact of National Movement on Socio-economic life in the Country.)

पिछले अध्याय में स्वातन्त्र्य आन्दोलन का विवरण आपने पढ़ा। इस अध्याय में हम उन तत्कालीन राजनैतिक प्रवृत्तियों का उल्लेख करेंगे जो आन्दोलन के साथ चलीं। सुविधा के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन को मूल रूप से निम्न तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है।

प्रथम काल—(१८८५ से १९०५ ई० तक) इसे उदार राष्ट्रीयता का काल कहा जाता है।

द्वितीय काल—(१९०६ से १९१९ई० तक) उसे उग्र राष्ट्रीयता का काल कहा जाता है।

तृतीय काल—(१९१९ से १९४३ ई० तक) गांधी युग कहलाता है।

इसके अलावा क्रांतिकारी संस्थाओं का योगदान भी रहा है, जिसका यथा-स्थान वर्णन किया जायेगा। इस प्रकार हमें उपर्युक्त तीन चरणों में विभिन्न राज-नीतिक विचारधारायें दिखाई पड़ती हैं। यद्यपि विचारधारायें पूर्णतया राष्ट्रीय हैं, परन्तु इनके कार्य करने की पद्धति भिन्न-२ रही है। इन्हें जानने के लिए विभिन्न कालों का अध्ययन आवश्यक है, जिसका अलग २ विश्लेषण किया जा सकता है।

प्रथम काल—(१८८५ से १९०५ई० तक) उदार राष्ट्रीयता का काल।

इस काल का नेतृत्व ह्यूम, वेडरबर्न, व्योमेशचन्द्र बैनर्जी, दादाभाई नौरोजी, सर फीरोजशाह मेहता, महादेव गोविंद रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले, रासबिहारी घोष, लाला लाजपतराय, लोकमान्य तिलक व मदन मोहन मालवीय जैसे नेताओं के हाथ में था। इस काल में राष्ट्रीय आन्दोलन का स्रोत, उदार व वैधानिक रहा है। इन नेताओं का अंग्रेजी शासकों के प्रति श्रद्धा व अनुपम

विश्वास था। उनका विश्वास था कि जब अंग्रेजों को भारतीयों की वास्तवि
दुर्दशा का ज्ञान हो जायेगा तो वे अवश्य ही उनकी दशा को सुधारने का यत
करेंगे। इसलिये इनका उद्देश्य केवल सुझावों द्वारा कुछ सुधार प्राप्त करना था
इस काम में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अनेक प्रस्ताव अपने वार्षिक अधिवेशन
पास किये, जिनमें ब्रिटिश सरकार से मांगें रखी गईं। इनमें निम्न प्रमुख हैं :—

१. वायसराय और गवर्नरों की विधान परिषदों का विस्तार, उनमें भारती लिये जायें और सरकारी अधिकारियों की बजाय चुने हुये सदस्य अधिक हों
२. सेना पर खर्च कम किया जाये और ब्रिटिश सेना की संख्या भी कम की जाये
३. भारत सचिव (Secretary of State for India) की भारत परिष (India Council) समाप्त की जाये।
४. स्थानीय संस्थाओं को अधिक शक्ति दी जाये और उन पर सरकारी नियन्त्रण कम किया जाये।
५. नमक पर कर कम कर दिया जाये।
६. पुराने उद्योगों को पुनर्जीवित किया जाये तथा कुछ नये उद्योग स्थापित किये जायें ताकि कृषि पर दबाव कम हो और बेरोजगारी दूर हो।
७. न्याय पालिका को कार्यपालिका से अलग किया जाये।
८. भारतियों के हितों की विदेशों में रक्षा की जाये।
९. भारतीयों के लिये नागरिक सेवा की परीक्षायें भारत में भी हों।
१०. जमींदारों के शोषण से किसानों की रक्षा की जाये।
११. भूमि-कर में कमी हो।
१२. समाचार-पत्रों पर से प्रतिबन्ध हटाये जायें।
१३. कृषि बैंक खोले जायें, जहां से किसानों को सस्ते सूद पर ऋण मिल सके।
१४. भारतीयों को बड़े-बड़े पदों से वंचित न रखा जाय।
१५. भारत की निर्धनता के कारणों का पता लगाकर उन्हें दूर किया जाय।
१६. देश में उद्योग सम्बन्धी और टैक्नीकल स्कूल तथा कॉलिज खोले जायें।
१७. भारत में सैनिक शिक्षा देने के लिये कॉलिज खोले जायें।

इस काल के नेताओं के प्रयत्नों के फलस्वरूप इंगलैण्ड की संसद ने १८९२ में एक अधिनियम पास किया जिसे The Indian Council Act of 1892 कहते हैं। इसके अनुसार केन्द्रीय तथा प्रान्तीय धारा सभाओं में अतिरिक्त सदस्यों की संख्या में वृद्धि की गई। सदस्यों को बजट पर वाद-विवाद का अधिकार दिया गया तथा प्रश्न पूछने का अधिकार भी दिया गया।

इस प्रकार इस काल में भारत का सुशिक्षित वर्ग शासन-व्यवस्था, वैदेशिक नीति तथा सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था से असन्तुष्ट था और वह इनमें पर्याप्त परिवर्तन करना चाहता था किन्तु वे ऐसा किसी आन्दोलन द्वारा नहीं वरन् प्रस्तावों भाषणों व सभाओं के द्वारा, शिष्ट मण्डलों के द्वारा या प्रार्थनाओं के द्वारा ही प्राप्त करना चाहते थे। इनकी सबसे बड़ी देन यही है कि जिस समय भारतीय राजनीतिक क्षेत्र नहीं था, उस समय उन्होंने इसका आरम्भ किया और देश के लिये एक ऐसी राष्ट्रीय संस्था का संगठन किया जो साम्प्रदायिक तथा प्रान्तीय धरातल से बहुत ऊँची थी।

द्वितीय-काल-(१६०६-१६१६)(उग्र राष्ट्रीय काल) कांग्रेस ने १८८५ से लेकर १६०५ तक अनेक मांगें की परन्तु उन मांगों को ब्रिटिश सरकार ने पूरा नहीं किया। इसलिये लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्र पाल व लाला लाजपत राय का कांग्रेस की नीतियों से मतभेद उत्पन्न हो गया। उनका यह विश्वास था कि ब्रिटिश साम्राज्य वाद के साथ चाहे कितना भी सहयोग क्यों न किया जाय, उसके द्वारा भारत अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। विपिनचन्द्र पाल का यह मत था कि ब्रिटेन के आर्थिक हितों की दृष्टि से यह अत्यन्त आवश्यक था कि भारत पर उसका अंकुश निरन्तर बना रहे। उनके मत से युद्ध के बिना स्वतन्त्रता प्राप्त होना असम्भव था। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ही प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने यह नारा दिया कि स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेंगे। इसीलिये इस काल को उग्र राष्ट्रीयता का काल कहा जाता है।

उग्रवादियों के सिद्धान्त :—उग्रवादी पूर्ण स्वराज्य के पक्ष में थे। उग्र राष्ट्रवादी उदारवादियों द्वारा प्रतिपादित निवेदनों, प्रार्थनाओं, स्मरण पत्रों और प्रतिनिधि मण्डलों की नीति में बिल्कुल विश्वास नहीं रखते थे। तिलक ने उग्रवादी दृष्टिकोण को निम्न शब्दों में व्यक्त किया, "हमारा आदर्श दया, याचना नहीं, आत्म निर्भरता है।" वे स्वदेशी कपड़े के पक्ष में और विलायती कपड़े के बहिष्कार के लिये प्रचार करते थे। वे अंग्रेजों द्वारा भारत के आर्थिक शोषण की कड़ी निन्दा करते थे। अंग्रेजों से अधिकार मांगने के बजाय उन्हें निकालना चाहते थे, परन्तु उसके लिये वे क्रांतिकारी या हिंसात्मक उपायों की बजाय अहिंसात्मक आन्दोलनों के पक्ष में थे। बहिष्कार के अन्तर्गत सरकार के साथ असहयोग और सरकारी नौकरियों, प्रतिष्ठाओं तथा उपाधियों का बहिष्कार भी शामिल था।

जब सरकार ने यह अनुभव किया कि उग्रवादियों से किसी प्रकार का मेल नहीं किया जा सकता तो मुस्लिम साम्प्रदायवादियों और उदारराष्ट्रवादियों को

उसने अपनी ओर करके अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहा। १९०९ के इण्डियन कौन्सिल एक्ट को जो कि मार्ले-मिण्टो सुधारों के नाम से अधिक विख्यात है, पास करके उसने इस आदर्श की पूर्ति की, परन्तु इन तथाकथित सुधारों ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का सूत्रपात करके, राष्ट्रीय संघर्ष को जटिल कर दिया।

क्रान्तिकारी राष्ट्रवाद :—क्रान्तिकारी राष्ट्रवाद अथवा आतंकवादी उग्र राष्ट्रवाद का एक पहलू था, यद्यपि साधन-प्रणाली की दृष्टि से वह तिलक, विपिनचन्द्रपाल और लाला लाजपतराय के राजनीतिक उग्रवाद से सर्वथा भिन्न था। क्रान्तिकारी केवल शान्तिपूर्ण संघर्ष में ही विश्वास नहीं रखते थे अपितु वे हिंसा और आतंकवाद में विश्वास रखते थे। क्रान्तिकारियों का विचार था कि पाशविक बल पर आधारित साम्राज्यवाद को हिंसा के बिना जड़ से उखाड़ फेंकना असम्भव है। ब्रिटिश सरकार की प्रतिक्रियावादी और दमनकारी नीति ने उनके इस विचार को और भी पुष्ट कर दिया। उनका प्रमुख कार्यक्रम हिंसक कार्यवाहियों और राजनीतिक हत्यायें करना था। अपना आन्दोलन चलाने के लिये सरकारी खजाने लूट लेना और सशस्त्र डकैतियाँ डालना भी उनके कार्यक्रम में शामिल था।

महाराष्ट्र में इस विचारधारा के नेता श्यामजी कृष्ण वर्मा, विनायक दामोदर सावरकर और उनके भाई गणेश सावरकर थे, तथा चापेकर बन्धु भी इसके नेता थे। सावरकर बन्धुओं ने क्रान्तिकारी अभिनव भारत समाज की स्थापना की। बंगाल में इसके नेता वारीन्द्र घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त थे। उन्होंने उग्रशीलन समिति का सगठन किया। पंजाब में सरदार अजीतसिंह, भाई परमानन्द, बालमुकुन्द व लाला हरदयाल ने क्रान्तिकारियों का संगठन किया। विदेशों में भी श्यामजी कृष्ण वर्मा, वी. डी. सावरकर, मदनलाल ढींगरा, मेड़म कामा, आदि बहुत सक्रिय रहे।

सम्प्रदायिकता के उद्भव का सामाजिक-आर्थिक पहलू :—प्रारम्भ से ही ब्रिटिश शासकों ने भारतीय समाज के एक वर्ग को दूसरे वर्ग से लड़ाया और इस प्रकार से अपने हित को सुरक्षित रखा। पहले पहल उन्होंने मुसलमानों के सामन्ती और व्यावसायिक वर्गों की स्थिति को पतनोन्मुखी करने के लिये हिन्दू पूँजी पतियों और बुद्धिजीवियों को अपने कार्य साधन में प्रयोग किया। इसके बाद जब उन्होंने देखा कि औद्योगिक पूँजी पतियों की उन्नति हो रही है, तो उसे रोकने के लिये सामन्ती हितों को बीच में ला खड़ा किया। अंग्रेजों ने भारत के एक वर्ग को दूसरे वर्ग के खिलाफ, एक बिरादरी को दूसरी बिरादरी के खिलाफ और एक जाति को दूसरी जाति के खिलाफ किया, उन्हें आपस में लड़ाया और उससे लाभ उठाकर ब्रिटिश शासन की जड़ों को मजबूत किया।

तृतीय काल :—(१९२०-१९४७) (गांधी युग) इस काल को गांधी युग कहा जाता है क्योंकि महात्मा गांधी के १९१५ ई० में दक्षिणी अफ्रीका से लौटने के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन की-बागडोर अपने हाथ में ली और वे १९४७ ई० तक निर्विवाद रूप से भारतीय राजनीतिक के एक मात्र पथ प्रदर्शक बने रहे। गांधीजी ने अपने सत्याग्रह के अस्त्र का प्रयोग अफ्रीका में किया था। जहाँ उन्हें पर्याप्त सफलता मिली थी। महात्मा गांधी ने अगस्त १९२० में असहयोग आन्दोलन को प्रारम्भ किया। असहयोग का कार्य-क्रम निम्नलिखित था :—

१. सरकारी उपाधियां और अवैतनिक पद छोड़ दिये जायें और स्थानीय संस्थाओं के मनोनीत सदस्य अपना स्थान रिक्त कर दें।
२. सरकारी उत्सवों या दरबारों में शामिल न हुआ जाये और न ही सरकार द्वारा या सरकार के सम्मान में किये गये किसी सरकारी या गैर सरकारी उत्सव मे।
३. सरकारी, या सरकारी सहायता प्राप्त या सरकार के अधीन स्कूलों और कालेजों का बहिष्कार किया जाये और इन स्कूलों और कालेजों के स्थान पर राष्ट्रीय स्कूल और कालेज स्थापित किये जायें।
४. धीरे-धीरे सरकारी अदालतों का बहिष्कार किया जाये और झगड़ों के निबटारे के लिए पचायती अदालतें स्थापित की जायें।
५. सैनिक, क्लर्की और मजदूरी पेशे वाले लोग मैसोपोटामियां में काम करने के लिये भर्ती न हों।
६. सुधार योजनाओं के अनुसार बनने वाली व्यवस्थापिका सभाओं के उम्मीदवार अपनी उम्मीदवारी वापस ले लें और कांग्रेस के निर्णय के प्रतिकूल खड़े होने वाले उम्मीदवारों को कोई मतदाता मत न दे।
७. विदेशी माल का बहिष्कार किया जाय। प्रत्येक घर में हाथ की कताई व बुनाई पुनर्जागृत की जाये।

महात्मा गांधी ने खुले रूप से यह कह दिया था कि आन्दोलन में अहिंसा कड़े रूप से पालन होना चाहिये। महात्मा गांधी का आत्मबल और अहिंसा में वास था वे इसी शक्ति के द्वारा सरकार के पाशविक बल का सामना करना ने थे। इस आन्दोलन ने भारत की राष्ट्रीयता मे नये जीवन का संचार किया। स्वतन्त्रता और निर्भीकता की नई भावना को पैदा किया। असहयोग आन्दो-से भारतीयों के हृदय में आत्म सम्मान, आत्म-विश्वास और आत्म-निर्भरता

के भाव उत्पन्न हुये । इसके अलावा, असहयोग आन्दोलन सच्चे अर्थों में, भारत का पहला जन-आन्दोलन था । १९१० तक का राष्ट्रीय अन्दोलन उच्च मध्यम वर्गीय लोगों तक ही सीमित था, लेकिन अब यह आन्दोलन देहातों में भी पहुँच गया, किसानों इसमें जी खोल कर हिस्सा लिया और अब राष्ट्रीय आन्दोलन की जड़ें जन साधारण के अन्तराल में जम गई । प्रसिद्ध इतिहासकार कूपलैंड ने असहयोग आन्दोलन की सफलता पर निम्न विचार व्यक्त किये—"उन्होंने (गांधीजी) वह काम किया जिसे तिलक नहीं कर सके थे । उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को एक क्रान्तिकारी आन्दोलन के रूप में बल दिया । उन्होंने उसे स्वतन्त्रता के लक्ष्य की ओर बढ़ना सिखाया, सरकार के ऊपर वैधानिक दबाव डालकर नहीं, *वाद-विवाद और समझौते के द्वारा और शक्ति से नहीं अहिंसा द्वारा ।* उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को क्रान्तिकारी ही नहीं बनाया, अपितु उसे लोकप्रिय भी बना दिया । अभी तक वह नगर के बुद्धिजीवी वर्ग तक ही सीमित था, अब वह देहात की जनता तक भी पहुँच गया । इस प्रकार गांधी जी के व्यक्तित्व ने भारत के देहातों में भी जागृति पैदा कर दी ।

स्वराज्य दल :—१९२२ में कांग्रेस राजनीति में एक नई विचार धारा का विकास हुआ । उसके नेता चितरजनदास, मोतीलाल नेहरू व वी० जी० पटेल थे। इन्होंने स्वराज्य दल का निर्माण किया । उन्होंने असहयोग का एक नया अर्थ लगाया । वे चाहते थे कि निर्वाचनों में पूरा हिस्सा लिया जाये और व्यवस्थापक *मण्डलों की अधिक से अधिक सीटों पर कब्जा कर लिया जाये,* सरकार के साथ सहयोग करने के उद्देश्य से नहीं, अपितु उसकी नीति में एक रूप अविच्छिन्न और सतत रोड़ा अटकाने के उद्देश्य से ।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन :—कांग्रेस कार्य समिति ने महात्मा गांधी और उनके साथियों को सविनय अवज्ञा आन्दोलन करने का अधिकार प्रदान किया । गांधीजी ने सरकार के सामने ११ शर्तें रखीं :—

१. *सम्पूर्ण मदिरा निषेध ।*
२. विनिमय की दर घटा कर १ शिलिंग ४ पैस रख दी जाये ।
३. जमीन का लगान आधा कर दिया जाये और उस पर कौंसिल का का नियन्त्रण रहे ।
४. नमक कर उठा दिये जायें ।
५. *सैनिक व्यय में आरम्भ में ही कम से कम ५०% कमी कर दी जावे ।*

६. लगान की कमी को देखते हुये बड़ी-बड़ी नौकरियों के वेतन कम से कम आधे कर दिये जायें।
७. विदेशी कपड़े के आयात पर नियंत्र कर लगा दिया जावे।
८. भारतीय समुद्र तट केवल भारतीय जहाजों के लिये सुरक्षित रखने का प्रस्तावित कानून पास कर दिया जावे।
६. हत्या या हत्या के प्रयत्न मे साधारण ट्रिब्युनलों द्वारा सजा पाये हुओं के सिवाय समस्त राजनैतिक कैदी छोड दिये जायें, सारे राजनीतिक मुकदमे वापिस ले लिये जायें। सारे निर्वासित भारतीयों को देश म वापिस आने दिया जावे।
१०. खुफिया पुलिस उठा दी जावे अथवा उस पर जनता का नियन्त्रण कर दिया जावे।
११. आत्म-रक्षार्थ हथियार रखने के परवाने दिये जायें और उन पर जनता का नियत्रण रहे।

जब गाधीजी के समझौते सम्बन्धी प्रयत्न असफल हो गये तो अब उनके समक्ष आन्दोलन आरम्भ करने के अतिरिक्त कोई अन्य चारा नहीं रहा। गाधीजी ने नमक कानून तोड़ने का निश्चय किया। गांधीजी ने समुद्रतट के एक गाव डाँडी जाकर यह कानून को तोड़ा। बम्बे क्रॉनिकल के शब्दों में-"इस महान राष्ट्रीय घटना के पहले, उसके साथ-साथ और बाद में जो दृश्य देखने को आये, वे इतने उत्साह पूर्ण, शानदार और जीवन फूंकने वाले थे कि वर्णन नहीं किया जा सकता है। इस महान अवसर पर मनुष्यों के हृदयों में देश प्रेम की जितनी प्रबल धारा बह रही थी उतनी कभी नहीं बही थी। यह एक महान आन्दोलन का महान आरम्भ था, और निश्चय ही भारत की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के इतिहास में इसका महत्वपूर्ण स्थान होगा।"

सात प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल :—कांग्रेस के प्रयत्नों के फल स्वरूप १६३५ का भारत सरकार अधिनियम पास हुआ और इसमे अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। कांग्रेस ने ७ प्रान्तों में अपना मन्त्रिमण्डल बनाया। इनके नाम है—बम्बई, बिहार, उड़ीसा, मद्रास, संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त तथा सीमा प्रान्त। अल्पकाल मे ही कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने देश की दशा को उन्नत करने के अभिप्राय से अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। जिसमे मुख्य निम्न थे :—

(१) उन सम्पत्तियों को उनके स्वामियों को सरकारी व्यय पर वापिस करवाया जो सत्याग्रह के समय मे सरकार ने जब्त कर ली थी।

(२) प्रैस तथा समाचार पत्रों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की गई।
(३) राजनैतिक बन्दियों को कारागारों से मुक्त किया।
(४) किसानों की दशा, मजदूरों की दशा तथा उद्योग-धन्धों की दशा को सुधार करने के लिये अनेक कानून पारित किये गये।

कूपलैंड के अनुसार -

कांग्रेस की सफलता—संक्षेप में ऐसा कुछ कहा जा सकता है कि कांग्रेस के मंत्रिमण्डलों का कार्य ऐसा था कि कांग्रेस उस पर गर्व कर सकती थी। उनके नेताओं ने दिखा दिया कि जहाँ वे बात करना जानते थे, वहाँ वे कार्य करने की भी क्षमता रखते थे जहाँ वे आन्दोलन करना जानते थे वहाँ वे प्रशासन में भी किसी से कम नहीं थे और उनमें तथा उनके सहयोगियों में सामाजिक सुधारों के लिये उत्साह की कमी नहीं थी।

द्वितीय महायुद्ध में सरकार द्वारा भारत को युद्ध में शामिल किये जाने के कारण कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों ने त्याग पत्र दे दिये। इस प्रकार आन्दोलन चलता रहा और १९४२ में गांधीजी ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन चलाया जिसमें उन्होंने जनता से 'करो या मरो' (Do or die) का नारा दिया और अन्त में युद्ध समाप्ति के बाद अंग्रेज सरकार को भारत को स्वतन्त्र बनाना पड़ा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कांग्रेस ने ही सत्ता सँभाली और सर्व प्रथम भारत व पाकिस्तान के दो टुकड़े बन जाने के कारण सरकार को शरणार्थी समस्या का सामना करना पड़ा, जिसे सफलता पूर्वक सुलझाया गया। संविधान निर्मात्री सभा ने भारत का संविधान तैयार किया जिसे २६ जनवरी, १९५० से लागू किया गया। कांग्रेस ने पिछले १८ साल में अनेक राजनैतिक व आर्थिक परिवर्तन किये। संविधान में वयस्क मताधिकार का अधिकार प्रदान किया गया जो कि एक बड़ी अभूतपूर्व घटना थी।

राष्ट्रीय आन्दोलन का भारत के सामाजिक और आर्थिक जीवन पर प्रभाव:—राष्ट्रीय आन्दोलन चूंकि बहुमुखी था, अतः राष्ट्र के सभी अंगों को प्रभावित करना अनिवार्य सा था। राष्ट्रीय आन्दोलन के पूर्व का जीवन एक प्रकार से स्थिर जीवन था, जिसमें किसी प्रकार की क्रियाशीलता के दर्शन नहीं हो पा रहे थे। नवयुवकों के हृदयों में नैराश्य की भावना जम रही थी। अपनी सभ्यता के प्रति अविश्वास पनपने लगा था और जन जीवन अन्ध विश्वास, कुरीतियों से प्रभावित होता जा रहा था।

वर्ग भेद का प्रभाव बढ़ता जा रहा था और हिन्दू जाति में कट्टरपन एवं बुराइयाँ बढ़ रही थीं। जाति-पाति के भेद-भाव ने अस्पृश्यता की समस्या को तीव्रतर बना दिया, राजनैतिक क्षेत्र की भाँति सामाजिक क्षेत्र में भी पुनर्जागरण की आवश्यकता हुई। बाल-विवाह, बहु-विवाह, अनमोल-विवाह व्यापक रूप से फैल रहे थे। समाज में स्त्रियों की दशा हेय और घर की चार दिवारों में बंधे हुये व्यक्ति की भाँति थे।

व्यक्तियों के पास मानसिक स्वाधीनता के बिना सामाजिक स्वाधीनता असम्भव थी। यह सर्व सम्मत सिद्धान्त है कि मानसिक स्वाधीनता के बिना सामाजिक स्वाधीनता तथा सामाजिक स्वाधीनता के बिना राजनैतिक स्वाधीनता असम्भव है। पुनर्जागृति के लक्षण प्रतिलक्षित हो रहे थे किन्तु यह जागृति मुख्यतः आध्यात्मिक थी। राष्ट्रीय आन्दोलन की सफलता के लिये देश को सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण से तैयार करना भी आवश्यक था।

सामाजिक क्षेत्र में प्रभावः-भारतीयों के हृदय में राष्ट्रीय आन्दोलन ने राष्ट्रीय भावना बढ़ाने में पर्याप्त योगदान देकर राष्ट्रीय एकता की नींव डाल दी और सभी व्यक्ति दुःख सुख को बाँटने के लिये तैयार हुये। इस आन्दोलन के फलस्वरूप भारतीयों को पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति के सम्पर्क में आने का अवसर मिला, जिससे व्यक्तियों के संकीर्ण विचार समाप्त हुये और विचार स्वातंत्र्य को जन्म मिला। सामाजिक क्षेत्र में भी जनजन्तान्त्रिक ढंग से सोचने का मौका मिला।

राष्ट्रीय आन्दोलन के फलस्वरूप भारतीय रूढ़िवादी सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ। सामाजिक संस्थाओं आदि में जो परम्परागत कठोरता थी, शनैः-शनैः ढीली होने लगी और उनमें लोच आई। राजनैतिक मंच पर एक साथ काम करने से सहयोग की भावना का उदय हुआ। छूआ-छूत, ऊँच-नीच, गरीब-अमीर के भेद भावों की समाप्ति होने लगी। व्यक्तियों में आत्म सम्मान एवं निर्भरता आई और भारतीयों के हृदय में सुधार व जागृति के हेतु अनिवार्य उमंग पैदा हुई।

यातायात के साधनों के विकास के परिणाम स्वरूप शहर और गाँव के बीच का अन्तर समाप्त हुआ और शहरों में विशाल कारखानों की स्थापना से बड़े पैमाने के बल कारखाने खुले। श्रमिक व पूंजीपति वर्ग पैदा हुये और पुरातन ग्रामीण व्यवस्था पर कुठाराघात हुआ। रोजगार के साधनों की खोज में ग्रामीण जनसंख्या शहरों की ओर चली।

जमींदारी प्रथा के कारण ग्रामीण जनता पर अत्याचार बढ़े और राष्ट्रीय

नेताओं ने उनके भाग्योदय के लिये कार्य-क्रम अपनाये। देश में फैले बुरे रीतिरिवाजों में परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव किया गया। राजा राममोहनराय ने सती प्रथा के प्रति अपनी आवाज बुलन्द की और महिलाओं को सम्पत्ति के अधिकार दिलाने के लिये संघर्ष किया। नारी उत्थान के लिये कदम उठाकर उन्हें पुरुष के समकक्ष लाने के प्रयत्न हुये। समाज में विधवाओं की स्थिति अत्यन्त हेय थी, उनकी स्थिति में सुधार के लिये ईश्वर चन्द्र विद्यासागर तथा स्वामीदयानन्द सरस्वती के आर्यसमाज में इस समस्या हल निकाल विधवा विवाहों को मान्यता दी। विवाह आयु का निर्धारण कर बाल विवाह की बुराइयों से बचने के प्रयत्न हुये। नारी उत्थान के काम को ऊँचा उठाने के लिये स्वामी दयानन्द सरस्वती, रानाड़े, महर्षि कर्वे, महात्मा गाँधी, स्वामी विवेकानन्द के नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। विवेकानन्द ने नारी शिक्षा का झण्डा खड़ा किया और उन्हें समाज में समानान्तर स्तर देने के लिये जोर दिया। आर्य समाज ने गुरुकुल प्रणाली पर जोर दिया और हिन्दू संस्कृति को पुनः जीवित करने के लिये अथक प्रयत्न किया।

मुस्लिम महिलाओं की स्थिति तो हिन्दू महिलाओं से भी खराब थी। मुस्लिम जाति में पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव बहुत देर के बाद पड़ा। पर्दा-प्रथा जिससे दोनों प्रमुख जातियाँ पीड़ित थी का बाहुल्य था। सर सैय्यद खाँ के प्रयत्नों से इस सम्प्रदाय के लोगों में सुधार हुआ। बदरूद्दीन तैय्यब जी ने पर्दा प्रथा का घोर विरोध किया। सैय्यद इमाम, सैय्यद हैदरी ने भी नारी जाति के उत्थान के लिये भरसक कोशिश की।

महात्मा गाँधी ने भी बाल विवाह, देवदासी प्रथा, तथा पर्दा का घोर विरोध कर नारी समाज को परम्परागत गर्त से निकालकर स्वतन्त्रता के वातावरण में स्वाँस लेने को बाध्य किया। विधवाओं के पुनर्विवाह के काम हाथ में लिये गये।

महात्मा गांधी ने बुनियादी तालीम की योजना देकर सामाजिक क्षेत्र में क्रान्ति लाने का प्रयत्न किया, क्योंकि वे जानते थे कि सामाजिक कुरीतियों का एक मात्र हल शिक्षित समाज में निहित है। महात्मा गाधी ने अपने सत्य, अहिंसा के सिद्धान्तों का प्रचार भारतीय समाज मे किया और लोगों को 'हृदय-परिवर्तन' द्वारा उद्देश्यों की पूर्ति करने का महा मंत्र दिया।

लोगों में कष्ट सहिष्णुता, सहयोग, भ्रातृ भाव, सत्यनिष्ठा, कर्त्तव्य परायणता का पाठ महात्मा गांधी की देन थी, जिसने भारतीय समाज के सम्मुख एक नया उदाहरण प्रस्तुत कर राष्ट्र को सबलता तथा आत्म निर्भरता से परिपूरित किया।

अछूतोद्धार-कार्यक्रमों के अन्तर्गत उन्होंने समाज के एक अछूते वर्ग को जागृत किया और समाज को उस वर्ग की उपादेयता बतलाई गई। समाज का यह अंग सक्रिय हुआ और राष्ट्रीय पैमाने पर योग मिला।

किसानों और श्रमिक वर्ग में चेतनता आई और इसी राष्ट्रीय आन्दोलन के परिणाम स्वरूप इन दोनों वर्गों ने स्वतन्त्र इकाई की भाँति अपनी भी मांगें राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य के साथ साथ माँगी। श्रम संघों का जन्म हुआ और किसान सभाओं की स्थापना हुई, जिससे व्यक्ति 'कर्तव्य और अधिकार' के प्रति सजग हुये। अन्याय तथा अत्याचार के प्रति लोगों को आवाज़ बुलन्द करने का मौक़ा मिला। जमींदारों के अत्याचारों, व अन्यायों के प्रति कृषक और उद्योगपतियों तथा पूंजीपतियों के विरोध में श्रमिक वर्ग ने अपनी मांगें प्रस्तुत कीं। इस प्रकार सामाजिक सुरक्षा की भावना का विकास हुआ।

आर्थिक क्षेत्र में :—यह निर्विवाद सत्य है कि बिना स्वस्थ अर्थ के समाज असम्भव है। भारत की स्थिति इस विषय में पहले से ही खराब थी, क्योंकि भारतीय निर्धन बीमार तथा भाग्यवादी है। अंग्रेजों के शासन काल में जीविकोपार्जन के साधन जो बहुत ही नगण्य थे अवनति की दशा में थे। कृषि पिछड़ी और कम उत्पादक थी। कुटीर व्यवसाय, हाथ की कलाकौशल के काम धन्धे सभी चौपट हो चुके थे। आर्थिक क्षेत्र में बड़ी भयावह स्थिति थी। बेरोजगारी व बेगारी प्रथा अपनी चरम सीमा पर थी।

राष्ट्रीय आन्दोलन के फलस्वरूप आर्थिक क्षेत्र में भी कुछ चहल पहल दिखलाई पड़ी। कुटीर व्यवसायों के चौपट हो जाने से बेरोजगारी और भी प्रबल हुई। राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्य कार्य-क्रमों में भारतीयों को रोजगार दिलवाने के कार्य-क्रम अपनाये गये।

चरखा-व्यवस्था को आधार मानकर खादी का प्रयोग बढ़ा, ताकि व्यक्तियों को रोज़गार मिल सके और देश का पैसा देश में ही बना रहे, जिससे अन्य उद्योग-धन्धे चलें। महात्मा गांधी के इस कार्यक्रम ने जादू का सा काम किया और देखते २ सभी वर्ग विदेशी वस्त्रों से हटकर खादी पर आ गये।

ग्रामोद्योग कार्यक्रमों के अन्तर्गत कुटीर व्यवसायों को जो देश की अर्थ व्यवस्था में प्रमुख स्थान बनाए हुए थे, पुनर्जीवित किया गया। सहकारिता की भावना को जाग्रत कर सहकारी समितियों की स्थापना हुई, जिससे एकीकरण हुआ

और कृषि तथा कुटीर व्यवसायों में उन्नति की आशा का प्रस्फुरण हुआ। कुटीर व्यवसायों को कृषि के साथ जोड़कर कृषकों की आय को परिपूरित किया गया।

कृषि के क्षेत्र में साख की व्यवस्था के लिये महाजनों द्वारा दिये गये ऋणों के लिये नैतिक तथा कानूनी तरीकों का सहारा लिया। उन्नत बीज, सिंचाई की व्यवस्था के प्रति जनता ने जागृत हो सरकार से अपने अधिकारों की मांग की।

लगानबन्दी व अत्यधिक कर भार के प्रति भी सरकार का ध्यान आकर्षित किया गया और समाज में एक नई व्यवस्था के लिये प्रयत्न किये गये। अनुचित करों के प्रति जन साधारण में आलोचना की प्रवृति जगी और सामाजिक कार्यों तथा सेवाओं के काम हाथ में लिये गये।

भारत की पिछड़ी अर्थव्यवस्था जब इंगलैण्ड की विकसित पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था के सम्पर्क में आई तब उसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये। प्रारम्भ में जो कच्चा माल देश के उद्योग धन्धों में लग जाता है वह इंगलैण्ड की मशीनों को भोजन देने लगा। तैयार किया हुआ माल भारत में आयात किया गया और यहां के व्यवसाय चौपट होने लगे। भारतीय कृषि में व्यापारीकरण के लिए उत्पादन हुआ भारतीय कृषि व उत्पादनों का विश्व-अर्थ व्यवस्था के लिये प्रयोग हुआ।

राष्ट्रीय आन्दोलन के फल स्वरूप किसानों के भूमि सम्बन्धों में भी परिवर्तन आया। भूमि का सामूहिक स्वामित्व समाप्त हुआ और भू-प्रणाली में जमींदारी तथा रैय्यतवारी जैसी दो व्यवस्थायें बनी, जिससे भूमि का विभाजन और उप विभाजन तीव्रतर हुआ। जनता ने इन प्रणालियों के दोषों को समझा और इन प्रणालियों को रोकने के लिये कमर कस ली।

यद्यपि ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भारतीय पुरातन अर्थ व्यवस्था को झकझोर कर दिया तथापि न तो भारतीय अर्थ व्यवस्था की पुनर्गठन की बात सोची गई और न इसे स्वतन्त्र प्रणाली जैसी आधुनिक पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था का रूप ही दिया गया। भारतीय अर्थव्यवस्था जो अब एक पिछड़ी और औपनिवेशिक बन गई थी, अब एक बड़े देश के लिए निर्भरता रही। श्रीमती वीरा देसाई ने लिखा है कि The Indian Economy became a colonial adjunct of British economy primarily subserving the needs of the latter. इस प्रकार भारतीय अर्थ-व्यवस्था को स्वतन्त्र रूप से स्वतन्त्र [illegible] नहीं बढ़ने दिया गया। इसका परिणाम

के [illegible] ही [illegible] भारतीय अर्थ-व्यवस्था के [illegible] विकास [illegible] के भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का [illegible] और

बढ़ने का मौका ही नहीं दिया किन्तु राष्ट्र को एक मत और एक होकर संघर्ष के लिए तैयार किया। यही कारण था कि आगे चलकर देश की आर्थिक समस्यायें जिनका सम्बन्ध जन साधारण से था, बड़ी रुचि के साथ राजनैतिक आन्दोलनों के कार्यक्रम से विचार और विमर्श के लिए सम्मिलित की जाने लगी।

उद्योगों के राष्ट्रीयकरण करने की विचार धारा पनपी ताकि इन उद्योगों का लाभ सामान्य जन साधारण तक पहुँचे। महात्मागांधी ने राष्ट्र को आर्थिक दृष्टिकोण से सबल बनाने के लिए चौदह सूत्री कार्यक्रम रक्खा। स्थिति यहां तक पहुंची कि The old views that politics first and social and economic questions latter on began to be rapidly getting out of date.

यातायात के साधनों के विकास ने सन्तुलित विकास को सम्भव बनाया और उत्पादन के साधनों-भूमि, श्रम, पूंजी, आदि को गति शीलता प्रदान की गई। सड़क व रेलों के विकास ने ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में पर्याप्त सहायता पहुँचा कर ग्रामोत्थान आदि के कार्यक्रमों में सहयोग दिया। देश के चारों कोनों में सम्पर्क स्थापित हुआ और राष्ट्रीय एकता की नींव पड़ी। वस्तुओं का आदान-प्रदान हुआ और दुर्भिक्ष की भयकरता कम हुई। बड़े उद्योगों की स्थापना में यातायात के साधनों ने अपना योग दिया। यातायात का दुष्परिणाम केवल यह हुआ कि भारतीय बाजार ब्रिटेन के बने मालों से पट गया।

स्वदेशी आन्दोलन के परिणाम स्वरूप देश में भारतीय वस्तुओं का प्रचार बढ़ा और भारतीय उद्योग पतियों ने पूंजी का विनियोग कर उत्पादन में भी स्वदेशी भावना की वृद्धि की। भारतीय पूंजी से नये उद्योग, कम्पनियां, बैंक खोली गई, जिन्हें विदेशी उपक्रम से कठोर प्रतिद्वंदिता करनी पड़ी।

पूंजी के क्षेत्र में :

मध्यवादी कार्यक्रमों ने भी देश में नैतिक साहस को जन्म दिया और भारतीयों को भाग्यवादिता से निकाल कर कार्मनिष्ठा की ओर प्रेरित किया। पूंजी कुछ लोगों के हाथ में जमा न हो बल्कि उसका न्यायोचित वितरण हो, अतः अनेक कल-कारखाने सार्वजनिक क्षेत्र में लगाये गये। जीवन बीमा का राष्ट्रीयकरण किया गया तथा बैंकों पर भी काफी नियन्त्रण बढ़ाया गया। कांग्रेस ने 'कल्याणकारी राज्य' के आदर्श को मान लिया जिसके अन्तर्गत नागरिकों के कल्याण के लिये अनेक व्यवस्थायें की गई हैं। उदाहरण के लिये स्त्रियों में अनैतिक व्यापार को रोकना, अधिकाधिक रोजगार की सुविधायें बढ़ाना, शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं का प्रसार,

सड़क, रेलवे, वाणिज्य व व्यापार की अधिकाधिक सुविधायें प्रदान करना। बेरोजगारी का बीमा, असहाय तथा अपंगों को सहायता, वृद्धावस्था में पेंशन की व्यवस्था तथा बीमे व प्रोविडेन्ट फंड की व्यवस्था भी मुख्य हैं।

राजनैतिक क्षेत्र में :—राज्यों का भाषा के आधार पर पुनर्गठन किया गया तथा देशी रियासतों को विलीनीकरण किया गया। गाँवों को उन्नत बनाने के लिए पंचायती राज योजना लागू की गई तथा सहकारिता को बढ़ावा दिया गया, जिससे विकास कार्यों में अधिक से अधिक बढ़ावा मिले। ग्रामीण स्वराज्य के मूल्य को समझें तथा अपनी समस्याओं का हल स्वयं ढूंढें। न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करने के प्रयास भी बराबर चल रहे हैं।

यद्यपि स्वाधीनता आन्दोलन में कांग्रेस ही एक मात्र दल था जिसने यह लड़ा और इसमें सभी विचार धारा के लोग शामिल थे, चूंकि वह एक सबके सामान्य हित की बात थी; परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विचारों में मतभेद होने के कारण अनेक नेताओं ने अलग दलों का निर्माण किया जिनमें समाजवादी दल, प्रजा समाजवादी दल, द्रविड़ मुनेत्र कजगम, जनसंघ व स्वतन्त्र पार्टी मुख्य हैं, जिनका अनेक नीतियों में आधार भूत अन्तर है। उदाहरण के लिये कम्युनिस्ट पार्टी व अन्य वामपंथी दल अधिकाधिक राष्ट्रीयकरण चाहते हैं जबकि स्वतन्त्र पार्टी व जनसंघ इसके खिलाफ है। स्वतन्त्र पार्टी वाणिज्य व व्यवसाय में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता चाहती है। कांग्रेस ने मध्यम मार्ग अपनाया है अर्थात् वह निजी क्षेत्र व सार्वजनिक क्षेत्र दोनों को ही साथ २ चलाना चाहती है तथा मिश्रित अर्थ व्यवस्था के पक्ष में है। कांग्रेस की विदेश नीति पर भी स्वतन्त्र पार्टी आक्षेप करती है और वह चाहती है कि हम आंग्लो अमेरिकन गुट के नज़दीक हों, जब कि कांग्रेस असंलग्नता की नीति में विश्वास रखती है।

योग्यता प्रश्न

Topics for Essay (निबन्ध के विषय)

1. Write an essay on :—

   (a) Political Trends and Nationalist Movement.
   राष्ट्रीय आन्दोलन और राजनैतिक प्रवृत्तियाँ।

   (b) Impact of Nationalist Movement on socio-economic life of India.
   राष्ट्रीय आन्दोलन का देश के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन पर प्रभाव।

(c) Liberal Nationalism in India.
भारत में उदार राष्ट्रीयतावाद ।

(d) Gandhian Age in Indian History.
भारतीय इतिहास में गांधी युग ।

Write short notes on :-(संक्षिप्त टिप्पणियाँ दीजिए)

(a) Nationalism-liberal and extremists.
राष्ट्रवाद-उदार एवं उग्र ।

(b) Revolutionary Nationalism
उग्रवादी राष्ट्रवाद ।

(c) Swaraj Dal.
स्वराज दल ।

(d) Civil Disobedience movement.
सविनय अवज्ञा आन्दोलन ।

(e) Success of the Congress
कांग्रेस दल की सफलता ।

(f) National Movement and Economic Progress.
(राष्ट्रीय आन्दोलन एवं आर्थिक प्रगति)

(g) Social changes brought by the Movement.
(आन्दोलन द्वारा लाये गये सामाजिक परिवर्तन)

Objective type Questions. नई शैली के प्रश्न—

Fill in the blanks :-

(1) The Nationalist Movement is divided in to........periods. [3 or 5]
राष्ट्रीय आन्दोलन को · · · भागों में बांटा जाता है (३ या ५)

(2) Dada Bhai Nauroji, Gokhale and Ranade belonged to... group.[Liberal, extemists, and Revolutionists]
दादाभाई नौरोजी, गोखले एवं रानाडे · · ··· दल के थे (उदार, उग्र, क्रान्तिकारी)

(3) Lokmanya Tilak believed in..........[constitution alism, violence]
लोकमान्य तिलक·········में विश्वास करते थे (वैधानिकता, हिंसा)

(d) The Slogan 'Freedom is our birth right' was given by...... ....[Tilak, Gandhiji, Nehru]

'स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है', का नारा......ने दिया था (तिलक, गांधी, नेहरू)

4. Complete the following Sentences (निम्न वाक्यों की पूर्ति करें)

[1] During the first period of Nationalist Movement the following main demands were put u before the British Government.

राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रथम काल में ब्रिटिश सरकार के सम्मुख निम्न मांगे रखी गई (१) ....(२)...... ......(३).........(४)......... (५)......

[2] The Programme of Revolutionists were consisted of [1]........ [2]......[3]......[4]........

क्रांतिकारियों के कार्य-क्रमों (१) ....(२)......(३)... .....(४)......... जैसे काम सम्मिलित थे।

[3] The Non-Co-operative Movement had the following programmes :-[1] ....[2]........[3]......[4]...........

असहयोग आन्दोलन के निम्न कार्यक्रम थे :—
(१) ....(२).... (२) ....(४)...... ....(५)............आदि

[4] Swaraj Dal wanted to defeat Imperialism by [a]........... [b] ....[c] ....[d] ....

स्वराजदल साम्राज्यवाद को (१) ... ...(२) .... (३) .... के द्वारा पराजित करना चाहता था।

[5] The Impact of the Movement on the economic life of the country were the following ;

राष्ट्रीय आन्दोलन के देश के आर्थिक जीवन पर निम्न प्रभाव थे —
(१) ...... (२) ....(३).......... ..(४) ....(५)....... (६)...... (७) ....(८)........इत्यादि।

[6] The Movement influenced the social life in the following ways.

आन्दोलन ने देश के सामाजिक जीवन को निम्न तरीके से प्रभावित किया है :—(१)………(२)………(३)………(४)……(५)……(६)…………(७)………(८)……इत्यादि।

[7] Give 5 Sailent fealures of the Women and their role in the Nationalist Movement'.

राष्ट्रीय आन्दोलन में नारी योग की पांच प्रमुखताओं का वर्णन कीजिये

[8] The Movement brought the following changes in the Rural India :

(1)…. (2)….(3)…. (4)……(5)……(6)……(7)…

आन्दोलन ने ग्रामीण भारत में निम्न लिखित परिवर्तन प्रस्तुत किये :—(१)…………(२)…………(३)……………(४)………(५)……(६)…………(७)…………इत्यादि।

(iii) अविकसित या गरीब देश—जहां यह वार्षिक औसत आय पाँच सौ रु० या इससे भी कम है। दुर्भाग्य से आज संसार के अधिकांश देश व विश्व की जनसंख्या का ⅔ भाग इसी श्रेणी में आता है।

प्रथम श्रेणी में आनेवाले देश संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी आदि है; दूसरी श्रेणी में सोवियत संघ, जापान, आस्ट्रेलिया, इटली, यूनान, फिनलैंड, दक्षिणी अफ्रीका आदि देश हैं, तथा तृतीय श्रेणी में दक्षिणी पूर्वी व सुदूर 'एशिया के राष्ट्र' अफ्रीका तथा दक्षिणी अमेरिका के अधिकांश राष्ट्र सम्मिलित हैं। हमारा देश भारत भी निस्सन्देह इन्हीं अविकसित राष्ट्रों की श्रेणी में आता है। इन अविकसित राष्ट्रों की दुर्दशा के अनेक कारण हैं। उदाहरणार्थ राजनैतिक साम्राज्यवाद, सामाजिक रूढ़ियां व प्रगतिशील विचारों का अभाव एवं कुछ आर्थिक कारण जैसे कृषि का वर्षा पर निर्भर होना, तथा जनसंख्या वृद्धि आदि ने इन राष्ट्रों को आर्थिक विकास के क्षेत्र में विकसित देशों की अपेक्षा दो सौ वर्ष पीछे धकेल दिया। किन्तु आज जब अधिकांश राष्ट्र राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर चुके हैं, वे अपने आर्थिक पिछड़े पन से पूर्णतः मुक्ति प्राप्त करने की जी जान से चेष्टा करने में लगे हुए हैं। आर्थिक विकास व पुनः निर्माण को उन्होंने एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया है। इन राष्ट्रों द्वारा किए जाने वाले आर्थिक पुनर्निर्माण के कार्यों को तब तक नहीं समझ सकते हैं, जब तक कि हम इन अविकसित राष्ट्रों की मुख्य समस्याओं व विशेषताओं का अवलोकन नहीं कर लेते।

(२) पिछड़े राष्ट्र-समस्याएं :—सदियों की गुलामी और साम्राज्यवादी शोषण ने उक्त देशों की अर्थव्यवस्थाओं को कुंठित कर दिया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इन अविकसित अर्थव्यवस्थाओं में प्रगति के कुछ चिन्ह उभरने लगे हैं, तथा यह देश अविकसित देश न रहकर विकासशील (doveloping) देश या अर्द्ध-विकसित (Under developed) देश कहलाने लगे हैं। भारतीय योजना आयोग के अनुसार एक अर्द्ध विकसित देश वह देश है जहाँ एक ओर तो मानव शक्ति अप्रयुक्त अथवा अल्प प्रयुक्त (Unutilised or under utilised) पड़ी रहे तथा दूसरी ओर देश के प्राकृतिक साधनों का भी शोषण न किया जा रहा हो। इस परिभाषा से अर्द्ध-विकसित देशों की समस्याओं का भी आभास मिलता है। एक देश में पर्याप्त प्राकृतिक साधन होते हुए भी जन शक्ति का पूर्ण उपयोग न हो पा रहा हो—

(१) कृषि का मुख्य अवलम्बन—(Preponderance of Agriculture)
अर्द्ध या अविकसित राष्ट्रों में सदियों पुराना व्यवसाय 'कृषि' इतनी अधिक गहरी जड़े जमा चुका है कि उससे मुक्ति पाना कठिन सा हो गया है। इस व्यवसाय

को लेकर व्यक्ति अपनी आजीविका कमाने का प्रयत्न करते हैं। पुराने तरीके, विचार साधन व भाग्यवादिता राष्ट्रों को ऊपर नहीं उठने देते हैं, अतः एक मात्र कृषि पर अवलम्बन भी आज की प्रमुख एवं विकट समस्या है, जिससे अर्द्ध विकसित राष्ट्र पीड़ित हैं।

(२) पूंजी की आवश्यकता:—पूंजी के अभाव में संभवतः देश में कल-कारखाने आदि खड़े न किए जा रहे हों। उद्योगों को प्रारम्भ करने के लिए विदेशों से आयात की आवश्यकता होती है जिसके लिए पर्याप्त पूंजी चाहिए, सो इन देशों के पास नहीं है। यह पूंजी या तो विदेशों से उधार ली जा सकती है या देश ही में सरकार व जनता द्वारा बचत कर उपलब्ध हो सकती है। दुर्भाग्य से इन देशों में जनता व सरकारें अपनी विकास की आवश्यकताओं को देखते हुए भी पर्याप्त पूंजी नहीं बचा पाते। विकास की गति बनाए रखने के लिए राष्ट्रीय आय का लगभग पन्द्रह प्रतिशत बचाकर विनियोग करना अत्यन्त आवश्यक है।

(३) उद्योग और रूढ़िवादिता :—उद्योग धन्धों का विकास न होने से लोगों का प्रमुख उद्योग कृषि ही रह जाता है, जो कि स्वयं अनेक कमियों और समस्याओं से युक्त है। लगभग साठ से सत्तर प्रतिशत जनता कृषि पर निर्भर करती है तथा वर्ष में केवल जीविकोपार्जन के पर्याप्त ही उसे उपज प्राप्त होती है। औद्योगिक क्रांति के अभाव में वहाँ पारस्परिक प्राविधि का ही प्रचलन है जहाँ एक सौ किलो ग्राम कृषि पदार्थों के उत्पादन में संयुक्त राज्य अमेरिका में केवल एक घन्टे का समय लगता है, वहाँ भारत व अन्य अर्द्ध विकसित देशों में साठ घंटे से अधिक समय लगता है। औद्योगिक पिछड़ेपन का एक कारण वहाँ साहस का अभाव भी है। प्रारम्भ से उद्योगपति पूंजी विनियोग से कतराते आए हैं, तथा सरकार भी पूंजी के अभाव में कुछ विशेष नहीं कर पाती।

(४) प्राथमिकताओं की समस्या (Problem of Priorities):—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों के सामने लक्ष्य (Ends) तो पर्याप्त हैं पर साधन (Means) सीमित हैं। अतः प्रश्न है इन लक्ष्यों व साधनों को प्राथमिकता (Priority) देने का वास्तव में राष्ट्रीय साधनों का आवंटन (Allocation) सम-सीमान्त उपयोगिता नियम (Law of Equimarginal Utility) के अनुसार होना चाहिए। लक्ष्यों में अधिक महत्त्व वालों को प्राथमिकता मिलनी चाहिए, जिससे कि साधनों का अधिकतम लाभ उठाया जा सके। परन्तु यह कार्य इतना सरल नहीं है। प्रायः कई लक्ष्य एक दूसरे से जुड़े हुए होते हैं एवं साधनों पर एक सी ही माँग रखते हैं। आर्थिक क्षेत्र में कृषि को प्राथमिकता मिले अथवा भारी उद्योगों को, अथवा लघु उद्योगों को,

अथवा निर्यात उद्योगों को इस पर बहुत मतभेद है। फिर, आर्थिक प्राथमिकताओं में, राजकीय क्षेत्र को प्राथमिकता मिले अथवा निजी क्षेत्र को ? और अन्त में, उत्पादन शक्ति बढ़ाने को प्राथमिकता दी जाय, अथवा लोगों के रहन-सहन के स्तर सुधारने को ? ये सब जटिल प्रश्न हैं।

(५) सामाजिक बाधाएं (Social obstacles)—अर्ध-विकसित राष्ट्रों के निवासी धार्मिक रूढ़ियों और परम्पराओं के दास होते हैं, वे किसी भी बड़े परिवर्तन का विरोध करते हैं। जाति भेद तथा श्रम के प्रति उदासीनता के कारण श्रमिकों की गतिशीलता एवं कुशलता (Mobility and efficiency) कम होती है, तथा आय न्यून होती है। यदि कोई व्यक्ति आगे बढ़ने का यत्न करता है तो उपहास का विषय बनता है। इस कारण इन देशों में स्वतन्त्र साहस का अभाव एवं आर्थिक प्रगति की ओर उदासीनता होती है।

(६) दोषपूर्ण भूमि प्रबन्ध (Defective land system)—यह एक तथ्य है कि बिना कृषि के विकास के कोई भी अर्ध विकसित देश आर्थिक प्रगति नहीं कर सकता। इन देशों में प्रायः अनुपस्थित जमींदार (Absentee Landlords) अधिकभूमि लगान (Reck Renting), कृषकों की असुरक्षा, कृषि का पिछड़ापन आदि समस्याएं, होती हैं। कृषि के सुधार, नये तरीकों का प्रयोग, यन्त्रीकरण (Mechanization) उत्पादन वृद्धि आदि के लिये भूमि प्रबन्ध में सुधार आवश्यक है, किन्तु जमींदार-वर्ग इसका कड़ा विरोध करके अनेक बाधाएं खड़ी कर देता है।

(७) राजनैतिक अस्थिरता (Political instability)—अधिकांश अर्ध-विकसित देश हाल ही में स्वतन्त्र हुए हैं। अशिक्षा एवं सदियों की दासता ने उन्हें राजनैतिक चेतना (Awakening) से वंचित रखा है। आर्थिक विकास प्रारम्भ होने पर कई वर्गों को काफी हानि होती है और वे अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण सरकार पर अनुचित प्रभाव डालने का प्रयत्न करते हैं। प्रायः यह विरोध इतना दृढ़ हो जाता है कि या तो सरकारें अपनी योजनाओं में असफल रहती हैं, या वे (सरकारें) बदल दी जाती हैं। कमजोर सरकारें होने के कारण विदेशी प्रभाव भी उन पर अधिकार करने की चेष्टा करते हैं, जिसके फलस्वरूप उनके विकास में बाधा पड़ती है।

(८) यातायात के साधनों के अभाव की समस्या (Problem of lack of means of transport)—रेलें व सड़कें वे नसें हैं जिनमें राष्ट्र का जीवन-रक्त बहता है। विस्तृत सामाजिक सम्बन्धों, राजनैतिक जागृति तथा वृहद् व्यापार एवं उत्पादन

को लेकर व्यक्ति अपनी आजीविका कमाने का प्रयत्न करते हैं। पुराने तरीके, विचार साधन व भाग्यवादिता राष्ट्रों को ऊपर नहीं उठने देते हैं, अतः एक मात्र कृषि पर अवलम्बन भी आज की प्रमुख एवं विकट समस्या है, जिससे अर्द्ध विकसित राष्ट्र पीड़ित हैं।

(२) पूंजी की आवश्यकता:—पूंजी के अभाव में संभवतः देश में कल-कारखाने आदि खड़े न किए जा रहे हों। उद्योगों को प्रारम्भ करने के लिए विदेशों से आयात की आवश्यकता होती है जिसके लिए पर्याप्त पूंजी चाहिए, सो इन देशों के पास नहीं है। यह पूंजी या तो विदेशों से उधार ली जा सकती है या देश ही में सरकार व जनता द्वारा बचत कर उपलब्ध हो सकती हैं। दुर्भाग्य से इन देशों में जनता व सरकारें अपनी विकास की आवश्यकताओं को देखते हुए भी पर्याप्त पूंजी नहीं बचा पाते। विकास की गति बनाए रखने के लिए राष्ट्रीय आय का लगभग पन्द्रह प्रतिशत बचाकर विनियोग करना अत्यन्त आवश्यक है।

(३) उद्योग और रूढ़िवादिता :—उद्योग धन्धों का विकास न होने से लोगों का प्रमुख उद्योग कृषि ही रह जाता है, जो कि स्वयं अनेक कमियों और समस्याओं से युक्त है। लगभग साठ से सत्तर प्रतिशत जनता कृषि पर निर्भर करती है तथा बदले में केवल जीविकोपार्जन के पर्याप्त ही उसे उपज प्राप्त होती है। औद्योगिक क्रांति के अभाव में वहां पारस्परिक प्राविधि का ही प्रचलन है जहां एक सौ किलो ग्राम कृषि पदार्थों के उत्पादन में संयुक्त राज्य अमेरिका में केवल एक घण्टे का समय लगता हैं, वहां भारत व अन्य अर्द्ध विकसित देशों में साठ घटे से अधिक समय लगता है। औद्योगिक पिछड़ेपन का एक कारण यहां साहस का अभाव भी है। प्रारम्भ से उद्योगपति पूंजी विनियोग से कतराते आए हैं, तथा सरकार भी पूंजी के अभाव में कुछ विशेष नहीं कर पाती।

(४) प्राथमिकताओं की समस्या (Problem of Priorities):—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों के सामने लक्ष्य (Ends) तो पर्याप्त हैं पर साधन (Means) सीमित है। अतः प्रश्न है इन लक्ष्यों व साधनों को प्राथमिकता (Priority) देने का वास्तव में राष्ट्रीय साधनों का आवंटन (Allocation) सम-सीमान्त उपयोगिता नियम (Law of Equimarginal Utility) के अनुसार होना चाहिए। लक्ष्यों में अधिक महत्व वालों को प्राथमिकता मिलनी चाहिए, जिससे की साधनों का अधि-कतम लाभ उठाया जा सके। परन्तु यह कार्य इतना सरल नहीं है। प्रायः कई लक्ष्य एक दूसरे से जुड़े हुए होते है एवं साधनों पर एक सी ही मांग रखते हैं। आर्थिक क्षेत्र में कृषि को प्राथमिकता मिले अथवा भारी उद्योगों को, अथवा लघु उद्योगों को,

अथवा निर्यात उद्योगों को इस पर बहुत मतभेद है। फिर, आर्थिक प्राथमिकताओं में, राजकीय क्षेत्र को प्राथमिकता मिले अथवा निजी क्षेत्र को ? और अन्त में, उत्पादन शक्ति बढ़ाने को प्राथमिकता दीजाय, अथवा लोगों के रहन-सहन के स्तर सुधारने को ? ये सब जटिल प्रश्न है।

(५) सामाजिक बाधाएं (Social obstacles)—अर्ध-विकसित राष्ट्रों के निवासी धार्मिक रूढ़ियों और परम्पराओं के दास होते हैं, व किसी भी बड़े परिवर्तन का विरोध करते हैं। जाति भेद तथा श्रम के प्रति उदासीनता के कारण श्रमिकों की गतिशीलता एवं कुशलता (Mobility and efficiency) कम होती है, तथा आय न्यून होती है। यदि कोई व्यक्ति आगे बढ़ने का यत्न करता है तो उपहास का विषय बनता है। इस कारण इन देशों में स्वतन्त्र साहस का अभाव एवं आर्थिक प्रगति की ओर उदासीनता होती है।

(६) दोषपूर्ण भूमि प्रबन्ध (Defective land system)—यह एक तथ्य है कि बिना कृषि के विकास के कोई भी अर्ध विकसित देश आर्थिक प्रगति नहीं कर सकता। इन देशों में प्रायः अनुपस्थित जमींदार (Absentee Landlords) अधिकभूमि लगान (Reck Renting), कृषकों की असुरक्षा, कृषि का विखंडायन आदि समस्याएं, होती हैं। कृषि के सुधार, नये तरीकों का प्रयोग, यन्त्रीकरण (Mechanization) उत्पादन वृद्धि आदि के लिये भूमि प्रबन्ध में सुधार आवश्यक है, किन्तु जमींदार-वर्ग इसका कड़ा विरोध करके अनेक बाधाएं खड़ी कर देता है।

(७) राजनैतिक अस्थिरता (Political instability)—अधिकांश अर्ध-विकसित देश हाल ही में स्वतन्त्र हुए हैं। अशिक्षा एवं सदियों की दासता ने उन्हें राजनैतिक चेतना (Awakening) से वंचित रखा है। आर्थिक विकास प्रारम्भ होने पर कई वर्गों को काफ़ी हानि होती है और वे अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण सरकार पर अनुचित प्रभाव डालने का प्रयत्न करते हैं। प्रायः यह विरोध इतना दृढ़ हो जाता है कि या तो सरकारें अपनी योजनाओं में असफल रहती हैं, या वे (सरकारें) बदल दी जाती हैं। कमजोर सरकारें होने के कारण विदेशी प्रभाव भी उन पर अधिकार करने की चेष्टा करते हैं, जिसके फलस्वरूप उनके विकास में बाधा पड़ती है।

(८) यातायात के साधनों के अभाव की समस्या (Problem of lack of means of transport)—रेलें व सड़कें वे नसें हैं जिनमें राष्ट्र का जीवन-रक्त बहता है। विस्तृत सामाजिक सम्बन्धों, राजनैतिक जागृति तथा बृहद् व्यापार एवं उत्पादन

के अभाव में अविकसित राष्ट्रों में यातायात तथा संचार के साधन बहुत पिछड़ी अवस्था में पाये जाते हैं। इनकी एक विशेष समस्या है। उद्योगों आदि की अनुपस्थिति में यातायात संचार की प्रगति करना बहुत कठिन है, पर यातायात संचार के साधनों के अभाव में उद्योगों आदि की प्रगति असम्भव है। रेलों, सड़कों व हवाई मार्गों आदि में विनियोजित धनराशि का तुरन्त लाभ प्राप्त नहीं होता और वे देश के आर्थिक साधनों पर एक बोझ बन जाते हैं।

(६) जन साधारण में जागृति का अभाव (Lack of Development-consciousness) —*अशिक्षा अर्ध-विकसित राष्ट्रों का सबसे बड़ा रोग है। निर्धनता,* अशिक्षा एवं राजनैतिक दासता ने वहां के निवासियों को अन्धविश्वासी बना दिया है। वे किसी भी नये विचार एवं कार्य-क्रम के प्रति शंकित रहते हैं। वे अपने *हाल में खुश* हैं। यह उदासीनता उनकी प्रगति में बहुत बाधक है। वे योजना आदि का महत्व नहीं समझ पाते, तथा पूर्ण सहयोग देने में हिचकते हैं।

अर्ध-विकसित राष्ट्रों की आर्थिक प्रगति के साधन

(Measures for the economic development of underdeveloped countries.)

यह तो निर्विवाद रूप से माना जाता है कि अर्ध-विकसित राष्ट्रों *की प्रगति* न केवल अत्यन्त आवश्यक ही है, परन्तु समस्त विश्व के हित में है। अभी तक के अनुभवों, इन राष्ट्रों की समस्याओं एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित उपाय सुझाए जा सकते हैं :—

(१) पूर्ण आर्थिक नियोजन (Economic Planning)–सर्व प्रथम इन राष्ट्रों को सब क्षेत्रों में आर्थिक नियोजन की ओर ध्यान देना होगा। राष्ट्रीय सरकारों अथवा नियोजन अधिकारियों को समस्त आर्थिक व्यवस्था का नियोजन करना पड़ेगा। निश्चित लक्ष्यों के अनुसार योजनाएं बनानी होंगी। विनियोग(Investment) के स्तर एवं क्षेत्रों *का चुनाव करना होगा,* एवं आर्थिक नीतियों को बदलना होगा। तात्पर्य यह कि इन्हें पूर्ण आर्थिक नियोजन के सिद्धान्तों को लागू करना पड़ेगा। *नियोजन के बिना राष्ट्रों का विकास अब सम्भव नहीं रहा है।*

(२) *पूंजी निर्माण* (Capital formation)—पूंजी निर्माण अर्ध-विकसित देशों की सबसे बड़ी समस्या है और सबसे बड़ी आवश्यकता भी है। ऐसे प्रत्येक देश को *राष्ट्रीय बचत (National Savings)* को प्रोत्साहन देना होगा, जिससे कि पूंजी निर्माण अधिक हो। राष्ट्रीय बचत को बढ़ाने के अनेक उपाय है। इनमें से प्रमुख

... अनिवार्य बचत, अनिवार्य बीमा (... Insurance), नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट, धनी वर्ग की बचतों पर ...पत देकर अधिक विनियोग के लिये प्रोत्साहन देना, उपभोग पर नियन्त्रण व ...ी आदि। एक और महत्वपूर्ण उपाय सरकारी बजट है। करों को बढ़ाने से ...च्छित वर्ग द्वारा आवश्यक धनराशि प्राप्त की जा सकती है। प्रो. एम. एल. ... शब्दों में—"पूंजी निर्माण का अर्थ न केवल बचाने की क्षमता से ही है, ...न बचतों एव एकत्रित धन को पूर्णरूप से विनियोग करना भी पूंजी निर्माण ...माग है।" इसके अतिरिक्त यह पूंजी विनियोग उत्पादक वस्तुओं (Capital ...) के उत्पादन मे ही होना चाहिए।

(३) विदेशी सहायता (Foreign assistance)—लगभग सभी अर्थशास्त्री ...नीतिज्ञ इस बात पर सहमत हैं कि बिना विदेशी पूंजी के राष्ट्रीय पूंजी का ...षेप महत्व नहीं। विदेशी पूंजी, प्राविधिक योग्यता (Technical Know- ...मशीनों एवं धन आदि के रूप में प्राप्त हो सकती है। अर्ध-विकसित राष्ट्रों ...की पूंजी की आवश्यकता विशेषत: अपनी उत्पादन क्षमता को बनाने एव ...लिये होती है। भारी और आधारभूत उद्योग बिना विदेशी पूंजी के नहीं ...किये जा सकते।

(४) घाटे की अर्थ व्यवस्था (Deficit Financing)—प्राय: यह देखा गया ...कि पूंजी के निर्माण के लिये साधारण साधन पर्याप्त नहीं होते। छुपी ...शि एव बचत योग्यता (Savings Capacity) का पूंजी निर्माण मे लगाने ...टे की अर्थ व्यवस्था एक बहुत सफल तरीका है। राष्ट्रीय सरकार धन ...त्रा बढ़ाकर, लोगों की आय बढ़ाती है। तथा कीमतें ऊँची की जाती ...ार लाभ की आशा व अधिक आय हो जाने के कारण पूंजी का अधिक ...ोता है। धनी वर्ग लाभ की आशा से जमा निधि का विनियोग करता है, ...कारण की बढ़ी हुई आय को सरकार बचतों द्वारा प्राप्त कर लेती है। ...विनियोग-उत्पादन-आय (Investment-Production-Income) के चक्र ... पर वह स्वयं गति पकड़ लेता है और अर्थ-व्यवस्था प्रगति करने

...अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग (International Co-operation)—अन्तर्राष्ट्रीय ...करना केवल अर्ध-विकसित राष्ट्रों का प्रयत्न ही नहीं, अपितु विकसित ...राष्ट्रीय संस्थाओं का कर्त्तव्य भी है। संयुक्त राष्ट्रसंघ (U. N. O.) की ...विकसित राष्ट्र अपना महत्वपूर्ण योगदान देकर इन राष्ट्रों को शीघ्र

प्रगति में सहायता दे सकते हैं। सबसे अधिक आवश्यक पूंजी व प्राविधिक सहायता Technical help) है। *परन्तु यह आवश्यक है कि यह सहायता किसी राजनैतिक* अथवा आर्थिक बन्धन (Strings) के बिना मिले। यह भी आवश्यक है कि विकसित देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र मे अर्ध-विकसित राष्ट्रों के हितों का ध्यान रखें।

(६) सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिरता (Social and Political Stability)—आर्थिक प्रगति के लिये एक दृढ़, स्थायी, ईमानदार व विश्वसनीय सत्ता की आवश्यकता है। इसके लिये यह भी आवश्यक है कि विदेशी सरकारें इन देशों के मामलों में हस्तक्षेप न करे। सामाजिक सुरक्षा एवं उचित न्याय व्यवस्था का होना भी बहुत जरूरी है।

(७) शिक्षा एवं जागृति (Education and National Awakening)—देशवासियों की प्रगति हेतु किये जाने वाले प्रयत्नों के बारे में ज्ञान एवं सूचना देना अर्ध-विकसित देशों की सरकारों के लिये आवश्यक है। केवल साधनों की बाहुल्यता अथवा पूंजी की प्राप्ति से ही विकास नहीं हो सकता। विकास के लिये मनुष्यों के भाग्यवादी तथा निराशावादी दृष्टिकोण (Fatalistic and pessimistic outlook) को बदलना होगा। जनता में यह भावना (consciousness) जाग्रत करनी होगी कि हम अपने भाग्य के स्वयं निर्माता हैं (We are the architects of our own fate)। हम स्वयं परिश्रम करके अपने देश को विकसित कर सकते हैं। हमें देश का नव-निर्माण करना है, देश को समृद्धिशाली बनाना है। जन जागृति अत्यावश्यक है। *विकास के प्रति जनमत तैयार करना चाहिये। जनमत क्या नहीं कर सकता? जनमत-तो वह शक्ति है जिसने राष्ट्रों के नक्शे बदल दिये हैं।* प्रगति के लिये मनुष्यों में प्रगति की प्रबल इच्छा, रुचि एवं उत्साह होना चाहिये (People must desire progress)। *प्रगति के लिये विभिन्न मनोवैज्ञानिक तरीकों से उत्साह उत्पन्न करना चाहिए, जिससे पूर्ण जन सहयोग मिले।*

(८) शासन सम्बन्धी कार्य क्षमता (Administrative Efficiency)—निपुण, ईमानदार एवं सुसंगठित शासन व्यवस्था (Well organised Administration) एक महत्वपूर्ण साधन है। पूंजी एवं विदेशी सहायता का दुरुपयोग रोकने के लिये एक कुशल शासन व्यवस्था का होना अत्यावश्यक है। कुशल शासन व्यवस्था के अन्तर्गत योजनाओं की अच्छी प्रगति होगी, *जनसहयोग प्राप्त होगा एवं कठिनाइयों का निराकरण करने में सफलता होगी।*

(९) कुछ काल के लिये उपभोग पर रोक (*Control over consumption*)—प्रायः देखा गया है कि लोगों की आर्थिक प्रगति होने पर वे [illegible] वर्ग, जिनकी

आय में वृद्धि होती है परन्तु उपभोग स्तर ऊँचा उठा लेते हैं। फलस्वरूप अतिरिक्त उत्पादित पदार्थ और अधिक उत्पादन में सहायक न होकर आर्थिक प्रगति को हानि पहुंचाते हैं, अतः आर्थिक प्रगति के प्रारम्भिक वर्षों में उपभोग के स्तरों को नीचा रखना बहुत आवश्यक है। अतिरिक्त उत्पादन एवं आय को दुबारा विनियोग करने एवं उत्पादन शक्ति बढ़ाने में लगाना चाहिए।

संक्षेप में, अर्ध-विकसित' शब्द अपने साथ यह अर्थ रखता है कि देश में प्राकृतिक साधन हैं, और विकास संभव एवं वाञ्छनीय है, परन्तु उपर्युक्त वातावरण का अभाव है। लेकिन सहायक वातावरण के बिना आर्थिक विकास संभव नहीं। आर्थिक विकास सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परिवर्तन के सम्मिश्रण का परिणाम होता है और स्वयं भी अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन लाता है। पूंजी, भूमिसुधार, सामाजिक बंधनों से छुटकारा, स्वतन्त्रता, राजनैतिक स्थिरता, सुसंगठित शासन, बचत, पूंजी का ठीक विनियोग आदि के साथ साथ जनता में विकास के प्रति रुचि, उत्साह व जागरूकता का होना अनिवार्य है।

विकास के पथ पर (Towards Progress)

इस शताब्दी में अर्ध-विकसित अवस्था से उठकर आर्थिक प्रगति की ओर अग्रसर होने वाले देशों में रूस, यूगोस्लाविया, चीन व भारत के उदाहरण स्मरणीय हैं। प्रथम दो देशों के उदाहरण सर्वविदित हैं। पूंजी के सही विनियोग व उत्पादन क्षमता में वृद्धि करके एवं उपभोग के स्तर नीचे रख कर ही वे इतनी प्रगति कर पाये हैं। दोनों ही देशों ने प्रारम्भिक अवस्थाओं में विदेशी सहायता प्राप्त की, यद्यपि उसकी आन्तरिक व्यवस्था का उनकी प्रगति में विशेष महत्व रहा है। भारत व चीन को और अधिक अर्ध-विकसित देश कहना अब कदाचित् अनुपयुक्त होगा। पिछले १३–१४ वर्षों में दोनों देशों ने काफी आर्थिक प्रगति की है और कई मनीषियों के मत में ये प्रो. रोस्टोव (Prof Rostow) की स्वचलित अर्थव्यवस्था (Self-sustaining Economy) को प्राप्त होने वाले हैं। भारत का उदाहरण विश्व इतिहास में स्मरणीय रहेगा। अतुल विदेशी सहायता, महान् आन्तरिक प्रयत्न एवं स्थिर व कुशल शासन के सहयोग से इस देश ने ४४ करोड़ व्यक्तियों की आर्थिक प्रगति के लिये जो यत्न किये हैं वे अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आश्चर्यजनक हैं। इसके अतिरिक्त बर्मा, पाकिस्तान, इण्डोनेशिया, संयुक्त अरब गणराज्य, इराक आदि अनेक अर्ध-विकसित देश भी प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हैं। साथ ही विभिन्न सामाजिक व मिश्र एवं राजनैतिक परिस्थितियों में अपनी उन्नति कर रहे हैं।

अर्ध-विकसित राष्ट्र एवं नियोजन

(Under-developed countries and Planning)

क्या यह आवश्यक है कि प्रत्येक अर्ध-विकसित राष्ट्र आर्थिक प्रगति के लिये नियोजन अपनाए ही ? यदि गलत न माना जाए तो साधारण तौर पर आज विश्व में तीन प्रमुख वाद (Isms) माने जा रहे हैं—पूंजीवाद, समाजवाद, एवं साम्यवाद। अर्ध-विकसित राष्ट्र—जिनमें अधिकतर अभी तक पूंजीवादी देशों के अधीन थे—पूंजीवाद के विरोधी हैं। समाजवादी एवं साम्यवादी सभी देशों ने अलग २ सीमा तक आर्थिक नियोजन अपनाया ही है, अतः अर्ध-विकसित राष्ट्र यदि इन दोनों में किसी भी वाद को मानते हैं तो इन्हें नियोजन अपनाना ही होगा। यदि पूंजीवाद में विश्वास करते हैं तो उन्हें यह भी ज्ञात है कि सभी पूंजीवादी देशों को समय २ पर किसी न किसी रूप में नियोजन का आश्रय लेना पड़ा है।

परन्तु राजनैतिक कारणों से अधिक महत्वपूर्ण हैं आर्थिक कारण। अर्ध-विकसित देश नियोजन के अतिरिक्त किसी भी अन्य पद्धति के अन्तर्गत अपने सीमित साधनों का अधिकतम (Maximum) उपयोग नहीं कर सकते। समय एवं परिस्थितियों की मांग है कि वे आर्थिक नियोजन अपनाएं। जैसा कि सर्वविदित है कि अर्ध-विकसित राष्ट्रों के पास सभी महत्वपूर्ण प्राकृतिक साधन हैं। प्रश्न है उनके उचित उपयोग और उन्नति का। आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत ये राष्ट्र अपनी आर्थिक प्रगति बिना साधनों को व्यर्थ नष्ट किये करते हैं। नियोजित नीतियों के आधार पर ही वे अपने साधनों का सर्वांगीण विकास (All sided development) करके, निश्चित सामाजिक एवं राजनैतिक लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं। बीसवीं शताब्दी नियोजन का युग है और नियोजन को तो वर्तमान युग की महा औषधि (Panacea) माना जा रहा है।

हमारा देश—हमारी आवश्यकताएं : जैसा कि हम पहले कह चुके हैं—हमारे देश की गिनती भी अर्द्ध विकसित राष्ट्रों में होती है। हमारे देश की अर्थ व्यवस्था की समस्यायें सामान्य तौर पर अन्य अर्द्ध-विकसित देशों की समस्याओं से मिलती जुलती हैं, तथा उनका समाधान भी सामान्य रूप से एक ही है। इस बात को ध्यान में रखकर हम भारतीय अर्थव्यवस्था को केन्द्र बिन्दु मानते हुए अपना अध्ययन जारी रखेंगे।

हालांकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के कुछ समय पूर्व से ही भारतीय जनता और नेता अपने आर्थिक विकास की समस्या से चिंतित हो काफी प्रयत्न करने लग

है, किंतु फिर भी आज हमारे सम्मुख निम्नलिखित समस्यायें—जो अन्य अर्द्ध विकसित देश में भी विद्यमान हैं—मुंह फाड़े खड़ी हैं :—

हमारे देश मे प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा ५५ देशों के लिए गए एक वार्षिक सर्वेक्षण के अनुसार भारत का स्थान इस दृष्टि से निम्नतम् प्रतिव्यक्ति आय वाले देश में है। पूरी उदारता बरतने व अत्युक्तियों को भी बगैर भूले हम आज यह नहीं कह सकते कि हमारे देश में प्रति व्यक्ति वार्षिक आय तीन सौ रु० से अधिक है। सन् १९५०–५१ में प्रति व्यक्ति आय २४७.५० रु० थी तथा पिछले बारह वर्षों में यह १०.४ प्रतिशत की दर से बढ़ी है—जिसे कदाचित प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत अमेरिका जैसे विकसित देश में प्रति व्यक्ति वार्षिक आय हमारे देश की इसी आय से तीस गुणी से भी अधिक है। भारत में जनसंख्या वृद्धि भी प्रतिव्यक्ति आय के मंद गति से बढ़ने या न बढ़ने के प्रमुख कारणों में से एक है।

न केवल यह आय बहुत कम है इससे बढ़कर परेशानी की बात यह है कि इस आय का समान वितरण भी देश में नहीं हो पाता। यद्यपि भारतीय जनता के लिए समाजवादी समाज का निर्माण करने की कल्पना की जा रही है, तथापि आज धन और आय के वितरण में जो असमानता है, उसे देखकर हम कह सकते हैं कि हम समाजवाद से कोसों दूर हैं। महलानोबिस समिति (१९६०) ने इस विषय में जांच पड़ताल कर बताया कि देश की कुल घरेलू आय (Aggregate Domestic Income) का ४०.४ प्रतिशत भाग उच्चतम वर्ग के १० प्रतिशत लोगों के पास जाता है, तथा निम्नतम वर्ग के १० प्रतिशत लोगों को केवल १.२ प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। यह तो आय के वितरण की असमानता है, धन के वितरण की असमानता तो इससे भी अधिक है।

अर्द्ध विकसित देशों की सर्वसामान्य विशेषता 'कृषि की प्रधानता' भारत में भी विद्यमान है। भारत को हम कृषि का भी प्रतिनिधि घर कह सकते हैं। यहां सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या का ६९.५ प्रतिशत कृषि पर आश्रित है तथा राष्ट्रीय आय में लगभग आधा योगदान कृषि द्वारा होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में केवल ८ प्रतिशत लोग कृषि में लगे हैं। हमारे देश में जनसंख्या का इतना बड़ा भाग कृषि में लगा है, किन्तु दुर्भाग्य से कृषि एक पिछड़ा हुआ उद्योग है। इसका वर्षा पर निर्भर होना (सिंचाई के पर्याप्त साधनों के अभाव में), उत्पादन की पुरानी पद्धतियों का प्रचलन, खेतों का छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त होना, बढ़ती खेती के तरीकों को उपयोग में न लाना, तथा किसान की सामाजिक और व्यक्तिगत

दुर्बलताओं ने इस पिछड़ेपन को बनाए रखने में बहुत सहायता की है। प्रतिएकड़ उपज बढ़ाना मात्र भी सम्भव है, किन्तुयदि हम इन बुराइयों को समाप्त कर दें तब।

आजकल यह कहा जाता है कि यदि पिछड़े देशों में किसी प्रकार की उत्पादन वृद्धि होती है तो वह है जनसंख्या की वृद्धि। यह एक कटु सत्य है। भारत में भी यह समस्या उग्र रूप में विद्यमान है, तथा इस समय जनसंख्या वृद्धि की दर २·५ प्रतिशत है। वृद्धि की इतनी ऊँची दर का कारण जन्मदर का उतना ही बना रहना तथा मृत्युदर का कम होना है। अब ऐसी दशा में यह स्वाभाविक है कि आर्थिक विकास की गति धीमी पड़ जाए। सन् १९६१ की जन गणना के अनुसार भारत की जनसंख्या ४३ करोड़ ९० लाख थी। अनुमान लगाया जाता है कि यह १९७१ में ५५ करोड़ ५० लाख के लगभग हो जावेगी। इसका अर्थ यह है कि जो कुछ हम अपने खाने, रहन-सहन आदि के लिए बढ़ाएंगे उसे खाने वाले नए लोग हड़प कर जायेंगे। यही नहीं जनसंख्या वृद्धि से बेरोजगारी भी बढ़ती जाती हैं। चूंकि नए उद्योग धंधे इस तेजी से नहीं खुलते जिस तेज़ी से जनसंख्या बढ़ती है, नए-नए लोग उन धंधों व उद्योगों में बढ़ते जाते हैं जो पहले की श्रम शक्ति के लिए पर्याप्त थे। परिणाम यह होता है कि जहां एक व्यक्ति एक कार्य कुशलता पूर्वक कर रहा था वहां उसे दो व्यक्ति करने लगते हैं। यह दूसरा व्यक्ति बेरोजगार रहता तथा इसकी उपयोगिता नगण्य है। इसे छिपी बेरोज़गारी कहते हैं तथा यह कृषि में अधिक पाई जाती हैं। इस प्रकार जनसख्या वृद्धि श्रम शक्ति का अपव्यय लाती है।

पिछड़े देशों की एक और गम्भीर समस्या पूंजी का अभाव है। चूंकि राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय देश में बहुत कम होती है, लोग बचत नही कर पाते। जब बचत नहीं होती तो आर्थिक विकास के लिए आवश्यक उद्योग धंधों को प्रारम्भ करने के लिए पूंजी का विनियोग नहीं हो पाता। परिणाम स्वरूप देश की अर्थ व्यवस्था जहाँ की वहाँ बनी रहती है। हमारे देश मे द्वितीय योजना के दौरान राष्ट्रीय आय का ८·५ प्रतिशत बचाया गया, जब कि कुल विनियोग ११ प्रतिशत किया गया। तृतीय योजना के अन्त मे कुल बचत ११·५ प्रतिशत होने का अनुमान है।

कम बचत और पूंजी के अभाव में देश का औद्योगीकरण का होना असंभव है। कृषि व अन्य उद्योगों की उत्पादकता भी इसी कारण नही बढ़ पाती। यदि किसी प्रकार अन्य देशों से उधार आदि माँग कर भी थोड़ी बहुत प्रगति हो जाए तो जनसंख्या वृद्धि आदि जैसे कारक उसे ग्रसने को तैयार बैठे रहते हैं।

यह कहा जाता है कि धन से धन की वृद्धि होती है। इसी तरह आज यह सिद्ध हो गया है कि गरीबी से गरीबी की वृद्धि होती है। एक गरीब देश के श्रमिक नंगे भूखे काम कर अपनी दुर्बलता को बढ़ाते हैं, उनकी कार्यक्षमता घटती जाती हैं, वह और अधिक गरीब होता जाता है। इसी प्रकार एक देश की कम पूंजी और कम बचत से कम उत्पादन व अधिक गरीबी सामने आते हैं। यह प्रक्रिया एक दूषित चक्र की भांति जारी रहती है।

अर्द्धविकसित देशों में, केवल यही अभिशाप नहीं, बल्कि लोगों की रूढि-वादिता, अशिक्षा, भाग्यवादिता व गरीबी से उत्पन्न मानसिक आघात व अकर्मण्यता आग में घी का काम करते हैं। उत्पादन के साधनों की अगतिशीलता, (एक ही स्थान व धंधे से चिपके रहने की भावना) आदि बातें भी अधिक दुविधायें बढ़ाती हैं। इन देशों में बाजार की परिस्थितियों का ज्ञान न होना, मूल्यों का बेलोच होना आदि कारण आर्थिक साधनों के दुरुपयोग को बढ़ाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत सहित सभी अर्द्धविकसित देशों की उपरोक्त समस्याएं अर्थशास्त्रियों व आर्थिक विकास के लिए प्रयत्न करने वालों के लिए एक टेढ़ी खीर हैं। आर्थिक विकास के लिए निस्सदेह क्रांतिकारी प्रयत्नों की आवश्यकता है और यह क्रांतिकारी प्रयत्न आवश्यक रूप से देश की परिस्थितियों, जनता की विचार धारा आदि के अनुरूप होकर ही सफल सिद्ध हो सकते हैं, अन्यथा नहीं।

(३) पिछड़े राष्ट्र—समाधान —अब हम भलीभांति समझ गए हैं कि अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों की अर्थ व्यवस्थाएं तब तक सुदृढ नहीं हो सकती जब तक कि उपरोक्त समस्याएं —जिनका प्रादुर्भाव आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक कारणों से हुआ है—हल नहीं कर ली जातीं। अब हम इन राष्ट्रों की समस्याओं के समाधान के लिए किए गए प्रयत्नों व नीतियों का विवेचन करेंगे।

उपरोक्त समस्याओं को देखते हुए हमें यह ख्याल आता है कि सम्भवतः अर्द्ध-विकसित देशों में पूंजी-नियोजन की समस्या ही मुख्य समस्या है और मुद्रा पूर्ति द्वारा इस का समाधान किया जा सकता है। निस्सदेह मुद्रा पूर्ति एक महत्वपूर्ण समाधान है, किन्तु यह केवल एक मात्र समाधान नहीं। प्रोफेसर एल. बी. चैंडलर (L. B. Chandler) ने ठीक ही कहा है कि अर्द्धविकसित देशों में समाज के समस्त पहलुओं के पुनर्निर्माण की आवश्यकता है और इस पुनर्निमाण की प्रक्रिया को हम केवल मुद्रा से नहीं खरीद सकते; और न हम यह कार्य एकाएक कर सकते हैं। इस के लिए हमें दशकों तक सभी क्षेत्रों में रचनात्मक व विचारात्मक कार्य लगातार करते रहना होगा।

आज अर्थ व्यवस्था के विकास के लिए सरकारें मौद्रिक व वित्त नीतियों की सहायता से पूंजी का निर्माण व वितरण करती हैं। भारत में यहां का केन्द्रीय बैंक (रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया) मौद्रिक नीति का संचालन करता है। यह देश में मुद्रा की पूर्ति व उपयोग पर नियंत्रण रखता है। सरकार करों व राजकीय व्यय द्वारा वांछित उद्देश्यों के अनुसार पूंजी का संचालन करती है।

सन् १६२६ के बाद से संसार के पिछड़े व उन्नत राष्ट्रों के आगे अपने आर्थिक विकास के लिए एक नई प्रविधि सामने आई जिसे आयोजन (Planning) कहा जाता है। यहां हम इस विषय पर कुछ विस्तार से चर्चा करेंगे।

आयोजन क्या है? —आयोजन (Planning) शब्द का एक विस्तृत अर्थ है किन्तु अर्थ शास्त्र के संदर्भ में इसका अर्थ एक ऐसी योजना से है जिसके द्वारा उत्पादन के उपलब्ध साधनों का समुचित ढंग से वितरण किया जाए ताकि विभिन्न सामाजिक उद्देश्यों को पूरा कर समाज को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके।

योजनाओं का सर्व प्रथम प्रारम्भ सोवियत संघ में १६२६ में हुआ था जब कि वहाँ की प्रथम पंचवर्षीय योजना को कार्यान्वित किया गया। इसके बाद सोवियत योजनाओं की सफलता तथा थोड़े से ही समय में सोवियत संघ का एक पिछड़े देश से महान् राष्ट्र में परिणित हो जाना संसार के लिए आंखें खोल देने वाला सिद्ध हुआ। सोवियत योजनाओं की सफलता से प्रभावित हो संसार के अर्द्ध विकसित राष्ट्रों ने आयोजन को ही अपने विकास का एक मात्र उपाय माना है।

हम जानते हैं कि अर्द्ध विकसित देशों में अप्रयोगित खनिज सम्पदा उपलब्ध है; जन शक्ति की भी कमी नहीं अत: योजना द्वारा ही उपलब्ध पूंजी, श्रम शक्ति व खनिज सम्पदा आदि का सही ढंग से सामंजस्य कर, अधिक से अधिक सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। पूंजी की कमी के कारण पिछड़े देशों की सरकारें व वहां का निजी क्षेत्र—दोनों ही मिलकर निश्चित उद्देश्यों के अनुसार चल सकते हैं। ऐसे देशों में जहां योजनाओं में राजकीय व निजी पूंजी साथ साथ लगाई जा रही हो तथा दोनों पारस्परिक सामंजस्य रखते हुए देश के आर्थिक विकास में योग दान करें वहां मिश्रित अर्थ व्यवस्था (Mixed Economy) का अस्तित्व माना जाता है। हमारे देश में सोवियत संघ की भांति केन्द्रीय मिश्रित तथा केवल सरकार द्वारा परिचालित अर्थ व्यवस्था नहीं बल्कि मिश्रित अर्थ व्यवस्था है—जहां निजी व सार्वजनिक क्षेत्र दोनों ही भाई भाई की तरह हाथ में हाथ डाले देश के विकास के लिए कार्य करते हैं। हां सार्वजनिक क्षेत्र निस्संदेह बड़े भाई का कार्य करता है। जहां जहां निजी क्षेत्र अपनी सीमित शक्ति के कारण आगे नहीं बढ़

सकता वहां सार्वजनिक क्षेत्र कदम बढ़ाता है । उन उद्योगों में-जो कि राष्ट्रकी सुरक्षा व मूलभूत आवश्यकताओं की दृष्टि से महत्व पूर्ण हैं, सार्वजनिक क्षेत्र ही उत्तरदायित्व लेता है, हमारे देश मे योजनाएं बनाने का कार्य व उत्तरदायित्व योजना आयोग को सौंपा गया है जिसकी मार्च १९५० में नियुक्ति की गई थी। इसने जुलाई १९५१ मे प्रथम पचवर्षीय योजना प्रस्तुत की तथा अब तक हम तीन पचवर्षीय योजनाएं पूरी कर चुके हैं । इन योजनाओं मे किए गये कार्यों व समस्याओं को सुलझाने की दिशा में जो प्रयत्न हुए, उन्हें देखने से पहले हमें यह देखना चाहिए कि हमारे देश में साधनों की उपलब्धि कहां तक है ? इस तथ्यके लिये हमे समस्त राष्ट्र के सारे साधनों का सही और उपयुक्त मूल्याङ्कन (evaluation) एवम् अनुमान लगाना होगा, क्योंकि देश के साधन–प्राकृतिक और वित्तीय-ही राष्ट्र योजना के आकार, प्रकृति और आर्थिक विकास के लक्ष्यों को निश्चित करते हैं । देश के यदि ये साधन सीमित मात्रा मे हैं तो विकास भी सीमित होगा इसके विपरीत यदि साधन सम्पन्न हैं तो उन्हें गतिमय बनाकर उत्पादन दरों को पर्याप्त रूप से बढ़ाया जा सकता है । इसलिये सभी सरकारें इस प्रश्न को दो प्रकार से सोचती है । पहले अपनी आवश्यकताओं का अनुमान लगाना होता है और फिर साधनों की उपलब्धि की बात सोची जाती है । साधनों की आवश्यकताओं का सही अनुमान और वित्तीय साधनों की उपलब्धि अपनी अपनी सीमा रखते हैं । इन दोनों पर ही योजनाओं की सफलता निर्भर करती है । इस सफलता के लिये सबसे कमजोर स्थिति सैद्धान्तिक और क्रियात्मक रूप से साधनों की समस्या ही मानी जाती है । डॉ. राज (Dr. Raj) ने ठीक ही लिखा है कि "A plan is nothing if the programme for developmen it contains is not based upon and closely integrated with, a programme for raising resources"* अतः पर्याप्त साधनों की उपलब्धि, गतिशीलता और सही विनियोग आज योजना के शीर्ष और केन्द्र बिन्दु बन गये हैं ।

साधनों के प्रकार (Types of Resources)

साधनों के अन्तर्गत हमें सभी प्रकार साधनों को देखना होता है, जिसमें भूमि, श्रम, पूंजी, साहस एवम् सगठन की व्यवस्थाओं तक का सही अनुमान लगाया जाता है । अतः योजनाओं के लिये निम्नलिखित तीन प्रकार के साधनों की आवश्यकता होती है—

(१) प्राकृतिक साधन (Physical resources)
(२) मानव-शक्ति साधन (Human resources)
(३) वित्तीय साधन (Financial resources)

*Dr. K. N. Raj — India's Economic Growth.

(1) प्राकृतिक साधन (Physical Resources)

प्राकृतिक साधन से तात्पर्य है देश में मिलने वाले वे उपहार जो प्रकृति ने मनुष्य को निःशुल्क (free gifts of nature) प्रदान किये हैं। कुछ विचारकों का मत है कि भूमि, श्रम और पूंजी आर्थिक विकास के लिये आवश्यक साधन नहीं हैं, किन्तु ए. कुजनेट्स (Kuznets) जैसे अर्थशास्त्री ने इन साधनों को अति महत्वपूर्ण (Crucial) माना है।● सच माना जावे तो भूमि, श्रम और पूंजी आर्थिक विकास की परम्पराओं में आधारभूत तत्व हैं। ब्रिटेन, जर्मनी और जापान जैसे राष्ट्रों के आर्थिक विकास में इन प्राकृतिक साधनों का बड़ा भारी हाथ रहा है। फ्रान्स सम्भवतः अपने विशेष प्रकार के सांस्कृतिक जीवन के कारण आर्थिक विकास के मामले में ब्रिटेन तथा जर्मनी से पीछे रह गया और वहाँ इन साधनों ने इतना महत्वपूर्ण भाग अदा नहीं कर पाया है।

भूमि साधन के रूप में

आर्थिक विकास के लिये न्यूनतम भूमि की आवश्यता तो पड़ती ही है, किन्तु यदि वह भूमि न्यूनतम (minimum) से अधिक और रूप में विभिन्न और किस्म में अच्छी है, तो विकास की गति तीव्र होती है।●● स्विटजरलैंड में विकास की गति मन्द रही जबकि जापान ने आशातीत उन्नति की है। भूमि कृषि जन्य पदार्थों के लिये ही नहीं अपितु औद्योगिक माल के लिये भी उपयोगी सिद्ध हुई है। प्राकृतिक साधनों का महत्व औद्योगिक विकास के लिये दुतरफा (two fold) होता है। एक ओर देश कच्चा माल पैदा करके उसे विदेशों को बेचता है। ईरान, ईराक, सऊदी अरब, कुवैत तेल पैदा करके बेचते हैं। मैक्सिको, ब्राजील और स्पेन कच्चे लोहे का निर्यात करते हैं। चिली, बेल्जियम, कांगो और रोडेशिया तांबे के बहुत अच्छे उत्पादक और निर्यातक हैं। दूसरी ओर देश अपने ही उद्योगों के लिये कच्चे माल का उत्पादन करता है। जापान, ब्रिटेन, न्यूजीलैंड ऐसे ही देशों में आते हैं।●●●

● "Every country has some natural resources......the factors that induce formation of capital adequate as a basis for economic growth are unlikely to be inherited by an absolute lack of natural resources." S. Kuznets—'Towards a Theory of Economic Growth.'

●● Charles P. Kindleberger—Economic Development P. 11.

●●● John Hopkins University Press, Baltimore—The Basis of a Development Programme for Colombia.

भूमि का महत्व यातायात एवम् संचार वाहन के साधनों के लिये उपयोगी
ता है। यदि पर्वतमालायें यातायात में बाधायें हैं, तो विशाल नदियाँ महत्वपूर्ण
र्ग हैं जिन पर व्यापार होता हैं। मैदानी मार्गों में रेलें सडके या नहरें बनती
। कटा फटा समुद्र तट जिसमें प्राकृतिक बन्दरगाह होते है, सदेशवाहन और
तायात के सस्ते साधन हो जाते हैं। यूगोस्लाविया, कोलम्बिया और नेपाल इस
ष्टकोणसे सम्पन्न नहीं हैं।

भारतवर्ष 12,61,597 वर्ग मील के क्षेत्रफल में फैला हुआ है, जिसकी भूमि
ायें 9,425 मील लम्बी और समुद्र तट 3,535 मील लम्बा माना गया है।**
रतवर्ष के मुख्य रूप से तीन प्राकृतिक भाग किये गये हैं, जो हिमालय प्रदेश, सिंधु-
ा-ब्रह्मपुत्र के मैदान और दक्षिणी प्रायः द्वीप के नाम से विख्यात हैं। हिमालय
त कुल्लु और कश्मीर घाटियाँ अपने उपजाऊपन, विस्तार एवम् प्राकृतिक सौंदर्य
लिये सर्व विदित हैं। तराई के जङ्गल भारत की विशेष समृद्धि हैं। हिमालय
ह 1,500 मील की लम्बाई घेरे हुये है और देश के आर्थिक विकास में अपना
य योगदान देता है। गङ्गा, सिंधु और ब्रह्मपुत्र का मैदान 1500 मील लम्बा
150 से 200 मील तक चौड़ा है। *** यह मैदान विश्व में अपने उपजाऊ
था दुमट मिट्टी के क्षेत्र के लिये मशहूर है। यह क्षेत्र कृषि के दृष्टिकोण से
र है और जनसंख्या के विषय में सबसे अधिक घना बसा हुआ है। दक्षिणी
द्वीप क्षेत्र का आधार अरावली, विन्ध्याचल, सतपुड़ा, मैकाल, और अजन्ता पर्वत
याँ बनाती है और इसकी दो भुजायें पश्चिमी तथा पूर्वी घाट हैं। समुद्र तट
दोनों घाटो के बीच की भूमि बहुत उपजाऊ है। नीलगिरि पर्वत
लायची की पहाड़ियाँ शीर्ष बनाती हैं। यह क्षेत्र भूगर्भ के दृष्टिकोण से मजबूत और
ों से सुरक्षित है।

वर्षा के आधार पर देश को चार क्षेत्रों में बाटा जाता है। वे इलाके जहाँ
तम वर्षा होती है—असम, पश्चिमी घाट, त्रिवेन्द्रम, एव तराई के जगल हैं।
ान, कच्छ, लद्दाख, कम वर्षा वाले प्रदेश है। औसत वर्षा वाले क्षेत्र में बगाल,
, उत्तर प्रदेश, तथा पजाब आते हैं। मध्य प्रदेश, उड़ीसा मैसूर का पठारी
ौसत के कुछ अधिक वर्षा प्राप्त करते है। अच्छी वर्षा के क्षेत्र में वन (forest)
ोते है। भारतवर्ष में पर्वतीय, मानसूनी, सदाबहार, डेल्टा, शुष्क जसे वन
राष्ट्र की सम्पत्ति (assets) में गिने जाते है।

खनिज साधन—भारत में उत्तम किस्म के लोहे का बहुत बड़ा भंडार है—
: विश्व का सबसे बड़ा भंडार अनुमानतः यह भंडार 2701 करोड़ टन लोहे

---

rvey of India, April, 1963.
lia 1964.
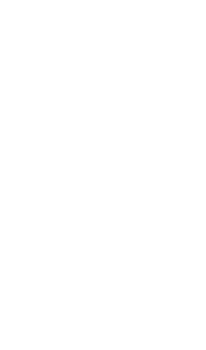
इन सब के अतिरिक्त भारत आणविक खनिज भी पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान है। यूरेनियम, मोनोजाइट, बेरिलियम आदि जैसे महत्वपूर्ण आणविक खनिजों में हमारा देश आत्म निर्भर है। देश के खनिजों को ढूंढ निकालने का कार्य भारतीय भूसर्वेक्षण विभाग (Geological survey of India) के सुपुर्द है।

इन खनिज पदार्थों के अलावा हमारे देश मे उद्योगों आदि के विकास का एक और श्रोत है— विद्युत शक्ति। विद्युत शक्ति के विकास और विस्तार की बहुत अधिक संभावना है, तथा इसकी आवश्यकता भी दिनों दिन अधिक अनुभव की जा रही है। हम लोग देश मे कोयले, आणविक पदार्थों एवं जल की सहायता से विद्युत सृजन कर सकने में समक्ष हैं। केवल जल से ही देश में, केन्द्रीय जल व शक्ति आयोग के अनुसार ४१० लाख किलोवॉट विद्युत उत्पन्न करने की शक्ति है।

इस प्रकार जहां तक भौतिक साधनों का सबंध है—कुल मिला कर हम कह सकते हैं कि हम इस दृष्टि से गरीब नहीं। यही देखकर यह कहा गया है कि भारत एक अमीर देश है पर यहां के निवासी गरीब हैं। आवश्यकता हमें इस छुपी संपत्ति के विदोहन करने की है, ताकि गरीब जनता का आर्थिक स्तर ऊंचा उठे। हमारी पचवर्षीय योजनाओं मे मुख्यत: इसी उद्देश्य से कार्य किए गए हैं। देशमें नए नए उद्योगों, बड़ी घाटी योजनाओं व रोजगार व सम्पन्नता को लाने वाले अनेक साधनो का निर्माण हुआ है, लेकिन अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है।

(२) मानव शक्ति-साधन—(Human Resources)

देश में मानव शक्ति का अपार भण्डार है। जन संख्या के दृष्टिकोण से भारतवर्ष विश्व आंकड़ों में चीन के बाद दूसरे स्थान पर आता है। सन् 1961 की जन गणना के आधार पर भारतवर्ष मे 43,90,72,582 व्यक्ति निवास करते हैं, जिनकी जन्म दर 42 व्यक्ति प्रति हजार और मृत्यु दर 23 व्यक्ति प्रति हजार है। इस प्रकार प्राकृतिक वृद्धि जन्म दर में 19 व्यक्ति प्रति हजार आंकी गई।* इन आकडों से यदि हम उन जनसंख्या को निकाल लें जो कि काम करने योग्य है और जो 15 वर्ष से 64 वर्ष के आयु समूह में है, तो वह कार्यशील जनसंख्या (Working Population) कही जायेगी। जैसे गावों में जहा जनसख्या के अंक सब से ऊंचे प्रतिशत पर हैं, अधिकांशत: बच्चे छोटी उम्र मे काम पर लग जाते है, और मनुष्य प्राय: लम्बी उम्र तक काम करते है, क्योंकि वहाँ रिटायरमेण्ट (अवकाश प्राप्ति) का प्रश्न नहीं उठता है। 15 वर्ष से 64 वर्ष के आयु समूह मे कुल जनसंख्या का

* Survey of India, 1963.

81.9% प्रतिशत सम्मिलित होता है* इस प्रकार देश के पास एक बहुत अच्छा प्रतिशत काम करने वाली जन सख्या सदा बना रहा है । यही जनसंख्या जो (Working Population) के नाम से सम्वोधित की जाती है प्रो० स्पेन्जलर के शब्दों में, "आन्तरिक शक्ति (Inner strength) का सूचक (Index) है ।" **

किसी भी देश मे ऐसी जनसंख्या का बढ़ा हुआ प्रतिशत सब कुछ नहीं होता हैं, यदि यह काम काम करने वाली जनसंख्या वैज्ञानिक दृष्टि से पर्याप्त नहीं है । सच पूछा जाये तो प्रो० ड्यूर्हस्ट (Dewhurst) के साथ ही हमें भी मानना होगा कि अन्य साधनों की तरह से तकनीकी ज्ञान एक प्राथमिक साधन (Technology in fact can thought out of as the primary resource) भी है । *** प्रो० रस्टोव ने भी मानवीय साधनों को वैज्ञानिक शिक्षा तथा तकनीकी ज्ञान से सुसज्जित रखने के लिये लिखा है कि·········behaviour of the people relevant for the Economic development can be summed up in propensities to develop Science, to apply Science to the world, to propagate and rear children and to strive for material advance. ****

इस प्रकार नई काम करने वाली यह जनसंख्या एक ओर तो नये पदार्थों तथा माल का सृजन कर मांग में वृद्धि करे और दूसरे ओर लागत को कम करने के लिए नये तकनीक ढूढ निकाले । दुर्भाग्यवश भारतवर्ष इस दिशा में सौभाग्यशाली नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि भारतवर्ष में प्रशिक्षित कर्मचारियों, वैज्ञानिकों तथा तकनीकियों का प्रतिशत बहुत ही नीचा है । उद्योगों में काम करने वाले ऐसे व्यक्तियों की सख्या 1962 में 41.12 लाख थी ।***** अन्य संस्थाओं में काम करने वाली जनसख्या न तो पूर्णतया प्रशिक्षित ही कही जावेगी और न वह देश के आर्थिक विकास की प्रगति से आगे हो बढ़ा सकेगी अन्य औद्योगिक सेवाओं के क्षेत्र के अलावा देश मे सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में भी एक भयावह स्थिति खड़ी है । डाक्टरों, नर्सों प्रोफेसरों, इंजिनियरों का भाग भी नितान्त अभाव है । फिर भी यदि हम जनसंख्या को कुशल बना सके तो यह काम करने वालों की सेना (working men force) अच्छे परिणाम प्रस्तुत कर सकती है ।

सारांश मे यदि हम प्रो० जथार एवं बेरी के शब्दों को उद्धरित कर दें तो स्थिति और भी स्पष्ट हो सकेगी । उनका कहना है कि, 'यह एक साधारण कथन है

* India 1964—Table 8. Age Structure.

** Spengler—population Growth.

*** Dewhurst—America's needs and resources. A new Survey.

**** Rustow—Process of Economic growth.

***** India 1964.

कि प्रकृति ने उदारता पूर्वक भारत को अपने उपहार दिये हैं, किन्तु भारतीय उससे उचित लाभ नही उठा सके हैं। प्राकृतिक विपुलता (Abundance of Natural resources) और मानव निर्धनता की यह कैसी विडम्बना है। इस कथन का यही कारण है जो एक कहावत बन चुकी है कि भारत मे सम्पन्नता के बीच गरीबी है।" *

(३) वित्तीय साधन (Financial Resources)

वित्तीय साधनों का महत्व देश के विकास मे सदैव ऊंचा रहा है, जिसे एक केन्द्रीय स्थान ही नही किन्तु बहुत प्रमुख (Strategic) स्थान दिया जाता है। आर्थिक विकास सदैव ही अपने साथ पूंजी अथवा वित्तीय साधनों की माग और वृद्धि करते है और आर्थिक विकास का क्रम पूंजी या वित्तीय निर्माण में एक नया मोड़ लाता है। एक स्थिर अर्थ व्यवस्था मे पूंजी या वित्त की आवश्यकता पूंजी के स्टॉक को बनाये रखने के लिए पड़ती है, क्योकि पूंजी मे निरन्तर घिसावट होती रहती है, किन्तु एक विकसित अर्थ व्यवस्था में वित्त आवश्यक इकाई बन कर भूमि तथा श्रम को गतिशीलता प्रदान करता है। बढ़े हुये रोजगार के साधन पूंजी का निर्माण प्रारम्भ कर देते हैं और बढ़े हुये वित्तीय साधन उत्पत्ति की रचनाओं और परिणामों में भी परिवर्तन लाते है। **

भारतवर्ष में, जो इस दृष्टिकोण से पहले से पिछड़ा हुआ देश माना जाता है, पंचवर्षीय योजनाओं के लिये इन सभी साधनों की माग बढ रही है।

कृषि व उद्योगों के क्षेत्र में हमारे सामने अभी भी अनेक समस्याएं हैं, जिनका सम्बन्ध हमारे समाज, प्रशासन व निजी विचार धाराओं से है। हम इस प्रकार की मुख्य समस्याओं का अलग से अध्ययन करेंगे।

1967 भारतीय कृषि—हम कह चुके हैं कि भारत की लगभग ६९.५ प्रतिशत जनता कृषि पर निर्भर करती है। हालांकि भारत कृषि प्रतिष्ठित घर कहा जाता है— किन्तु कृषि देश के उद्योगो मे सर्वाधिक समस्याओं से उलझा हुआ उद्योग है।

इस देश में आधे से अधिक किसानों के पास पांच एकड़ से भी कम भूमि के खेत हैं। खेती की उपज इतनी कम है कि परिवार का गुजारा चल जाए—यही सतोष की बात मानी जाती है। देश के सबसे बड़े उद्योग की यह दशा केवल

* Jathar & Berry—Indian Economics Vol. I.

** Kindleberger—Economic Development.

जा रहा है। कुटीर उद्योगों का विकास इन दूषित प्रवृत्ति को रोकने के लिये आवश्यक है।

८. कृषकों का अज्ञान व अशिक्षा:—सामाजिक व धार्मिक रूढ़ियों में फंसे भारतीय कृषक आधुनिक समय की मांगों को पूरा नहीं कर पा रहे हैं। सामाजिक उत्सवों में बेहिसाब खर्च व हड्डी की खाद आदि के प्रयोग से भयभीत होना इस बात का प्रमाण है।

इन सब कारणों के अतिरिक्त सबसे भयंकर प्रवृत्ति जो भारतीय कृषकों व कृषि व्यापारियों से सम्बन्धित है, वो है संचय की प्रवृत्ति। अनाज का अनुचित लाभ के लिये संग्रह वास्तव में ही हमारी खाद्य समस्या के संकट का कारण है।

तीन पंचवर्षीय योजनाओं की पूर्ति के पश्चात् भी भारतीय कृषि की समस्यायें उलझी हुई हैं। आवश्यकता इस बात की है कि भू-स्वामित्व अधिनियमों को भली भांति लागू किया जाय, कृषकों को खाद व बीज व अन्य साधन उपलब्ध कराये जावें, कृषि प्रशासन को सुधारा जाय, सिंचाई के साधनों का विकास किया जावे व कृषि बिक्री की सुविधाओं का बढ़ाया जाय। इन्हीं सामूहिक प्रयत्नों से ही देश की कृषि की समस्यायें सुलझ सकती हैं। चतुर्थ योजना में कृषि में विशेषतया खाद्यान्न के क्षेत्र में विशेष प्रगति की आवश्यकता है।

उद्योगों का पिछड़ापन एवं औद्योगिक समस्यायें (Industrial Backwardness and Industrial Problems)

औद्योगिक विकास से देश को अपरिमित लाभ प्राप्ति की बड़ी भारी आशा है, क्योंकि अब हमारा देश कृषि-कर्म पर ही जीवित नहीं रह सकता। दूसरे, औद्योगिक विकास राष्ट्रीय आय (National Income) में वृद्धि करके जीवन स्तर को ऊंचा उठाने में समर्थ होगा। किन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि देश में आज भी औद्योगिक विकास में रुकावट है, क्योंकि अनेक समस्यायें ऐसी हैं, जो हमें अपने पुराने ढांचे से ऊपर उठने ही नहीं देती हैं। उन समस्याओं में से कुछ समस्याओं का उल्लेख यहां किया जायगा।

(१) भारतीयों का पुराना दृष्टिकोण एवं परिस्थितियां (Old outlook of Indians and their conditions)—भारतवासी प्राचीनकाल से ही वाणिज्यवादी अधिक रहे हैं। वे अब भी इस जमाने में नये उद्योगों की अपेक्षा विनियोग के लिये वाणिज्य को अधिक लाभकारी समझते हैं। इसके अतिरिक्त कृषि प्रधानता, ग्रामीण

क्षेत्र की भरमार, कच्चे माल का अभाव, और राष्ट्रीय आय की अल्पता जैसी परिस्थितियों ने कई समस्याओं को जन्म दिया और देश के औद्योगीकरण में बाधा पहुँचाई। अर्थ-आयोग (Economic Commission) के मतानुसार देश की जनसंख्या, साधनों एवं विस्तार को देखते हुये उद्योग अभी भी अविकसित हैं।

(२) आधारभूत (Basic) धात्वीय एवं रासायनिक उद्योगों का अभाव (Lack of basic metallic and chemical industries) एक स्थायी एवं सुगठित औद्योगिक संगठन के लिये आधारभूत धात्वीय एवं रासायनिक उद्योगों की बड़ी आवश्यकता होती है। अभी भी देश में इस्पात एवं अभियांत्री के (Engineering) कारखाने बहुत ही कम हैं। औद्योगिक महत्व के तेजाब और क्षार उत्पन्न करने के कारखाने, जो आधारभूत कारखानों की गिनती में आते हैं, अभी नगण्य ही हैं।

(३) टेक्नीकल प्रशिक्षण एवं कर्मचारियों का अभाव—(Lack of technical training and skilled workers) देश में औद्योगिक विकास की चर्चा करने के पहले ही यह आवश्यक था कि तकनीकी (technical) शिक्षा का प्रबन्ध करके उद्योग चलाये जाते। आज भी देश के कुशल एवं प्रशिक्षित कारीगरों, इन्जिनियरों, प्राविधिक एवं रासायनिक विशेषज्ञों (specialists) का अभाव है। यह संख्या इतनी कम है कि माग और पूर्ति की वक्र रेखा एक दूसरे से बहुत नीची रहती है। फलस्वरूप देश को विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है। इसके अतिरिक्त व्यापारिक प्रशासन एवं प्रबन्ध-कला का प्रशिक्षण (Business administration and management) का प्रशिक्षण (Training) भी आवश्यक है।

(४) शक्ति का अभाव (Lack of power)—विश्व में आज चारों ओर प्रतिस्पर्धा है, अतः उत्पादन-व्यय को कम करके कीमतों को नीचे लाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं, किन्तु यह तभी हो सकता है, जबकि देश में शक्ति के साधनों का सन्तुलित विकास हो, एवं शक्ति सस्ती दर पर निरन्तर प्राप्त होती रहे।

(५) स्वदेशी पूंजी का अभाव (Lack of indigenous capital)—भारतीय पूंजी सदैव से लज्जाशील (Shy) रही है। एक तो व्यक्ति अपनी पूंजी उद्योगों में लगाने में हिचकिचाते हैं, दूसरे, पूंजी अब इतने बड़े पैमाने पर प्राप्य भी नहीं है कि यह बड़े विशाल पैमाने पर चलने वाले कारखानों को भली प्रकार चला सके। देश में अब भी सुगठित बैंकिंग संगठन का अभाव है। यहाँ की अधिकांश पूंजी सर्राफ़ों में लगी रहती है, अतः उद्योगों में पूंजी का अभाव सदैव बना रहता है।

(६) प्राकृतिक साधनों का अल्प विदोहन एवं साधनों का अभाव (Absence of proper exploitation of natural resources)—देश का औद्योगिक विकास अधिकाश मात्रा मे देश के प्राकृतिक साधनों पर निर्भर रहता है। दुःख है कि देश के प्राकृतिक साधनों की न तो जाच ही हो पाती है और न उनका सामान्यतया सर्वेक्षण ही हो पाया है। उपयुक्त ढग से सर्वेक्षण एवं विदोहन न होने से इनके विकास मे रुकावट पड़ती है।

(७) विदेशी पूंजी की समस्या (Problem of foreign capital)—ब्रिटिश काल में विदेशी पूंजी का प्रमुख उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण ही करना था, एवं यह ऐसे उद्योगों में लगाई जाती थी, जहा लाभ अधिक तथा जल्दी मिले। रेलें व बागान ऐसे ही उद्योग थे। उस समय बड़े बड़े देश एक निश्चित औद्योगिक नीति की अनुपस्थिति मे अपनी पूंजी बाहर देशो को भेजने में सकोच भी करते थे।

(८) औद्योगिक नीति की अनिश्चितता (Uncertainty of Industrial policy)—ब्रिटिश काल मे औद्योगिक नीति का उद्देश्य भारत का शोषण करना एव औद्योगिक क्षेत्र में उसे वहीं का वही पड़े रखना था। इस भेदकारी नीति का परिणाम यह हुआ कि स्वतन्त्रता प्राप्ति तक भारतीय उद्योगो ने कोई निश्चित प्रगति नही की। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् १९४८, एव १९५६ में दो बार सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति की घोषणा की, जिससे औद्योगिक विकास मे चली आ रही अनिश्चितता का अन्त अवश्य हुआ है।

(९) कर-नीति एवं श्रम नीति के दुष्परिणाम (Bad effects of taxation & labour policies)—स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व की कर-नीति का उद्देश्य विचित्र तरीके पर भारत का शोषण करने का था, किन्तु उसके पश्चात् राष्ट्र को गतिशीलता प्रदान करने के लिये धन की आवश्यकता थी, जिसे धन-कर (Wealth tax) व्यय कर (Expenditure tax), भेंट कर (Gift tax.) मृत्यु-कर (Death Duty) इत्यादि लगाकर पूरा किया गया। इस नीति का फल यह हुआ कि बचत में कमी हुई, एव औद्योगिक विकास में बाधा पहुँची।

श्रम नीति का भी प्रभाव किसी अश तक अच्छा नहीं पड़ा। समाजवादी (socialist) ढग की अर्थ व्यवस्था, रूस मे मजदूरों के राज्य एव अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सगठन (International Labour Organisation) ने मजदूरों को एक कर सोचने का मौका दिया। फलस्वरूप मजदूरों की दशा सुधारने, महगाई, भत्ता, बोनस, एवं अन्य सुविधायें प्रदान करनी पड़ी, जिनसे लागत व्यय बढ़ा, और उद्योगपतियों को अपने लाभ मे कटौती करनी पड़ी। इस प्रकार विकास मे रुकावट पहुँची।

(१०) श्रमिकों की कार्य कुशलता में कमी (Lack of labour efficiency)-अब तक का इतिहास साक्षी देता है कि उद्योगपतियों ने अपनी लाभ कमाने की प्रवृत्ति के कारण मजदूरों का शोषण किया। बेढंगे, हवाहीन, एवं जीर्ण आवास व्यवस्था, अशिक्षा, तथा निम्न जीवन स्तर ने मजदूरों की कार्य क्षमता में गिरावट ही पैदा की है। अब उनकी कार्य क्षमता बढ़ाने के लिये प्रयत्न किये जा रहे हैं। आज विभिन्न प्रकार के 'श्रम अधिनियम' बनाये जा रहे हैं, ताकि विकास में सहयोग एवं समायोजन हो।

(११) अभिनवीकरण के कार्यों की धीमी प्रगति (Slow pace of modernisation)—द्वितीय महायुद्ध काल में मशीनों का इतनी बुरी तरह प्रयोग किया गया कि वे जीर्ण अवस्था में पहुँच गई। आज उसके प्रतिस्थापना की आवश्यकता है। पुरानी मशीनों को हटाकर नई प्रकार की मशीनों को लगाना है, एवं नये टेकनीक(Technique)-का प्रयोग करके उत्पादन को बढ़ाना व उत्पादन व्यय को नीचा करना है। इसके लिए पर्याप्त मात्रा में पूंजी नहीं मिल पा रही है, अतः उद्योगों का विकास पीछे रुका हुआ है।

(१२) अभिकर्त्ता प्रणाली में सुधार की आवश्यकता (Reform in managing Agency system)—अभिकर्त्ता प्रणाली का विकास और उदय भारतीय औद्योगिक प्रणाली के साथ बंधा है। इस पद्धति में सचालकीय नियन्त्रण की शिथिलता, आर्थिक प्रभुत्व, अंशों की अधिक परिकल्पना जैसे दोष हैं। आवश्यकता इस बात की है कि अभिकर्त्ताओं के अधिकार कम किये जाय। किन्तु इस दिशा की ओर जो प्रयत्न हुये हैं, वे अपर्याप्त एवं धीमे हैं।

(१३) औद्योगिक शान्ति की स्थापना (Establishment of Industrial peace)—औद्योगिक शान्ति की स्थापना पर बल दिया जाय ताकि श्रम सम्बन्ध सुधरें और उनमें समुचित समायोजन किया जा सके। फैक्टरी नियमों का पालन किया जावे और शोषण समाप्त हो।

(१४) उपभोग एवं उत्पादन उद्योगों के विकास में असंतुलन (Imbalance between the development of Consumption and Production industries)-द्वितीय महायुद्ध के बाद उपभोग्य वस्तुओं का निर्माण किया गया और उत्पादक उद्योग पंचवर्षीय योजना तक स्थगित से बने रहे। अतः अब एक बार फिर से इनका सर्वेक्षण हो और दोनों के बीच में संतुलन स्थापित किया जावे।

(१५) औद्योगिक विकास में असंतुलन एवं विकेन्द्रीकरण (Imbalance in industrial development and decentralisation)—भारतवर्ष में बड़े उद्योग

प्रायः कुछ स्थानों पर ही केन्द्रित हो गये हैं। फलस्वरूप देश के बहुत बड़े भाग अब भी अविकसित एवं पिछड़े पड़े हुये हैं। इसके अतिरिक्त, निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में सन्तुलन एवं समायोजन स्थापित किया जाये। इस संक्रान्ति काल में युक्तिकरण (Rationalisation) का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

इन समस्याओं के होते हुए देश के औद्योगिक विकास की गति धीमी हो रहेगी। अतः इन समस्याओं का निराकरण करके भारत में औद्योगिक क्रांति के चक्र की गति तीव्र करने के लिये योजनाओं द्वारा प्रयास किये जा रहे हैं।

योग्यता-प्रश्न

Topics for Essay

1. Write an essay on :
   निबन्ध प्रस्तुत कीजिये :—
   (i) Problems of under-developed countries.
   अविकसित देशों की समस्यायें
   (ii) Measures to develop under-developed Economy.
   अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं को विकसित करने के साधन
   (iii) Resources in India.
   भारत में उपलब्ध साधन
   (iv) Problems of Indian Agriculture.
   भारतीय कृषि की समस्यायें
   (v) Problems of Indian Industries.
   भारतीय उद्योगों की समस्यायें
   (vi) Problems of planning in Economic Development of India.
   भारत में आर्थिक विकास के आयोजन की समस्यायें
   (vii) Economic Inqualities in India.
   भारत में आर्थिक असमानतायें

2. Write short notes on :
   संक्षिप्त टिप्पणियाँ दीजिये :
   (i) India's needs and resources.
   भारत की आवश्यकतायें और साधन
   (ii) Measures for the economic development of under-develope countries.

(ii) How did the idea of Economic Planing come into being ?
आर्थिक नियोजन के विचार का जन्म कैसे हुआ ?

(iii) How can you say that India is under-developed ?
आप यह कैसे कह सकते हैं कि भारत एक अर्द्ध विकसित राष्ट्र है ?

(iv) Describe a few problems which retard the Agricultural/Industrial Development in India.
उन कुछ समस्याओं का वर्णन कीजिये जिससे कृषि/उद्योगों के विकास में बाधा पहुँची है ।

(v) Is it correct to say that India is a rich country but her inhabitants are poor ?
क्या यह कथन सत्य है कि भारत एक सम्पन्न देश है, किन्तु उसके निवासी निर्धन हैं ?

5. Answer in 'Yes' or 'No'.
केवल 'हाँ' या 'न' में उत्तर दीजिये ।

(i) Our Economy is richer than that of U. S. A.
हमारी अर्थव्यवस्था अमेरिका की अर्थव्यवस्था से भी धनाढ्य है ।

(ii) Rustow propagated the Laisses faire Theory.
रस्टोव ने मुक्त व्यापार व आर्थिक स्वातन्त्र्य का सिद्धान्त प्रतिपादित किया था ।

(iii) Preponderance on Agriculture is a symptom of developed economy.
कृषि पर अवलम्बन विकसित अर्थ व्यवस्था का लक्षण है ।

(iv) We do not have economic inequalities ?
हमारे यहाँ आर्थिक असमानतायें नहीं हैं ।

(v) We are industrially advanced.
हम औद्योगिक दृष्टिकोण से आगे हैं ।

(vi) India has no problems in the field of Agriculture.
कृषि के क्षेत्र में भारत के सम्मुख कोई समस्या नहीं है ।

6. Complete the following :—

(i) Some basic problems of under-developed countries are (1).......... (2).......... (3).......... (4)..........

अध्याय ६

भावनात्मक एकता एवं राष्ट्रीय ऐक्य की समस्या

(Problem of emotional integration and National Unity : A Study of the devise and harmonising forces in Contemporary Indian Society)

भारत में राष्ट्रीय ऐक्य की समस्या केवल एक तुरन्त हल हो जाने वाली समस्या नहीं, किन्तु एक पेचीदी समस्या है। भारत के इतिहास, भूगोल और जातीय, भाषीय एवं सांस्कृतिक धरोहरों ने देश में आदतों, रीतिरिवाजों, आचार विचारों और जीवन के अन्य अंगों में विविधतायें उत्पन्न कर दी हैं। ये विविधतायें विभिन्न समुदायों और वर्गों में स्वयं उत्पन्न नहीं हुई हैं, किन्तु शनैः शनैः प्राप्त की गई हैं। इन्हीं विविधताओं के मध्य राष्ट्र के नागरिकों ने अपनी भोजन, सुरक्षा, पुनरुत्पादन आदि आवश्यकताओं के माध्यम से अपनी संस्कृति को ढाला है। इन आवश्यकताओं ने जो अधिकांशतः वातावरण से प्रभावित होती हैं, कुछ विशेष प्रकार के दृष्टिकोण और साधन प्रदान किये हैं, जिससे सामाजिक सम्बन्ध स्थापित हुए हैं।

इसमें दो मत नहीं हो सकते हैं कि भारत एक विशाल देश नहीं है। इसका क्षेत्रफल १२,६१,५४० वर्गमील है और १९६१ की गणना के अनुसार इसमें विभिन्न प्रकार के ४३.८ करोड़ व्यक्ति निवास करते हैं। जनसंख्या के इतने विविध समुदायों का एक सा होना, एक सा जीवन व्यतीत करना और एक सा आचार विचार रखना नितान्त कठिन होता है, तभी तो इन समुदायों की भक्ति (Loyalties) भी अलग होती है। भारत जैसे विशाल देश में इस प्रकार की स्थिति का विद्यमान होना स्वाभाविक है। श्री सीर्या ने भी इसी प्रकार की विचारधारा को स्वीकृति प्रकट करते हुए लिखा है कि "In a country as large and as varied in cultural elements as India to find groups or regional sub-cultures operating in their own frames of reference and resulting in inter-group tensions may be considered a natural phenomenon.[1]"

भारत एक विविधताओं का देश है जहाँ ८४५ प्रांतीय भाषायें और १ [illegible] क्षेत्रीय भाषायें बोली जाती हैं, जिसमें चार भाषीय समुदाय हैं। इस प्रकार भारत बैंकों भाषीय समुदायों में बंटा हुआ है, जिनके रूप को उपसंस्कृतियाँ हैं। डी० हास्की के अनुसार In India linguistic areas do not form a geographical patch work but are intertwined into a more closely mixed design of a carpet.

भारतवर्ष चूंकि एक विशाल देश है, जहां वनस्पति, मिट्टी व जलवायु की विविधतायें मौजूद हैं। यही कारण है कि भारतीयों के रहन सहन, और जीवन के अन्य तरीकों में प्रर्याप्त अन्तर है।

उपरोक्त सभी अन्तर, असमानतायें, और विविधतायें संस्कृतियों में भी अन्तर उत्पन्न कर राष्ट्रीय एक्य की समस्या को जटिल बनाये हुये हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी इन धारणाओं ने विघटन को प्रोत्साहन दिया। उस समय कुछ ऐसा लगा कि पुरानी शक्तियां नई ताकत के साथ उठ खड़ी हुई हैं और विविधतायें बढ़ने लगी हैं। भारत माता की जगह कई मातायें बंगाल माता, आन्ध्र माता आदि माताओं ने स्थान ले लिया है। इस प्रकार की प्रवृत्तियां राष्ट्र हित के अनुकूल नहीं मानी गई।

आर्थिक क्षेत्र में भारत भूमि का संतुलित विकास भी एक समस्या बना रहा है। कोई क्षेत्र खनिज सम्पत्ति से भरपूर है तो कोई क्षेत्र बिल्कुल पिछड़ा और अविकसित है। एक सा संतुलित विकास तभी सम्भव हो सकता है जबकि राष्ट्रीय एक्य हो और व्यक्ति राष्ट्र के रूप में सोचे।

ऐक्य का सूत्रपात

किन्तु इस प्रकार की विविधताओं के बीच एक ऐसी एकता का सूत्र भी है जो भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक खिंचा हुआ है। भौगोलिक दृष्टिकोण से भारत की उत्तर में हिमालय और उसकी श्रेणियां अन्य राष्ट्रों से पृथक करती हैं, दक्षिण में स्थित समुद्र उसे एक इकाई का रूप प्रदान करते हैं। इस अलगाव का सीधा प्रभाव यहां की संस्कृति पर पड़ा। इस प्रकार की भौगोलिक स्थिति ने एक ऐसी संस्कृति को जन्म दिया जिसने सर्व साधारण को सामान्य रूप से एकता के सूत्र में बांध दिया। विदेशों से आये हुये विजेताओं और विदेशियों के सम्पर्क अपने मूल देश से हटे और वे यहीं की संस्कृति में हिल मिल गये और संस्कृति सागर की भांति विस्तृत एवं सब कुछ समा लेने वाली बन गई। इस प्रकार सांस्कृतिक समन्वय ने एक्य की भावना को सुदृढ़ कर भावात्मक एकता (Emotional Integration) की नींव डाली।

समस्त भारत में कृषि का मुख्य धन्धा भी एक्य की ओर इशारा करता है। उत्तर, पूर्व, पश्चिम, दक्षिण सभी दिशाओं में कृषि सामान्य रूप से होती है; और देश की नदियां उस एक्य को प्रमाणित करती हैं तभी तो प्रत्येक भारतवासी उसी परम्परागत एकता के वशीभूत होकर नित्य प्रति

"गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु॥"

के मंत्र के साथ स्नान कर देश की एकता का उद्घोष करता है।

भारत के चारों कोनों पर स्थित—बद्रिकाश्रम, जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम्, एवं द्वारकापुरी—चारो मन्दिर पर भारत की भावात्मक एकता के द्योतक हैं। नीचे लिखे उदाहरण में भी इसी एकता के दर्शन होते हैं:—

"नारायणं बदर्याश्चे नैमिशे हरिम व्ययम्
शालग्रामं हरि चेत्रे अयोध्याया रघुत्तमम् ।"

जन जन के कण्ठ पर समाया हुआ 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' और इकबाल द्वारा गाया हुआ 'सारा जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा। हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलिस्तां हमारा।" गीत आज भी उसी भावना से ओत प्रोत है, जिस भावना से वह शताब्दियों पूर्व था।

ऐतिहासिक और राजनैतिक दृष्टिकोण से हिन्दू, एव मुसलमान राजाओं ने क्षेत्रीय दृष्टि से एक मान कर एक सी शासन व्यवस्था का भी सूत्र पात किया। अशोक, समुद्रगुप्त, अकबर आदि के नाम आज भी सम्मान पूर्वक लिये जाते हैं। यह सभी प्रयत्न हमारी भावात्मक एकता के ही द्योतक थे।

हिन्दू सन्तों—सूर, तुलसी, मीरा एवं मुस्लिम सन्तों—कबीर, रहीम, रसखान एवं अन्य सूफी कवियों ने भी अपनी रचनाओं में भारत को एक मान भावात्मक एकता का मंत्र फूंका था।

ब्रिटिश कालीन भारत मे यद्यपि 'फूट डालो राज्य करो' नीति का बोलबाला था, तथापि राष्ट्रवाद की लहर उठी और सारे राष्ट्र को एक मान कर राष्ट्रीय आन्दोलन चल निकला। अंग्रेजों ने भी प्रशासनिक दृष्टिकोण से भारत को एक इकाई मानकर एक से ही विधान की रचना की।

अंग्रेजी भाषा के बलवती बन जाने पर व्यक्तियों का झुकाव संस्कृतीकरण (Sanskritization) की ओर गया। भारतीय राष्ट्रवाद पर संस्कृत भाषा का प्रभाव बढ़ा और राष्ट्र-एक्य के तत्वों में एक नई शृंखला दिखलाई पड़ी।

भारतीय जनता के भोजन, पहनावे और उत्सवों में आज भी एक्य है। उत्तरी भारत की जनता प्राय: वे ही त्यौहार थोड़े बहुत अन्तर से मनाती है जो दक्षिण में मनाये जाते हैं। भारतीय संविधान में लिखित अधिकार, कर्त्तव्य, निर्देशक तत्व भावात्मक एकता के जीते जागते प्रतीक हैं। भारतीयों के वस्त्र, भोजन और अन्य धार्मिक क्रियाओं द्वारा एक संस्कृति का जन्म होता है, जो एक्य के दृष्टिकोण को जन्म देती है और सामान्य व्यवहार की आचार संहिता बनाती है। विधान के

अंतर्गत कुछ ऐसी धाराओं का भी उल्लेख है जिनसे विघटन कम हुआ है Pattern of Indian culture में लिखा है "The law of land makes no distinction between castes in the matter of economic and social spheres of the citizens activities, the forces of disunity and differences are hindered to a great extent. But in reality castes and classes do operate in the country and are therefore to be considered as forces that are counteracting the fissiparous forces may be fruitfully considered."

भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य संस्कृति में एक आधारभूत अन्तर है। डाक्टर Gohen ने लिखा है "This is the interpretation by western and Indian scholars that India is, in contrast to the west, society based on spiritual values. The material values of the west are and to be essentially foreign to the genius of Indian Society." निःसन्देह भारतीय मूल्य भौतिक नहीं आध्यात्मिक हैं और विश्व में शायद ही कोई ऐसा देश हो जहाँ की जनता के दैनिक जीवन मे धर्म इतना महत्वपूर्ण योग देता हो। धर्म का सम्बन्ध केवल जन्म, मृत्यु, विवाह तथा सामाजिक भाव से ही नही है, अपितु हमारे खाने, पीने,एवं व्यवहार आदि को भी प्रभावित करता है। भारत मे धर्म बौद्धिक विश्वासों का समुदाय मात्र नही है किन्तु 'दर्शन', 'अनुभव' और नैतिकताओ की मिश्रित आचार संहिता बन गया है। भारत में जिस धर्म का व्यवहार होता है वह एक कोने से दूसरे कोने तक फैला हुआ है। धार्मिक विचार केवल विद्वानो की बपौती नहीं अपितु जन साधारण की वस्तु है। किसी भी भारतीय कृषक से आप पूछिये 'परमात्मा', 'कर्म', 'माया', 'मुक्ति' आदि क्या हैं ? उसके स्वरो से कुछ ऐसा लगेगा कि वह इन शब्दो से परिचित है और उसने अपने भविष्य को इन्हीं विचार-धाराओं से बाँध रक्खा है। इस प्रकार Risley ने बतलाया है कि 'There is an inner Cohension among the Hindu from the Himalayas to cape comorin.

Hindu new life में लिखा है 'The clash of cults and the contact of cultures do not as a rule, result in the complete domination of the one big by the other in India. In all such contacts, the emotional attitudes attached to the old forms are transferred to the new which is fitted in to the background of the old.

इस प्रकार भावात्मक एकता ने ही राष्ट्र को विघटित होने से सदैव बचाया है। द्वैत (Pluralism) एवं मतभेदों की सहिष्णुता अपनी संस्कृति की प्रकार

[illegible] पुकारते है, सभी तो व्यक्ति राष्ट्रीय एकता में ओत प्रोत हो एक हो [illegible] है और इस सांस्कृतिक धरोहर का तार तम्य चलता चला जाता है।

इन्ही सांस्कृतिक धरोहरों के मंथन के बाद भारत में कुछ लक्ष्य निश्चि[illegible] किये गये है और समाज को (१) जनतन्त्र (२) धर्म निरपेक्ष एवं (३) समा[illegible] वाद के उद्देश्यो से संचालित कर 'तारतम्य' के प्रयत्न हुये हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रत्येक विचारक भारत में राष्ट्रीय ऐक्य [illegible] समस्या के चिन्तन को लेकर चल पड़ा। इसका मतलब यह नहीं है कि राष्ट्र विघ[illegible] विरोधियों के प्रवेश के लिये खुला द्वार था, किन्तु ऐसा होता है कि किसी संक[illegible] की अनुपस्थिति में राष्ट्र सामान्य हालतों में ऐक्य के लक्ष्य से हटा कर संकुचि[illegible] भक्तियों (Narrow loyalties) की बात सोचना शुरू कर देता है? ऐसा क्यों होता है एक-अलग प्रश्न है।

कतिपय वर्षों पूर्व राजनैतिक आन्दोलन के समय एक यह चर्चा चली कि भारत एक राष्ट्र नहीं है अपितु यह दो राष्ट्रों से मिला देश है। आज की हालतों मे भी राष्ट्र मे क्षेत्रीयता, संकुचित प्रान्तीयता, भाषा विवादो, जातीय भावनाओं, वर्ग भेदों के किले बने हुये हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् किस प्रकार दो सम्प्रदायों में तनाव बढ़ा और राष्ट्र में अपार जन संहार हुआ। १९६२ में हुये राष्ट्र-चुनावों में कितने भयंकर तत्वों का उभार हुआ।

किन्तु चीन और पाकिस्तानी आक्रमण के समय राष्ट्र अपनी संकुचित भक्तियों से हट कर एक होकर खड़ा हो गया, यह भावात्मक एकता के ही फलस्वरूप था, किन्तु सामान्य और शान्ति समयों में यह एकता विघटित होती दिखाई देने लगती है। यहां हम विघटन सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन कर कुछ वास्तविक हल निकाल सकें तो अच्छा होगा।

समस्या और उसके विभिन्न प्रतिरूप—(१) राष्ट्र मे एकता सामान्य हालतो मे प्रायः कम होती दिखाई पड़ती है। भारत एक विशाल देश है और इसकी विभिन्नतायें एक नहीं अनेक है। व्यक्तियों का सामाजिक व्यवहार कुछ [illegible] लेकर सामने आता है। भाषा, लिंग, जाति, धर्म आदि के आधार पर जो नये क्षेत्र बने है, उन्होंने कुछ नई समस्याओं को जन्म दिया। नई क्षेत्रीय भक्तियां (Regional loyalties) बनी है, जिन्होंने संकुचित भक्ति को प्रोत्साहन दे राष्ट्रवाद में बाधा [illegible] ने दीर्घ में एक उदाहरण में लिखा है कि The regional affiliations people on linguistic basis that preceded and followed

the Reorganisation of states which reached its climax in several sta like Bengal, Assam, Maharastra, Punjab are instances of such aggerated forces of dissension.

(२) जातिपांति एवं विश्वासों, जो देश में बहुतायत से है के आधार पर स चित क्षेत्र बनाने की मांग पनपी है आज की इन परिस्थितियों में छोटे छोटे प्रा क्षेत्र या टुकड़े व आत्म निर्भर नहीं बन पाते हैं और एक प्रकार से केन्द्र पर बोझ रहते है। केन्द्र अपना उत्तरदायित्व समझ कर उसे निभाने का ही प्रयत्न करता है

(३) कई बार कुछ प्रान्तीय सरकारें भी किसी विशेष वर्ग या जाति को व विशेष लाभ पहुंचा देती हैं, जिसका परिणाम होता है नई समस्याओं का जन्म। उसी को स्पष्ट करते हुये Karve महोदय ने लिखा है कि 'Even the action of seve State governments towards effecting a favoured deal to certain cas and the reaction of the unfavoured castes in mobilizing and streng ening group loyalties against the favoured caste also point towa creating problems that act as impediments to the development of concept of a single nation among the people of India' इनका परिण आगे चल कर किलेबन्दी करता है और राष्ट्रीय हित में बाधक होता है।

(४) 'स्वदेश-भक्ति' आज विभाजित होकर नई समस्या को जन्म दे है। देश प्रेम की परिभाषायें बदल पड़ी हैं। देश-प्रेम आज अपनी ही क्षेत्रीय मा संस्कृति, जाति, एवं धर्म तक सीमित हो गया है। भारत माता के गीतों की ज कन्नड माता, आंध्र माता और बिहारी देवी के गीत गाये जाने लगे हैं।

(५) विचार साम्य की समस्या एक अन्य समस्या है। राष्ट्रीय पैमाने पर विच करने की भावना में कमी आई है और प्रान्तीयता, जातीयता और धर्म को प्रोत्सा मिला है। समाचार पत्रों में प्रकाशित एक समाचार के उपसंहार में पढ़ने को मि है कि 'A river that flows through two or more states, but also betwe two ordinary individuals, who may happen to discuss it in a roadsi cafe The students' union Elections in school, and colleges are al contested on caste and religion basis'.

(६) स्थानीय और राष्ट्रीय भक्तियाँ (Local & National loyaltie में समन्वय स्थापित कर एक स्वस्थ दिशा में ढालने की समस्या एक विकट समस है। भारत जैसे विशाल राष्ट्र में प्रांतों की अवहेलना करना भी उचित नहीं होगा यह भी न्याय संगत प्रतीत नहीं होता है कि स्थानीय भक्तियों को इतनी छूट दे जाये कि केन्द्र पंगु हो जाये।

आधार शिलायें है, तभी तो व्यक्ति राष्ट्रीय एकता में ओत प्रोत हो एक होकर निकलते हैं, और इस सांस्कृतिक धरोहर का तार तम्य चलता चला जाता है।

इन्हीं सांस्कृतिक धरोहरों के मंथन के बाद भारत में कुछ लक्ष्य निश्चित किये गये हैं और समाज को (१) जनतंत्र (२) धर्म निरपेक्ष एवं (३) समाजवाद के उद्देश्यो से संचालित कर 'तारतम्य' के प्रयत्न हुये हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रत्येक विचारक भारत में राष्ट्रीय एक्य की समस्या के चिन्तन को लेकर चल पड़ा। इसका मतलब यह नहीं है कि राष्ट्र विदेशी विजेताओं के प्रवेश के लिये खुला द्वार था, किन्तु ऐसा होता है कि किसी संकट की अनुपस्थिति में राष्ट्र सामान्य हालतों में एक्य के लक्ष्य से हटा कर संकुचित भक्तियों (Narrow loyalties) की बात सोचना शुरू कर देता है? ऐसा क्यों होता है एक-अलग प्रश्न है।

कतिपय वर्षों पूर्व राजनैतिक आन्दोलन के समय एक यह चर्चा चली कि भारत एक राष्ट्र नहीं है अपितु यह दो राष्ट्रों से मिला देश है। आज भी हालतों में भी राष्ट्र में क्षेत्रीयता, संकुचित प्रान्तीयता, भाषा विवादों, जातीय भावनाओं, वर्ग भेदों के किले बने हुये हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् किस प्रकार दो सम्प्रदायों में तनाव बढ़ा और राष्ट्र में अपार जन संहार हुआ। १९६२ में हुये राष्ट्र-चुनावों में कितने भयंकर तत्वों का उभार हुआ।

किन्तु चीन और पाकिस्तानी आक्रमण के समय राष्ट्र अपनी संकुचित भक्तियों से हट कर एक होकर खड़ा हो गया, यह भावात्मक एकता के ही फलस्वरूप था, किन्तु सामान्य और शान्ति समयों में यह एकता विघटित होती दिखलाई देने लगती है। यहां हम विघटन सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन कर कुछ वास्तविक हल निकाल सकें तो अच्छा होगा।

समस्या और उसके विभिन्न प्रतिरूप—(१) राष्ट्र में एकता सामान्य हालतों में प्रायः भग होती दिखलाई पड़ती है। भारत एक विशाल देश है और इसकी विविधतायें एक नहीं अनेक हैं। व्यक्तियों का सामाजिक व्यवहार कुछ विलक्षणतायें लेकर सामने आया है। भाषा, लिंग, जाति, धर्म आदि के आधार पर जो नये क्षेत्र बने हैं, उन्होंने कुछ नई समस्याओं को जन्म दिया। नई क्षेत्रीय भक्तियां (Regional loyalties) पनपी हैं, जिन्होंने संकुचित भक्ति को प्रोत्साहन दे राष्ट्र-एकता में बाधा पहुँचाई है। श्री धीर्या ने एक उदाहरण में लिखा है कि The regional affilistions of the Indian people on linguistic basis that preceded and followed

the Reorganisation of states which reached its climax in several states like Bengal, Assam, Maharastra, Punjab are instances of such exaggerated forces of dissension.

(२) जातिपांति एवं विश्वासो, जो देश मे बहुतायत से हैं के आधार पर संकुचित क्षेत्र बनाने की मांग पनपी है आज की इन परिस्थितियों मे छोटे छोटे प्रान्त, क्षेत्र या टुकड़े व आत्म निर्भर नहीं बन पाते हैं और एक प्रकार से केन्द्र पर बोझ बने रहते हैं। केन्द्र अपना उत्तरदायित्व समझ कर उसे निभाने का ही प्रयत्न करता है।

(३) कई बार कुछ प्रान्तीय सरकारें भी किसी विशेष वर्ग या जाति को कोई विशेष लाभ पहुंचा देती हैं, जिसका परिणाम होता है नई समस्याओं का जन्म। उसी तथ्य को स्पष्ट करते हुये Karve महोदय ने लिखा है कि 'Even the action of several State governments towards effecting a favoured deal to certain castes and the reaction of the unfavoured castes in mobilizing and strengthening group loyalties against the favoured caste also point toward creating problems that act as impediments to the development of a concept of a single nation among the people of India' इनका परिणाम आगे चल कर किलेबन्दी करता है और राष्ट्रीय हित मे बाधक होता है।

(४) 'स्वदेश-भक्ति' आज विभाजित होकर नई समस्या को जन्म दे रही है। देश प्रेम की परिभाषायें बदल पड़ी हैं। देश-प्रेम आज अपनी ही क्षेत्रीय भाषा, संस्कृति, जाति, एवं धर्म तक सीमित हो गया है। भारत माता के गीतों की जगह कन्नड़ माता, आंध्र माता और बिहारी देवी के गीत गाये जाने लगे हैं।

(५) विचार साम्य की समस्या एक अन्य समस्या है। राष्ट्रीय पैमाने पर विचार करने की भावना में कमी आई है और प्रान्तीयता, जातीयता और धर्म को प्रोत्साहन मिला है। समाचार पत्रों में प्रकाशित एक समाचार के उपसंहार मे पढ़ने को मिला है कि 'A river that flows through two or more states, but also between two ordinary individuals, who may happen to discuss it in a roadside cafe The students' union Elections in school, and colleges are also contested on caste and religion basis'.

(६) स्थानीय और राष्ट्रीय भक्तियां (Local & National loyalties) में समन्वय स्थापित कर एक स्वस्थ दिशा में ढालने की समस्या एक विकट समस्या है। भारत जैसे विशाल राष्ट्र में प्रांतों की अवहेलना करना भी उचित नहीं होगा और यह भी न्याय संगत प्रतीत नहीं होता है कि स्थानीय भक्तियों को इतनी छूट दे दी जाये कि केन्द्र पंगु हो जाये।

में बाधा पहुंचाकर प्रतिद्वन्दिता को जन्म देती हैं और राष्ट्रीय एक्य का विघटन होता है। अतः असमानताओं को दूर करने की समस्या भी समान रूप से हल करनी है।

भावात्मक एकता की सुदृढ़ता के विषय में हमें किसी प्रकार की भयानक धाशंका की आवश्यकता नहीं है। भावात्मक एक्य की समस्या का एक मात्र उत्तर भारतीय समकालीन सामाजिक संस्थाओं के मनो-सांस्कृतिक विश्लेषण पर आधारित है। भावात्मक एक्य की सुदृढ़ता का तारतम्य प्राचीन काल से चलता चला आ रहा है। वैदिक साहित्य, पुरातन सांस्कृतिक समन्वय, भक्ति आंदोलन एवं राष्ट्रीय आंदोलन आदि ने इसी एक्य का लक्ष्य रखा और एकता के सूत्र को टूटने से बचाया।

भारतीय संविधान में वर्णित धर्म निरपेक्षता, वर्ग हीन समाज, कमज़ोर पिछड़ी व अनुसूचित जातियों के लिए विशेष अधिकार, समाज और अर्थ में फैली विषमताओं को हल कर उसे समता और एक्य की ओर ले जाने का प्रयत्न है। राष्ट्रीय आयोजन का सूत्रपात कम या अधिक मात्रा में आर्थिक विकास के लाभों को जन साधारण तक पहुँचा कर उन्हें ऊपर उठाने और उन्नति के अवसरों को प्रदान करने के लिये किया गया है। राष्ट्रव्यापी इन पचवर्षीय योजनाओं ने स्थिर, जटिलऔर परम्परागत सामाजिक व्यवस्था को गति दी है। इन योजनाओं से सामाजिक और आर्थिक गतिशीलता मिलेगी, जिससे राष्ट्र में फैली असमानतायें नष्ट होंगी और सामान्य लाभों का उचित बँटवारा होकर राष्ट्रीय एक्य की भावना दृढ़ होगी। आयोजन एकांगी न होकर बहुमुखी, एक क्षेत्रीय न होकर राष्ट्र व्यापी होता है, जिसमें कमज़ोर वर्गों तथा अविकसित क्षेत्रों का विशेष ध्यान रक्खा जाता है।

बड़े पैमाने पर स्थापित उद्योग रोजगार के साथ साथ राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि करते हैं। औद्योगिकरण एवं शहरीकरण ने एकीकरण के आधारों को विस्तृत किया है। औद्योगीकरण के पक्ष का समर्थन करते हुए श्री घीर्या ने लिखा है—"Industrialization is from this point of view a process of impersonal human and mechanical organisation which cuts across the traditional barriers of social stratification and therefore is to be considered as a force of communality, and brings about mobility of the people socially and vocationally. When the products of industrialization both in terms of quantity and quality have a tendency to level up the disparities among the members of society who use them."

धर्म निरपेक्ष प्रवृत्तियाँ (Secular Tedencies) की सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में निरन्तर वृद्धि, विज्ञान और तकनीकी शिक्षा की ओर प्रवृत्ति, भौतिक वाद में

बढ़ता हुआ विज्ञान, बढ़ते हुये जीवन स्तर की कल्पना और उसे प्राप्त करने के प्रयत्न, विशिष्टीकरण एवं प्रमापीकरण की शक्तियाँ, जिन्होंने सामाजिक और आर्थिक जीवन में पारस्परिक निर्भरता की वृद्धि की है, यातायात व संदेश वाहन के साधनों का विस्तृत विकास आदि सभी राष्ट्रीय एकता की दिशा में किये गये आवश्यक प्रयत्न हैं, किन्तु इनकी सफलता तभी सम्भव है जब भावात्मक एकता के लिए जो आवश्यक है, एक ऐसी संस्कृति का सृजन किया जाये जो स्वस्थ, सजीव, प्रगतिशील और विकासोन्मुख हो। इन नई परिस्थितियों में संस्कृति के मूल आधारों में परिवर्तन आया है और एकता का परम्परागत सिद्धान्त जो कि समानताओं पर आधारित था, अब समानता की एक नयी आधुनिक विचार धारा में परिवर्तित हो रहा है, जो कि पूर्व मत भेदों की परिस्थितियों पर आधारित होता जा रहा है। भावनायें परम्परागत स्टेज से हटकर अब परिवर्तनीय स्टेज की ओर खिसक रही हैं, और अब वे परिवर्तनीय स्टेज को लिपाप्त कर आधुनिक विचार धारा तक ले जा रही है। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुये— Prof K. Ranga Swamy ने लिखा है कि These new problems are being examined in the context of the nation's progress from traditional to transitional to modern nationhood.

आज की बदलती परिस्थितियों में 'राष्ट्रवाद' और 'स्वदेश प्रेम' का समन्वय भावात्मक एकता के लिये 'केन्द्रित अन्तर्राष्ट्रवाद' से किया जाना चाहिये, क्योंकि आज कोई भी राष्ट्र अपना पृथक अस्तित्व बना कर बहुत समय तक जिन्दा नहीं रह सकता।

प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय विघटन तत्वों की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया गया था। स्वर्गीय लाल बहादुर शास्त्री का मत था कि देश में पृथकत्व की तथा साम्प्रदायिकता की भावना को फैलाने वाले तत्वों के सम्बन्ध में गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिये। उनका कहना था कि यद्यपि संविधान में इस विषय में स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि भारतीय संघ अखण्ड है, अथवा किसी व्यक्ति को ऐसा प्रचार करने से रोकने के सम्बन्ध में उसमें विशेष उल्लेख नहीं है कि भारत का कोई भाग उससे पृथक कर दिया जाये, किन्तु श्री शास्त्री ने यह अवश्य कहा था कि संघ की प्रतिष्ठा अथवा प्रचलित संस्थानों पर कोई आघात अथवा राजनीति में धर्म का समावेश कर ऐसा प्रयत्न करना संविधान की आत्मा के विरुद्ध है।

अशोक मेहता की अध्यक्षता में राष्ट्रीय एकीकरण तथा साम्प्रदायिकता से संबन्धित एक समिति ने भी देश के विभिन्न नेताओं, शिक्षा शास्त्रियों तथा प्रमुख नागरिकों के विचार संग्रह किये हैं। आचार्य कृपलानी का कथन है कि यदि देश में विघटन के तत्व प्रबल होते हैं तो इसके लिये राजनीतिज्ञ और शिक्षित वर्ग जिम्मेदार

हैं। उनके मतानुसार अल्पसंख्यकों के विशेषाधिकार छीन लिये जायें। राजकुमारी अमृतकौर के कथनानुसार दलीय पद्धति, भाषीय प्रदेशों के निर्माण ने भी देश में एकता के स्थान पर विभेद ही फैलाया है। डा० सी० पी० रामास्वामी की अध्यक्षता में संगठित राष्ट्रीय एकीकरण तथा क्षेत्रीयवाद सम्बन्धी समिति के सामने अनेक विचारकों ने यह मत प्रकट किया है कि देश में किसी को भी पृथकता की भावना फैलाने का अधिकार नहीं होना चाहिये। देश में साम्प्रदायिकता, जाति भेद, प्रदेश तथा भाषा से सम्बन्धित विचार तथा इन आधारों पर नवीन राज्यों की स्थापना के विचार राष्ट्र विरोधी प्रवृत्तियों को जन्म दे रहे हैं।

इस प्रकार एक्य की दिशा में जिन भावनाओं को निर्देशित किया जा रहा है, उन कार्य क्रमों को निम्नलिखित तीन प्रयत्नों में विभाजित किया जा सकता है:—

(१) वैधानिक प्रयत्न

(२) शिक्षा सम्बन्धी प्रयत्न

(३) सामाजिक एवं आर्थिक संस्थायें एवं समकालीन संस्थाओं द्वारा किये गये प्रयत्न

वैधानिक प्रयास—नागरिकों के मौलिक अधिकार मानव स्वतंत्रता के मापदण्ड और संरक्षक दोनों ही होते हैं, किन्तु व्यक्ति के साथ समष्टि (समाज) का भी महत्व होता है। संविधान के अनुच्छेद १५ के अनुसार राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूल, वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान अथवा इनमें किसी के आधार पर कोई विभेद न करेगा। इनमें से किसी के आधार पर कोई नागरिक दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों, मनोरंजन स्थानों में प्रवेश के अथवा पूर्ण अथवा आंशिक रूप में राज्यनिधि से पोषित अथवा साधारण जनता के उपयोग के लिये समर्पित कुओं, तालाबों, स्नान घाटों, सड़कों, तथा सार्वजनिक स्थानों के उपयोग के विषय में किसी भी निर्योग्यता, दायित्व, निबन्धन अथवा शर्त के आधीन न होगा।

अनुच्छेद १६ के अन्तर्गत राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में सब नागरिकों के लिए अवसर की समानता प्रदान की गई है। इस प्रकार के अनुच्छेदों के द्वारा साम्प्रदायिकता के भेद भाव ही नहीं वरन् स्थानीय भेदभाव अथवा स्त्री पुरुष के मध्य भेदभाव का अन्त कर दिया गया है। सुरक्षित सीटों की समाप्ति का भी संविधान में धीरे धीरे अन्त किये जाने का उल्लेख है। अनुच्छेद १७ से अस्पृश्यता के अन्त करने की घोषणा कर दी गई। अस्पृश्यता से

उत्पन्न किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध है एवं दण्डनीय है। देश में सामाजिक समता की स्थापना करने के लिये अनुच्छेद १८ के अन्तर्गत विधान है। स्वातंत्र्य एवं अन्य मूल अधिकारों की घोषणा राष्ट्रीय एकता की सुदृढ़ता की ओर उठाये गये कदम ही हैं। संस्कृति एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों का उल्लेख संविधान में कर के भावात्मक एकता की नींव को मजबूत करने का विशेष कार्यक्रम है।

इसके अतिरिक्त राज्य सरकारों के स्तर पर भी समय समय पर उचित कदम उठाने का प्रयास होता ही रहता है। आवश्यकता पड़ने पर केन्द्र विशेष निर्देशों के सहारे राज्यों को आदेश देते रहते हैं।

शिक्षा सम्बन्धी प्रयास—शिक्षा निस्सन्देह भावात्मक एकीकरण के लिये विशिष्ट यंत्र है। इस शिक्षा के सहारे उन्नति के समान अवसरों, समाज की अवरुद्ध जटिल परम्पराओं की समाप्ति कर जातीय, भाषीय, धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक भेदभावों को दूर किया जा सकता है।

अनिवार्य एवं उपयोगी सार्वजनिक शिक्षा एकीकरण की दिशा में ठोस कदम गिने जायेंगे। भारत का एक रूप (Homogeneous) कभी नहीं रहा है, अतः शिक्षा में एक तन्त्रात्मक प्रणाली की आवश्यकता है। साथ ही साथ अन्तः सांस्कृतिक शिक्षा के माध्यम की भी जरूरत होगी और इनके आधार सहिष्णुता और संस्कृतियों के प्रति सम्मान की भावना होगी शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में अध्यापक एवं विद्यार्थियों के विश्वासों, मतों में उन तत्वों को ध्यान देना है जो भारत में जनतंत्रात्मक तरीके से जीवन को व्यतीत करने के लिये प्रोत्साहित करें, साथ ही साथ संविधान में वर्णित आदर्शों तथा सामाजिक मूल्यों (Social Values) की प्राप्ति की दिशा में कदम उठायें। स्कूलों व कालेजों एक जाति के बाहर मानवीय सम्बन्धों के लिये शिक्षा का प्रयोग किया जाये। उपयुक्त शिक्षा प्रणाली के लिए जोर देते हुये श्री चौर्या ने लिखा है कि:

"The educational system should aim to prevent tendencies of Nativism and Revivalism among the pupils and the teachers so that working for national integration becomes a future oriented joyous adventure in the field of national cooperative living and not a mere reliving of the ancient heritage, however noble it may be."

प्राइमरी स्तर पर प्रत्येक बच्चे को भारतीय जनता के विविध वर्गों, रहन सहन तथा विशेषताओं से परिचित कराना स्वतन्त्रता प्राप्ति, पंचवर्षीय योजनाओं की

सफलता बतलाना और प्रत्येक शिशु में प्रत्येक के उत्तरदायित्व की भाव शिक्षा का प्रसार एवं कल्याण की भावना को जागृत किया जाना चाहिए

ऊँचे स्तर पर विभिन्न संस्कृतियों का विशद अध्ययन भावनात्मक. की दिशा में अनिवार्य कदम होना चाहिये। सामूहिक विचार गोष्ठियों, विचार एवं सेमीनारों का आयोजन एक के लिये नितान्त आवश्यक प्रतीत हैं Group planning, Group Action, Group evaluation भी उतने ही आ सिद्ध होंगे।

Harmonising forces in contemporary Indian society
(समकालीन समाज के संदर्भ में राष्ट्रीय एक्य)

वैधानिक प्रयत्नों के अतिरिक्त देश में सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में एक्य की समस्या को सुलझाने के प्रयत्न प्रारम्भ किये गये हैं। सामाजिक राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक संस्थाओं और समितियों ने अपना योगदान प्र किया है।

(१) भारत सेवक समाज—भारत सेवक समाज इसी प्रकार का एक है, जो समाज के विभिन्न क्षेत्रों में सहायक होकर राष्ट्रीय एक्य की दिशा में बढ़ रहा है। यह समाज बिना किसी भेद भाव के राष्ट्र में अपनी शाखाओं और शाखाओं के द्वारा सामाजिक कल्याण (Social welfare) के कार्यों में सल स्कूलों, कालेजों, रैन बसेरों, सामूहिक रसोइ, स्वयं सेवकों के प्रशिक्षण, तथा का आयोजन एवं एकीकरण को प्राथमिकता प्रदान करता है। सांस्कृतिक कार्यक्र द्वारा भी भावनात्मक एक्य का प्रचार कर राष्ट्रीय एक्य में वृद्धि करता है।

(२) भूदान एवं सर्वोदय—१९५१ से प्रारम्भ किये गये ये संगठन शान्ति लाकर समानता के आधार पर सामाजिक भाव तथा सर्व हित की स्थाप संलग्न है। इसी आन्दोलन के कारण आज देश में उन समस्याओं का हल हो रहा है, जिनके हल में बहुत सी कठिनाइयाँ हैं। आचार्य विनोबा भावे, प्रकाश नारायण इन आन्दोलनों में लगे हैं। भूदान, जीवनदान, गृहदान, श्र सम्पत्तिदान, ग्रामदान, साधन दान जैसे कार्यक्रम इस एकत्व की ओर तेज पर्याप्त सहायक सिद्ध हो रहे हैं।

(३) आर्य समाज—आर्य समाज बहुत लम्बे समय से एक्य की दि किया जाने वाला महान् प्रयास है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दू जाति विघटित होने से ही नहीं बचाया है, अपितु अन्य लोगों को इसमें शामिल

एकीकरण से राष्ट्र का भला किया है। इसने सामाजिक व धार्मिक कार्यक्रमों के द्वारा 'मेल' की भावना का प्रचार किया है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में आज समान रूप से आर्य समाज के कामों की सराहना की जा रही है।

[४] सहकारिता एवं सामुदायिक विकास योजनायें—स्वतंत्रता के अरुणोदय से ही 'समूह' को समान रूप से उठाकर 'One for all and all for one' की भावना का लक्ष्य रक्खा गया है। सहकारी समितियाँ एवं बड़े पैमाने पर सामुदायिक विकास योजनाओं ने ऐक्य के लिए पृष्ठ भूमि तैयार की है। 'सहकारी कृषि' एक नये प्रकार के वातावरण को जन्म दे रही है। सामुदायिक विकास योजनाओं के अन्तर्गत Youth club, Farmers forum, Mahila Mandal जैसी ऐच्छिक संस्थाओं ने भी अपना योगदान दे एकत्व को प्रोत्साहन दिया है।

(५) अखिल भारतीय महिला कौंसिल—जैसी संस्थायें राष्ट्रीय पैमाने पर अपने कार्यक्रम चलाकर ऐक्य की भावना के विकसित होने में मदद करती हैं। देश के सभी प्रान्तों में इन संस्थाओं का जाल बिछा है और अपने समन्वित कार्यक्रमों के द्वारा भावनात्मक एकीकरण का मंत्र फूंकती है। महिला परिषदें, महिला मंडल महिला समितियाँ बिना किसी भेद भाव के एक दूसरे से मिलने का अवसर प्रदान करते हैं, जिनसे भावनात्मक एकीकरण और राष्ट्रीय एकता को बल मिलता है।

(६) सांस्कृतिक कार्यक्रम—ललित कला अकादमी, संगीत नाटक अकादमी, नेशनल प्रोग्राम आफ म्यूजिक, रविन्द्र मंच, ओपेन एयर थियेटर, रेडियो संगीत सम्मेलन, नेशनल प्रोग्राम आफ आपेरा (Operas) अपने कार्यक्रम चलाते हैं, जो राष्ट्रीय स्तर तक फैले रहते हैं। 'आकाशवाणी' का वाद्यवृन्द (National orchestra) देश के सभी भागों तथा अंगों का प्रतिनिधित्व करता है। (National Gallery of modern Art) भी देश का प्रतिनिधित्व कर एकीकरण के तत्वों को मजबूत करता है।

(७) साहित्य का योगदान—एकीकरण में साहित्य की शक्ति 'आत्म बल' से भी तीव्र मानी गई है। साहित्य और समाचार पत्रों द्वारा ऐक्य का महामन्त्र फूंका जाता है। पिछले चीन और पाकिस्तानी आक्रमण के समय राष्ट्र अपने विभिन्न मतभेदों, समस्याओं को दूर फेंक कर कन्धे से कन्धा मिलाकर एक होकर आ खड़ा हुआ था।

विभिन्न पुस्तकों के प्रकाशन के साथ साहित्य के क्षेत्र में साहित्य अकादमी, राष्ट्रीय संगठन है, जो बिना किसी जाति, भाषा, लिंग, के साहित्य का सृजन

और सचय करती हैं । राष्ट्रीय स्तर पर 'साहित्य प्रसारण' की योजना भी एक योजना है, जो सभी भाषाओं में प्रसारण करती हैं ।

National Book Trust जिसकी स्थापना १९५७ में हुई थी, ने राष्ट्रीय साहित्य के प्रकाशन का भार लेकर उन्हें स्कूलों, कालेजों तथा पुस्तकालयों में पहुँचाने का कार्यक्रम अपनाया है ।

[८] अन्तर्प्रान्तीय सांस्कृतिक समझ को प्रोत्साहन-(Promotion of Inter State cultural understanding Programms) के अन्तर्गत कलाकारों, सांस्कृतिक दलों का आदान प्रदान, खुले मंच के सहारे देशों में एक्य स्थापित किया जाना अपना निजी महत्व रखता है । Indian Council of Cultural Relation विदेशों से भी अपने सम्बन्ध रखती है

[९] सुरक्षा एवं सेवायें तथा अन्य सुरक्षात्मक संगठन:—

भारतीय सेनायें-जल, थल, नभ, एकीकरण की दिशा में किये गये प्रयत्न जीते जागते नमूने हैं, इन्हीं के अन्तर्गत चलने वाले अन्य संगठन—Territorial Army, National Cadet Corps, अपना विशिष्ट योगदान करते हैं । इन संगठनों ने राष्ट्रीय एक्य को बल दिया है और एकीकरण की भावना को प्रबल कर 'एक देश' की भावना को ऊंचा उठाया है ।

T.A. संगठन में आर्टीलरी, इन्फेन्टरी, इन्जीनियरी, सिग्नल, मेडिकल, आदि Wing हैं और N.C.C. में इन शाखाओं के अलावा Armoured Corps, Air तथा Naval Wings भी हैं । सभी कैडेट प्रान्तीयता को भूल कर एक राष्ट्र के विषय में सोचते और उसके लिये काम करते हैं ।

(१०) युवक-कार्यक्रम:—युवक कार्यक्रम के अन्तर्गत Inter-university youth festival, Inter collegiate festivals, Youth Hostels जैसी संस्थायें राष्ट्र के युवकों को परस्पर मिलने और एक दूसरे को समझने का अवसर प्रदान करते हैं । Campus works Project के पूरे होने पर एक्य के कार्यक्रमों में और भी सहायता मिलती है ।

(११) खेल कूद एवं संगठन—राष्ट्रीय एक्य की सुदृढ़ता के लिये All India Council of Sports एक अनूठी संस्था है । इसी संस्था के अन्तर्गत प्रान्तों की Sports Councils भी काम करती हैं । ये संस्थायें बिना भेद भाव के खेलकूदों द्वारा राष्ट्रीय एक्य उत्पन्न करती हैं ।

1961 में सचालित Patiala में एक The National Institute of Sports की स्थापना, तथा 1957 में Laxmi Bai College of Physical Education Gwalior दोनों ही एकीकरण की दिशा में उठाये गये महत्वपूर्ण कदम हैं ।

इस प्रकार समकालीन सामाजिक संस्थायें आज विघटन के तत्वों को समूल नष्ट करने में संलग्न हैं, उनका ध्येय है कि राष्ट्र सर्वोपरि है और भारत में रहने वाले सभी व्यक्ति भावनात्मक दृष्टिकोण से भी एक ही हैं।

योग्यता-प्रश्न

1. Topics for Essay (निबन्ध के लिये विषय)

   (a) Write an essay on Problem of emotional integration in India.

   भारत में भावनात्मक एकय की समस्या पर निबन्ध तैयार कीजिये।

   (b) Attempt any essay on 'Efforts made by the Govenment in solving the problem of Emotional integration.'

   "भावनात्मक समस्या के हल के लिये सरकार द्वारा किये गये प्रयत्नों" पर एक निबन्ध प्रस्तुत कीजिए।

   (c) Write an Essay on the role of contempoary society in the field of Emotional Integration.

   'भावनात्मक एकय के क्षेत्र में समकालीन समाज के योग' पर एक निबन्ध लिखिये।

2. Write short notes on:—संक्षिप्त टिप्पणियां दीजिये:—

   (a) India—its diversities. भारत और उसकी विविधतायें।

   (b) Unity amidst diversity. विविधताओं में एकय।

   (c) Cultural heritage. सांस्कृतिक धरोहर।

   (d) Local and National Loyalties. स्थानीय एवं राष्ट्रीय भक्तियाँ।

   (e) Indian Constitution and Integration.
   भारतीय संविधान और एकीकरण।

   (f) Contemporary societies and Integration.
   समकालीन समाज में एकीकरण

Objective Type of questions.

Answer in 'Yes' or 'No' 'हाँ' या 'ना' में उत्तर दीजिए :—

(a) There is no problem of emotional integration and National unity in India.
भारत में भावात्मक और राष्ट्रीय एकता जैसी कोई समस्या ही नहीं है ।

(b) India is a land of diversities.
भारत विविधताओं का देश है ।

(c) India is proud of her one language, one religion and one race.
भारत अपनी एक मात्र भाषा, धर्म एवं जाति पर अभिमान करता है ।

(d) Geography of India has also contributed towards unity.
भारतीय भूगोल ने भी एकय में योगदान ही दिया है ।

(e) The problem of disintegration and disunity in India is visible nowadays.
आजकल विघटन और पृथकता की समस्या भारत में दिखलाई पड़ने लगी है

(f) Contemporary Societies have helped in solving the problem of emotional integration and National unity.
समकालीन समाज ने भावनात्मक और राष्ट्रीय एकय की समस्या के हल में सहयोग दिया है ।

4. Give a brief account of the following (Not more than 20 lines)
संक्षिप्त विवरण दीजिये । (बीस पंक्तियों से अधिक न हो)

(a) Arya Samaj (आर्य समाज)

(b) Bharat Sevak Samaj (भारत सेवक समाज)

(c) Sarvoday (सर्वोदय)

(d) Youth Programm (युवक कार्यक्रम)

(e) N.C.C. (एन० सी० सी०)

अध्याय १०

भारतीय कलायें, वास्तु, मूर्ति एवं चित्र कला की प्रमुख विशेषतायें

(Salient features of Indian Art, Sculpture & Painting)

भारतीय संस्कृति की अन्य अमूल्य धरोहर यहाँ की कला के अवशेष हैं। कला की विभिन्न शाखाओं में अपूर्व प्रगति हुई है। विश्व की कला-कृतियों में प्राचीन भारत की कला-कृतियों को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। यहाँ की कला की विशेषता उसके विकास में एक अटूट क्रम होना है। कला की ये विभिन्न शाखाएं हमें साहित्य कला, वास्तु-कला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला तथा विज्ञान के रूप में मिलती हैं। यहाँ भारतीय कला का अवलोकन विभिन्न ऐतिहासिक काल के क्रमानुसार किया जावेगा।

साहित्य कला :—'साहित्य' रमणीय अर्थ को प्रतिपादित करने वाले रसात्मक वाक्य का सूचक है। इसका व्युत्पत्ति-परक अर्थ है "सहितस्य भाव साहित्य" अर्थात् जिसमें हित [कल्याण] का भाव हो, वही साहित्य होता है, इससे यह सिद्ध होता है कि साहित्य हितकारक होता है। प्रत्येक देश की उन्नति और अवनति वहाँ के साहित्य पर ही अवलंबित होती है। ज्ञान राशि का संचित कोष होने से साहित्य मन व मस्तिष्क का खाद्य होता है। किसी देश में जनता की जागृति के लिये, स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए, प्राप्त स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये और सुसम्मानित व सुखपूर्वक जीवनयापन के लिये साहित्य से बढ़कर अन्य कोई उपयोगी नहीं है। साहित्य से हमें स्फूर्ति मिलती है, कर्तव्य का ज्ञान होता है, समस्त भूमण्डल के देशों की विभिन्न विचारधाराओं को समझने तथा हमारे और मानव कल्याण के लिए जीवन में उन उपयोगी विचारों के अनुसार कार्य करने की प्रेरणा मिलती है।

साहित्य के इस प्रयोजन को दृष्टि में रखते हुए, भारत के मनीषी विचारकों और नेताओं ने भारतीय साहित्य की समुचित प्रगति व विकास की ओर ध्यान दिया इसी उद्देश्य से भारतीय विधान में चौदह भाषायें स्वीकृत की गईं, जो निम्नांकित हैं :—

भारतीय भाषायें—[१] संस्कृत [२] हिन्दी [३] तमिल [४] तेलुगु [५] कन्नड़ [६] मलयालम [७] गुजराती [८] मराठी [९] उत्कल [१०] बंगाली [११] असमीया [१२] पंजाबी [१३] कश्मीरी और [१४] उर्दू । प्रत्येक भाषा के यथोचित विकास के साथ ही भारत का विकास है।

विभिन्न भाषायें और साहित्य सृजन :—

संस्कृत :—सारे विश्व की प्राचीन और परिष्कृत तथा मानव सभ्यता और संस्कृति के निर्माण में सर्वाधिक योग देने वाली संस्कृत भाषा है। इसे अमर भाषा या देववाणी भी कहते हैं। संसार का सबसे प्राचीन ग्रन्थ "ऋग्वेद" इसी भाषा में उपलब्ध है। वेदों की रचना के पश्चात् इस साहित्य में ब्राह्मण ग्रन्थों (व्याख्या) आरण्यकों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत और पुराण आदि की रचना की गई। इसके पश्चात् काव्य, नाटक, कथा, आख्यायिका, स्मृति, तन्त्र आदि का निर्माण हुआ। व्यापकता की दृष्टि से संस्कृत साहित्य सर्वांगीण व परिपूर्ण है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चार पुरुषार्थों से ही मानव जीवन की परिधि परिपूर्ण होती है और इन्हीं चारों पुरुषार्थों का सम्यक् विवेचन, व्याख्या, विश्लेषण और रूप संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होता है। धार्मिक ग्रन्थों के साथ-साथ दार्शनिक ग्रन्थ कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' और वात्स्यायन मुनि का 'कामसूत्र' संसार प्रसिद्ध हैं। विज्ञान, ज्योतिष, वैद्यक, स्थापत्य, पशु-पक्षी जीवन से सम्बन्धित साहित्य की भी इसमें भरमार है। सांस्कृतिक दृष्टि से तो संस्कृत-साहित्य का विशेष गौरव है। भारतवासियों ने ही सभ्यता व संस्कृति का प्रसार विश्व में किया और वे 'जगद्गुरु' कहलाये। 'कृण्वन्तु विश्व मार्यं' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ही उनका आदर्श था। कला की दृष्टि से पद्य और गद्य के क्षेत्र में भी यह साहित्य अद्वितीय है। कालिदास 'शाकुन्तल' ने ही तो योरुपीय देशों के ध्यान को संस्कृत भारत की ओर आकर्षित किया था जिसमें महाकवि गेटे ने पृथ्वी व स्वर्ग को मिला हुआ देखा था। 'अमर कोष' तो विश्व में बेजोड़ है ही। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' जैसा गद्य काव्य भी आज तक संसार के किसी भी साहित्य में नहीं लिखा गया। गीति काव्यों में 'मेघदूत' का स्थान अग्रगण्य है। छन्द व अलंकारों तथा काव्य के भेदोपभेदों का इसमें सुन्दर निरूपण उपलब्ध होता है, परन्तु समय के परिवर्तन चक्र में संस्कृत भाषा मृतप्रायः भी हो गई। व्याकरण की क्लिष्टता ही इसका प्रधान कारण थी। परन्तु भारत की समस्त प्रांतीय भाषाओं को उन्नत बनाने के लिए संस्कृत साहित्य की अमर, अनन्त निधि की रक्षा करना अनिवार्य है।

हिन्दी :—हिन्दी वर्तमान भारत की सर्वसम्मत और सर्वाधिक व्याप्त राष्ट्र-भाषा है। यह भारत के मध्य देश की बोलियों की नदियों का समुद्र है। शौरसेनी

[illegible] मे विकसित इस भाषा ने विभाषाओं को भी अपने अन्तर्गत ली कर लिया और इसी समन्वय की प्रवृत्ति के कारण अंग्रेजों के भारत छोड़ने के समय राष्ट्र-भाषा बनने की अधिकारिणी हुई। हिन्दी-साहित्य के इतिहास को चार भागों में विभाजित किया जाता है (१) वीरगाथा काल, (२) भक्ति-काल, (३) रीति काल, (४) आधुनिक काल। वीरगाथा काल में देश की परिस्थिति के अनुसार साहित्य में भी तलवारों की झंकार सुनाई देती है। वीरों की प्रशंसा इसमें की गई। ऐतिहासिकता का निर्वाह कम और कल्पना का प्रयोग अधिक किया गया। चन्दवरदाई का 'पृथ्वीराज रासो' इस काल की प्रसिद्ध रचना है। भक्ति काल मे कवियों का ध्यान भक्ति की ओर गया। भक्तों की दो श्रेणियाँ हो गईं। (१) निर्गुण धारा, (२) सगुण धारा। निर्गुण धारा में भी प्रेमाश्रयी व ज्ञानाश्रयी दो शाखायें थीं। प्रेमाश्रयी शाखा में जायसी का 'पद्मावत' प्रसिद्ध है और ज्ञानाश्रयी में कबीर का 'बीजक'। सगुणधारा में भी दो शाखायें थीं (१) राम भक्ति शाखा, (२) कृष्ण भक्ति शाखा। राम भक्ति शाखा के प्रतिनिधि तुलसीदास थे जिन्होंने 'रामचरितमानस' की रचना की और कृष्णभक्ति शाखा में प्रधान सूरदास जिन्होंने सूर-सागर लिखा। 'रीतिकाल' में कवियों का ध्यान शृंगार, नायिका भेद तथा लक्षण ग्रन्थों की ओर गया। बिहारी रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। अब तक ब्रज तथा अवधी भाषा ही काव्य भाषायें थीं।

राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक प्रभाव :—आधुनिक हिन्दी साहित्य पर देश की राजनैतिक, सामाजिक, [illegible] दशा तथा नई शिक्षा का प्रभाव पड़ा है। यह [illegible] के लिये [illegible] के पश्चात् जागरण का काल था। [illegible] ने अनेक प्रकार के अत्याचार किये, परन्तु उन्होंने समग्र देश को एक [illegible] का प्रयत्न किया और देश में व्यवस्था व शान्ति उत्पन्न की। औरंगजेब की [illegible] नीति के कारण पंजाब, राजपूताना, महाराष्ट्र [illegible] के विद्रोह उठे और फ्रेंच, डच तथा अंग्रेजों ने कूटनीतिज्ञता, व शक्ति के बल पर धीरे-धीरे भारत के शासन सूत्र को अपने हाथ मे ले लिया। परन्तु नई [illegible] के [illegible] राष्ट्रीय भावना का स्फुरण और भारत के हिन्दू तथा मुसलमानों ने एक होकर सन् १८५७ ई० में विद्रोह किया, जिसको अंग्रेजों ने दबा दिया, परन्तु [illegible] स्वदेशी भावना प्रबल होने लगी। नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई और [illegible] को महात्मा गांधी जी के अहिंसक मार्ग पर चल कर की [illegible] के बड़े आक्रमण झेलकर भी कायम रहा था। धार्मिक [illegible] के [illegible] सामाजिक व्यवस्था को भंग-सा कर दिया [illegible] और कुरीतियों का प्रचलन था। अछूतों और स्त्रियों की बुरी

दशा था। ईसाई पादरियों ने अपना धर्म-प्रचार करना प्रारम्भ किया और भारतीय समाज से बहिष्कृत व्यक्तियों को उसमें शरण मिली। ऐसी दशा में स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द, राजा राममोहन राय आदि ने समाज में चेतना उत्पन्न की। इस प्रकार यह युग असन्तोष, विद्रोह व स्वतन्त्रता का युग था। चारों ओर वर्तमान के प्रति असन्तोष और स्वतन्त्रता की भावना दृष्टिगत होती थी। राजनैतिक सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में सदियों से बन्द भारतीय आत्मा उन सब बन्धनों को एक साथ तोड़ कर स्वतन्त्र होने को छटपटाने लगी।

भाषा व साहित्य पर प्रभाव :—साहित्य और भाषा में स्वतन्त्रता की यह प्रवृत्ति कार्य कर रही थी। साहित्य में पुराने काव्य नियमों, उपमानों, रूपकों तथा थोथे आदर्शों की अवहेलना की गई। अब साहित्यिकों को प्राचीन शृंगार, धर्म नीति आदि पसन्द नहीं थे। फलतः नवीन तथा राष्ट्रीय साहित्य का सर्जन हुआ। भाषा के क्षेत्र में भी ब्रज व अवधि के स्थान पर एक विशेष भाषा का अवतार, परिवर्द्धन, संस्कार और परिमार्जन हुआ। यह भाषा खड़ी बोली हिन्दी थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही नेताओं का ध्यान राष्ट्र भाषा की समस्या की ओर आकर्षित हुआ और यह भाषा हिन्दी राष्ट्र-भाषा स्वीकृत की गई।

हिन्दी गद्य :—हिन्दी गद्य का आधुनिक रूप अनेक विकास क्रियाओं का रूप है। सर्वप्रथम गद्य वार्त्ताओं और कथाओं में उपलब्ध होता है, परन्तु गद्य का उचित दर्शन मुंशी सदासुख के 'सुखसागर' में होता है। खुसरो, इंशाअल्ला खां, लल्लू लाल और सदल मिश्र ने भी गद्य के विकास में योग दिया। इस समय उर्दू मिश्रित गद्य का प्रचार पाठशालाओं में भी होने लगा था। राजा लक्ष्मण सिंह ने फारसी का बहिष्कार कर संस्कृत व ब्रज मिश्रित गद्य लिखे और शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने अपना 'इतिहास तिमिर नाशक' ग्रंथ वस्तुतः उर्दू ही में लिखा। भाषा के इस असंयतरूप को संयत करने का कार्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगी लेखकों ने किया। द्विवेदी काल में श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से खड़ी बोली की काट-छांट की और उसके स्वरूप को व्यवस्थित किया। नवीन काल में डा० श्यामसुन्दरदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गुलाबराय, प्रसाद, महादेवी आदि ने प्रशंसनीय सहयोग दिया।

काव्य :—हिन्दी के काव्यों में विश्व बन्धुत्व की भावना का प्राधान्य रहा। छायावाद, रहस्यवाद तथा प्रगतिवादी धाराओं का जन्म हुआ। पाश्चात्य साहित्य का पर्याप्त प्रभाव हिन्दी के काव्यों पर पड़ा। सामाजिक भावनाओं व नित्य प्रति की भौतिक आवश्यकताओं को जीवनाधार मानकर प्रगतिशील साहित्य की रचना

हुई। प्रिय प्रवास, साकेत, कामायनी प्रसिद्ध महाकाव्य हैं। खण्डकाव्य भी अनेक लिखे गये। अब तो 'प्रयोगवादी' कविता भी लिखी जा रही है जो 'तार सप्तक' प्रकाशित हुई है।

कहानी :—हिन्दी कहानी-साहित्य पर बंगला-साहित्य का प्रभाव पड़ा, क्योंकि अंग्रेज पहले बंगाल में आये थे। परन्तु संस्कृत की कथा सरित्सागर, सिंहासन बत्तीसी, बैताल पचविंशति, हितोपदेश तथा पंच-तंत्र जैसी उपदेश प्रधान कहानियाँ भी लेखकों के समक्ष थीं। प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद ने कहानी के भण्डार को बढ़ाया। प्रेमचन्द ने मौलिक कहानियों की रचना कर समाज के स्वरूप व कर्तव्य को स्थिर किया। इनकी कहानियों का संग्रह 'मानसरोवर' नाम से प्रसिद्ध है। प्रसाद ने भावुकता पूर्ण कहानियाँ लिखीं जिनका अन्त पाठक को झकझोर कर देता है। जैनेन्द्र कुमार, भगवती प्रसाद वाजपेयी, सियारामशरण, यशपाल, अश्क, हैमवती देवी, चन्द्रकिरण आदि कहानीकार भी साहित्य के इस अंश को पुष्ट कर रहे हैं।

उपन्यास :—यह युग उपन्यास, कहानी व नाटक का युग-सा है। प्रारम्भ में 'चन्द्रकान्ता' जैसा लोकप्रिय उपन्यास लिखा गया, जिसको पढ़ने के लिए लाखों भारतीयों ने हिन्दी सीखी। सन् १९२० ई० तक प्रेमचन्द जी का 'सेवा सदन' ही प्रसिद्ध था। अधिकांश उपन्यासों के अनुवाद भी हुए। प्रेमचन्द जी को उपन्यास सम्राट कहा जाता है और आदर्श यथार्थ से समन्वित उनके अनेक उपन्यासों में 'गोदान' अधिक प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त प्रसाद के कंकाल, तितली और भगवती-चरण वर्मा का 'चित्र लेखा' भी उच्च कोटि के उपन्यास हैं। सर्व श्रीयशपाल अश्क, अज्ञेय, कौशिक, भगवतीप्रसाद आदि उपन्यासकारों ने चरित्र व अन्तर्द्वन्द्व प्रधान सामाजिक, राजनैतिक व ऐतिहासिक उपन्यास लिखे।

नाटक :—नाटकों पर भी बंगाल का प्रभाव पड़ा। भारतेन्दु ने मौलिक नाटकों की रचना की। संस्कृत व अंग्रेजी नाटकों का अनुवाद भी किया गया। पाश्चात्य नाटककार इब्सन, बर्नार्डशा, एच० जी० वेल्स आदि का भी प्रभाव नाट्य-शैली पर पड़ा और प्रसाद ने अपने नाटकों में भारतीय तथा पाश्चात्य नाटकीय तत्वों का सुन्दर व सफल समन्वय किया। समस्या नाटककारों में लक्ष्मी नारायण मिश्र का नाम उल्लेखनीय है। ऐतिहासिक नाटककारों में प्रसाद व हरिकृष्ण प्रेमी तथा सेठ गोविन्ददास आदि प्रसिद्ध हैं। एकांकी नाट्यकला तथा रेडियो रूपकों का भी अब समुचित विकास हो रहा है।

द्राविड़ परिवार :—दक्षिण की तमिल, तेलगु, कनड़, मलयालम और तुलु नामक पाँच भाषाओं की गणना द्राविड़ परिवार के अन्तर्गत की जाती है।

...परिवार की भाषाओं में प्रमुख और समृद्ध तमिल भाषा है। तमिल साहित्य की कविता में राष्ट्रीय जागृति के फलस्वरूप भारत की अखण्ड एकता व देश प्रेम के गीत गाये गये। भारत के अतीत की प्रशंसा के साथ ही आर्थिक असमानता, ऊँच-नीच, जाति-पांति और वर्ग-भेद की निंदा की गई। सामाजिक, ऐतिहासिक और पौराणिक कथानकों को लेकर अनेक सुन्दर नाटकों की रचना हुई। उपन्यास की अपेक्षा कहानी के क्षेत्रों में भी अधिक प्रगति हुई और सार्वकालिक व सार्वदेशिक कहानियाँ लिखी गई। तिरुवल्लुवर का 'कुरल' जगत प्रसिद्ध अमर महाकाव्य है।

तैलगु :—द्राविड़-परिवार की अन्य चार भाषाओं से यह अधिक लोगों में प्रचलित है। पाश्चात्य सभ्यता व साहित्य के प्रभाव और मुद्रण यन्त्रों द्वारा प्रकाशन सुविधा के कारण आज अनेक काव्य, नाटक, उपन्यास व कहानियाँ उपलब्ध हैं। इस साहित्य की यह विशेषता है कि इसमें अष्टावधान, शतावधान तथा आशुकवित्व की प्रधानता है।

कन्नड़ :—गद्य-साहित्य ने उपन्यास, कहानी, आख्यायिका, (गल्प) नाटक की दिशा में प्रगति की है। बंगाल व मराठी उपन्यासों के अनुवाद तथा अनेक मौलिक उपन्यासों और रोचक आदर्शोन्मुखी कहानियों की रचना हुई। स्वार्थ त्याग और सन्मार्ग का महान संदेश देने वाले पद्य काव्यों में शृंगारिकता का प्रभाव है।

मलयालम :—मलयालम गद्य का विकास हिन्दी गद्य के विकास की सी ही परिस्थितियों में हुआ। उपन्यास, कहानी, एकांकी, जीवन चरित्र, समालोचना और निबन्ध का समुचित विकास हो रहा है। कविता के क्षेत्र में छायावाद, रहस्यवाद, दुःखवाद आदि भावनात्मक शैलियों में और नवीन-भावों तथा विचारों की अभिव्यक्ति की जा रही है।

गुजराती :—भारत की अन्य भाषाओं के साथ-साथ गुजराती साहित्य का भी प्राचीन क्षेत्र में विकास हो रहा है। उपन्यास एवं नवलिकाओं (छोटी कहानियों) के रूप में यूरोपीय साहित्य के दो साहित्यिक स्वरूपों ने गुजराती साहित्य में अच्छा स्थान पा लिया है। नये युग के साथ धार्मिक कविता के स्थान पर सामाजिक, प्रकृति संबंधी एवं राष्ट्रीय कविता होने लगी। भारतीय साहित्य में अनन्य नाट्यात्मक काव्य ग्रंथों की रचना 'अतुकान्त छन्द' (Blank Verse) में हो रही हैं। रंगमंचीय नाटकों का विकास हो रहा है। अनेक हास्य रस के लेखकों के हाथों से 'हास्य रस' का साहित्य, भी विकास पा रहा है। विवेचना और संशोधन की दिशा में भी पर्याप्त

प्रगति हुई है। श्री नाना लाल ने 'जया जयन्त-नूरजहां', जैसे नाट्यस्वरूपात्मक काव्य ग्रंथ की रचना की। उपन्यासकारों में श्री कन्हैयालाल मणिकलाल मुन्शी का नाम उल्लेखनीय है। नैतिक आदर्शात्मक साहित्य सर्जन-क्षेत्र में महात्मा गांधी के साथ साथ काका कालेलकर और स्व० मश्रुवाला व महादेव देसाई ने काम किया। नव शिक्षा तो गुजरात से ही महाराष्ट्र ने प्राप्त की। स्वतंत्रता के देशान्तर राष्ट्रभाषा का यहां सम्यक प्रचार हो रहा है और प्रति वर्ष हजारों विद्यार्थी राष्ट्र-भाषा की परीक्षा देते हैं। इतिहास विज्ञों में मुनि श्री जिन विजय जी प्रसिद्ध हैं। आर्य-समाज के प्रवर्तक श्री दयानन्द सरस्वती व राष्ट्रपिता महात्मा गांधी गुजरात प्रान्त के ही थे।

मराठी :—मराठी महाराष्ट्र में गत सात सदियों से प्रचलित है। पर इस अवधि में मराठी का केन्द्र स्थान बदलता रहा नागपुर, पैठण, नैऋति प्राचीन केन्द्र स्थान थे और आजकल बम्बई प्रमुख केन्द्र है। यह भाषा आर्य संस्कृति का ही मुकुर है और इसमें हिन्दुत्व की भावना का प्राधान्य है। विद्वान सम्प्रदाय, नाथ पंथ, महानुभाव पंथ, रामदासी पंथ और दत्त सम्प्रदाय जैसे धार्मिक सम्प्रदायों ने अपने विशेष ढंग पर इस साहित्य को समृद्ध किया है। श्री ज्ञान देव की 'ज्ञानेश्वरी' मधुर तथा सरल शब्दों में लिखा हुआ काव्य-दर्शन मिश्रित ग्रंथ है। इनके अतिरिक्त ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम जैसे भक्त कवियों की रचनायें भी प्रसिद्ध हैं। अठारहवीं सदी में 'मोरोपन्त' के भक्तिरसात्मक काव्य लोकप्रिय थे। स्वराज्य प्राप्ति के काल में शूरवीरों के उदात्त चरित्र और महान् कार्यों से संबंध रखने वाले 'पोवाड़ा' की रचना हुई और लावनीकारों ने शृंगारिक प्रेम को लावनी का विषय बनाया। आधुनिक युगीन मराठी साहित्य को तीन खण्डों में विभाजित किया जा सकता है। पहला खण्ड सन् १८०८ से १८८० तक का है—इस काल में संस्कृत तथा अंग्रेजी ग्रंथों के अनुवाद हुये अतः यह अनुवाद काल भी कहलाता है। न्यायमूर्ति सर्व श्री महादेव गोविन्द रानाडे और डा० भंडारकर तो विश्व विश्रुत हैं ही। द्वितीय खण्ड अर्थात् निबंध माला काल में समाज सुधारक तथा राजनीतिक निबंधों की प्रधानता रही। 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है, के जनक श्री तिलक का 'गीता रहस्य' प्रसिद्ध ग्रंथ है। उसके अनन्तर नाटक तथा उपन्यास भी प्रगति पथ पर बढ़े—उपन्यासकारों में श्री हरिनारायण आप्टे प्रसिद्ध हैं। नाट्य, गीत, महाकाव्य, खण्ड-काव्य, शिशु गीत, लघु कथा और आलोचना साहित्य भी प्रगति पर थे।

उत्कल :—आधुनिक उत्कल (उड़ीसा) का गठन प्राचीन कलिंग का बहुतांश और उत्कल का अल्प अंश लेकर हुआ है। अशोक की कलिंग विजय व उसका

प्रभाव तो सबको विदित ही है। इस भाषा में जैन, बौद्ध, शैव, शाक्त, वैष्णव, ईसाई, इस्लाम आदि धर्मों का साहित्य है। पाश्चात्य साहित्य व शिक्षा के प्रभाव से उत्कल साहित्य में उपन्यास, नाटक, प्रहसन, जीवन-चरित्र, समालोचना, महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि लिखे गए और आधुनिक उत्कल साहित्य द्रुतगति से प्रगति कर रहा है।

बंगला:—बंगला भाषा की उत्पत्ति मागधी अथवा गौड़ीय साहित्यिक प्राकृत से हुई। प्राचीन काल में श्री चैतन्य देव के आविर्भाव व उनके लोकोत्तर जीवन के प्रभाव से बंगला साहित्य की वृद्धि हुई। चण्डीदास बंगला के प्रसिद्ध कवि थे। कविवर माइकेल मधुसूदन दत्त ने अपनी असाधारण प्रतिभा से बंगला को सजीव भाव धाराओं की वाहिका बना दिया और पाश्चात्य साहित्य के नाना प्रकार के उपकरणों का इसमें संग्रह किया। इसके पश्चात् सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न नोबेल पुरस्कार विजेता कविवर रवीन्द्रनाथ ने अपनी सहज प्रतिभा से साहित्य के समस्त अंगों को योगदान दिया। देश प्रेम भक्ति, ऋतु सम्बन्धी कविताएँ, उनका स्वर, छन्द कल्पना, वेग, वर्णन, प्राण और परिवर्तन अद्वितीय हैं। गीतांजलि विश्व विश्रुत रचना है। आधुनिक युग के कवि समाज के उपेक्षित पीड़ित वर्ग को काव्य का विषय बना रहे हैं और रविन्द्रनाथ से जो Free verse अर्थात् गद्य-पद्य लिखने की प्रथा विकसित हुई थी उसी का अनुसरण किया जा रहा है। गद्य के क्षेत्र में भी श्री रवीन्द्र ने उपन्यास, नाटक, कहानी, निबन्ध लिखकर बंगला का गौरव बढ़ाया।

ईसाई, पादरियों तथा फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता ने गद्य का प्रचार किया। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा बंकिमचन्द्र चटोपाध्याय और शरत चन्द्र ने इस भाषा की पर्याप्त उन्नति की। शरत्चन्द्र ने तो अत्यन्त उच्च कोटि के उपन्यासों की रचना की जिनका अनुवाद कई भारतीय भाषाओं में हुआ। नारी सुलभ अतिशयोक्ति पूर्ण वाक्यों का प्रयोग इनकी भाषा की विशेषता है। बंकिम बाबू के प्रसिद्ध उपन्यास 'आनन्द मठ' ने तो भारतवर्ष के युवकों में देश प्रेम की उत्पत्ति को आलोकित किया। सन् १९०५ ई० के बंगाल विभाजन के कारण बंगला साहित्य में देश प्रेम व राष्ट्रीयता का स्वर ऊँचा हो गया। रवीन्द्रनाथ बंगला के महान् यशस्वी विचारक, लेखक व कवि को नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। भारतीय साहित्यकारों में केवल ही यह पुरस्कार प्राप्त हुआ और उन जैसे साहित्य सेवकों के कारण ही आज बंगला-साहित्य प्रभावपूर्ण व सफल साहित्य बन सका है।

असमीया:—बापू के 'मनोहर असम' और पटेल के 'मनोहर उद्यान' असम प्रान्त (आसाम) की भाषा असमीया है। यह प्रान्त रामायण और महाभारत काल

में प्राग्ज्योतिषपुर तथा कामरूप नाम से प्रख्यात् था। असमीया भारतीय विधान द्वारा स्वीकृत चौदह भाषाओं में से एक है। इसका विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ है, परन्तु इस पर तिब्बत व बर्मी की भाषाओं का प्रभाव पड़ा है। डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने लिखा है—"असमीया अपनी एक स्वतन्त्र राज्य सीमा तथा सामाजिक जीवन के अन्दर विकसित हुई, जो कालान्तर में एक स्वतन्त्र भाषा बन गई। सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत में आने वाले चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी लिखा है 'कामरूप की जनभाषा मध्यभारत की भाषा से प्रायः मिलती जुलती है।" परन्तु इसने १३वीं शताब्दी में जाकर साहित्यिक रूप धारण किया। 'माधव कंदलि', 'शंकर देव' जैसे साहित्यकारों और 'कानखोवा' तथा बुरजी जैसी रचनाओं से विकसित इस साहित्य में अंग्रेजी शासन काल के साथ-साथ आधुनिक काल में पदार्पण किया। स्व० लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ आधुनिक असमीया साहित्य के जनक माने जाते हैं। दर्शन, जातीय प्रेम, प्रकृति, वैराग्य और हास्य से अनुप्राणित काव्यों के साथ-साथ उच्च कोटि की छायावादी कविताओं की भी इसमें रचना हुई है। गद्य साहित्य, उपन्यास, कहानी, नाटक व निबन्ध के क्षेत्र में असमीया-साहित्य अभी कई कारणों से पूर्ण प्रगति नहीं कर सका है। हाँ इतना तो अवश्य है कि इनकी रचना का क्रम अभी बराबर चल रहा है।

पंजाबी:—हिन्दी और पंजाबी दो बहनों की भाँति हैं, क्योंकि देवनागरी (हिन्दी) गुरुमुखी (पंजाबी) लिपियों की उत्पत्ति एक ही माता ब्राह्मी लिपि से हुई हैं। गुरुमुखी लिपि में "गुरु ग्रंथ साहब" पंजाबी का प्रसिद्ध ग्रंथ है जिसमें पंजाबी के अतिरिक्त संस्कृत, फारसी, सिंधी, व्रजभाषा आदि की कविताएँ भी हैं। पंजाबी साहित्य सिक्ख-साहित्य तक ही सीमित नहीं है। इसका पहला लेखक फरीद शकरगंज था, बाद में गुरु नानक, गुरु अर्जुन जैसे भक्त कवियों ने इसका विकास किया। 'हीर राँझा', सोहिनी महिवाल' आदि पंजाबी में प्रसिद्ध है। नये पंजाबी लेखकों में अमृता प्रीतम ने प्रतीकात्मक शैली का सम्भवतः अधिक प्रयोग किया है। पंजाबी कहानी का जन्म सन् १९३५–३६ में हुआ। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रगतिशील पंजाबी साहित्य में साम्प्रदायिक झगड़ों का अधिक वर्णन उपलब्ध होता है और भुखमरी तथा दारिद्रय के नाश का स्वर सुनाई पड़ता है। उपन्यासकार सुरेन्द्रसिंह नरूला, नाटककार बलवन्तगार्गी और मोहनसिंह सफीर तथा अमृता प्रीतम जैसे कवियों के योग्य और समर्थ हाथों में प्रथम बार पंजाबी साहित्य के सभी अंगों की उन्नति हो रही है।

कश्मीरी—जम्मू व कश्मीर के लगभग ५०,००० लोगों की यह भाषा है। यह भाषा अपभ्रंश मूलक है। हरिवंश के आधार पर लिखा हुआ 'बाणासुर वध'

प्रथम कश्मीरी प्रबन्ध काव्य है। १९३८ से पूर्व पीरजादा गुलाम महमद महजूर क नाम उल्लेखनीय है जो वास्तव में आधुनिक कश्मीरी कविता का अगुआ है। राष्ट्री आन्दोलनों के प्रभाव से रहस्यवादी कवि 'आज़ाद' ने भी राष्ट्रीय, सामाजिक व राज नैतिक विषयों पर कविता की और उसने राष्ट्रीय, भौगोलिक, जातीय व सामाजि सकीर्णता के विरुद्ध आवाज उठाई। मानवता ही उसका साध्य रही। सन् १९४ में रेडियो व लोकमन्चों के आधार से कश्मीरी गद्य को प्रोत्साहन मिला और मासि पत्र तथा कहानियाँ छपने लगीं। सामाजिक व प्रान्तीय परिस्थितियों से जागरू कवियों ने देशी व विदेशी शत्रुओं से सचेत रहने को कहा और आज कविता जीव को नवीन रस प्रदान कर रही है परन्तु गद्य का अभी तक समुचित विकास न हो पा रहा है।

उर्दू:—भारत की भाषाओं प्रधानतः हिन्दी की खड़ी बोली के साथ अरबं फारसी और तुर्की के मेल-जोल से उर्दू भाषा बनी है। पाश्चात्य प्रभाव के कार इसमें योरोपीय भाषाओं के शब्द भी मिल गये। इस प्रकार इसका कोई स्वतः अस्तित्व नहीं है। अकबर के समय अरबी-फारसी शब्दों का व्यवहार अधिक गया था और शाहजादों ने लाल किले के पास ही उर्दू बाजार बसाया था इस उर्दू बाजार के चारों ओर बसे हुए सिपाही और फौजी सरदारों में खड़ी बोल प्रचलित हो गई और इसका नाम 'शाहजहानी' उर्दू था, जो विकसित होती हुई आ निक उर्दू बन गई। अतः उर्दू खड़ी बोली हिन्दी की ही एक विशेष शैली है, यद वह फारसी लिपि में लिखी जाती है। महाकवि ग़ालिब, हाली, अकबर जि मुरादाबादी, सागर निज़ामी आदि की रचनाओं से साहित्य-भण्डार भर गया। गज रुबाइयाँ, मरसिये, कसीदे, मसनवियाँ, मुसद्दस आदि शैलियों में कविता की र लगी। उर्दू गद्य-साहित्य का इतिहास डा० जॉन गिल क्राइस्ट के मातहत में स्थापि कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से प्रारम्भ हुआ, क्योंकि इस कॉ का प्रधान कार्य अंग्रेज अफसरों को देशी भाषाओं की शिक्षा देना था। हिन्दू मुसलमानों व ईसाइयों की धार्मिक पुस्तकें उर्दू में लिखी गईं। १८५७ के बाद सैयद अहमद खाँ ने साइन्टिफिक सोसाइटी स्थापित कर उर्दू की प्रगति क तत्पश्चात् अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन उर्दू में हुआ। उर्दू की प्रगति 'अंजुमन तरक्की-ए उर्दू' (दिल्ली), दारुल मुसन्नेफीन (आज़मगढ़), जामिया मिलि (दिल्ली), एदारये अदबियाते उर्दू (हैदराबाद) और उस्मानिया यूनिवर्सि हैदराबाद का विशेष हाथ रहा। उस्मानिया यूनिवर्सिटी ने डाक्टरी, इंजीनियरी और विज्ञान के प्रत्येक विषय पर सैकड़ों पुस्तकों का अनुवाद प्रकाशित कि उर्दू में नाटक-साहित्य विकसित नहीं हुआ, क्योंकि वे कुछ नाटक-कम्पनियों त

ही सीमित रहे; फिर भी नारायण प्रसाद 'बेताब' और उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने कुछ ड्रामे लिखे। उपन्यास के क्षेत्र में भी अधिक नाम नहीं लिए जा सकते। मुंशी प्रेमचन्द, सुदर्शन, अजीज अहमद आदि कुछ इने-गिने लेखकों ने ही उपन्यास लिखे। उर्दू-कविता (शेरो-शायरी) प्रसिद्ध है। उर्दू की पत्रिकाएँ तो भारत के लगभग सभी बड़े शहरों से प्रकाशित होती हैं और स्वतन्त्र भारत में उर्दू का भविष्य उज्जवल है।

भारत की अन्य कलायें

सिन्धु घाटी की सभ्यता से कला के क्षेत्र मे भारतीयों की रुचि दिखलाई पड़ती है और उसके बाद समस्त हिन्दूकाल मे कला का क्रमशः विकास होता दिखलाई पड़ता है। सिन्धु घाटी की नागरिक सभ्यता मे वास्तुकला का पर्याप्त विकास हुआ था। निश्चित—नगर योजना, भव्य भवन निर्माण, सुन्दर स्नानागार तथा अच्छी सड़कें व नालियाँ सभी सिन्धु घाटी कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। वास्तुकला के क्षेत्र मे अनेक राज-प्रासादों, भवनों, स्तम्भों, यज्ञशालाओं तथा रंगमंचों का निर्माण हुआ। मौर्यकाल में तथा उसके उपरान्त भी अशोक स्तम्भ, स्तूप तथा चैत्य, विहारादि भी बने। अशोक के राज्यकाल मे पाषाण-स्तम्भों की भरमार थी। सारनाथ-स्थित अशोक के समय के सिंह शीर्ष-स्तम्भ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। चट्टानों को काटकर गुफा-विहारों का निर्माण होता था। एलोरा, अजन्ता और ऐलीफैंटा की गुफाएं, इस प्रकार के गुफा-विहारों के लिए प्रसिद्ध हैं। अधिकांश गुफा-विहारों का निर्माण गुप्तकालीन है।

गुप्तकाल में ललित कलायें अपने चरम लक्ष्य पर थीं। कला के विभिन्न अङ्ग स्थापत्य, तक्षण, मूर्ति, चित्र तथा पकी हुई मिट्टी की मूर्तिकला ने ऐसी अनुपम, सौंदर्य अभिव्यक्ति और परिपक्वता प्राप्त की थी, जिसकी श्रेष्ठता को आज भी कोई प्राप्त नहीं कर सका। कला में गांधार शैली पर जो यूनानी प्रभाव आया था, वह तक्षशिला से मथुरा, सारनाथ तथा पाटलिपुत्र पहुँचते-पहुँचते गुप्त युग में लुप्त हो गया और कला ने विशुद्ध भारतीय रूप ग्रहण कर लिया। कला के शास्त्रविधान निर्दिष्ट किए गए, निर्धारित भेदों का विकास हुआ और सौन्दर्य के आदर्शों का निर्माण हुआ।

शिल्पियों की सुविकसित सौन्दर्य भावना, परिमार्जित एवं प्रौढ़ कल्पना, विलक्षण रचनाकौशल और हाथों की निपुण कार्य क्षमता ने ऐसी कृतियों और स्मारकों का निर्माण किया, जो भारतीय कला क्षेत्र में 'न भूतो न भावी' स्वरूप हैं।

प्राचीन भारत की पवित्र भूमि पर अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ। गुप्त शासकों के समय मे अनेक मन्दिर बनवाये गये। मंदसौर, साँची, देवगढ़, भीतरगाँव, कानपुर और बोधगया के मन्दिर इसी समय में बनाये गये थे। ये मन्दिर अपनी आकर्षक कलाकृति के लिए विख्यात हैं। उड़ीसा के भुवनेश्वर तथा जगन्नाथ मन्दिर और मध्य भारत के खजुराहो मन्दिर अपनी कलात्मक कृति के लिए विख्यात हैं। महाबलीपुरम्, मदुरा, तंजौर, काञ्जीवरम् तथा रामेश्वरम् के मन्दिर भी अपनी कला के लिए विश्वविख्यात हैं। देवगढ़ का दशावतार मन्दिर भूमेरा का शिव मन्दिर, नचना कुठार का पार्वती मन्दिर, तिग्वा का विष्णु मन्दिर, उदयगिरि का विष्णु मन्दिर, चित्तौड़ के मन्दिर विशेष प्रसिद्ध हैं।

प्राचीन भारत में मूर्तिकला के क्षेत्र में भी अपूर्व उन्नति हुई। इसका प्रारम्भ भी सिन्धु घाटी की सभ्यता के साथ ही हो चुका था। बौद्ध धर्म ने मूर्तिकला के विकास में विशेष सहयोग प्रदान किया। मौर्य-काल मे स्तम्भों के शिखर पर पशुओं की मूर्तियाँ बनायी जाती थी। उत्तर-पश्चिम भारत में गांधार शैली का निर्माण हुआ। इस शैली के अन्तर्गत कला यूनानी तथा विषय भारती होता था। गुप्त काल में मूर्तिकला विकास की चरम सीमा पर पहुँच गयी। मिट्टी, पत्थर और धातु की मूर्तियाँ बनायी जाती थीं। दक्षिण भारत के श्रवणबेलगोला में गोमतेश्वर की बड़ी विशाल मूर्ति है

इसी प्रकार चित्रकला भी विकसित हुई। इसके लिए अजन्ता व एलोरा प्रसिद्ध हैं। इन गुफाओं में अनेक चित्र बनाए गए हैं। इनकी रंगाई भी की गई है। चित्रों का सम्बन्ध अधिकतर बुद्ध के ही जीवन से है। इन चित्रों को बने सैकड़ों वर्ष हो गए, फिर भी कुशल चित्रकारों की कृति देखकर आज भी लोग दंग रह जाते हैं।

भारतीय चित्रों में मैत्री, करुणा, क्रोध, लज्जा, हर्ष, उत्साह चिन्ता, घृणा आदि विविध प्रकार के भाव, पद्मपाणि अवलोकितेश्वर, शान्त तपस्वी और राज-परिवार के महापुरुषों से लेकर क्रूर व्याघ्र, निर्दय वधिक, साधु वेशधारी धूर्त, भिखारी, नर्तक, गायक, सुन्दर वस्त्राभरणों से अलंकृत रमणियाँ, सभी प्रकार के मनुष्य, समाधि मग्न बुद्ध से लेकर प्रणय क्रीड़ा मे रत दम्पत्ति, शृंगार में संलग्न स्त्रियाँ तक समस्त मानव जीवन के कार्य कलाप अंकित है।

पुष्प, वृक्ष, वनस्पती, झरने, नदी, पशु-पक्षी, देवी, देवता, अप्सराएँ, गन्धर्व, दूत, लताएँ, पुष्प, हाथी, हिरण, सिंह तक के चित्र मौजूद हैं, जो सजीवता का

परिचय देते है । राजकीय जुलूस, बौद्ध जीवन से सम्बन्धित घटनाओं के चित्रित चित्र मानसपटल पर आज भी वैसे ही चित्रित है ।

चित्रकला के साथ-साथ संगीतकला मे भी यथेष्ट उन्नति हो गई । एक मजेदार बात यह है कि सामवेद भारत का एक प्राचीन संगीत-शास्त्र था । प्राचीन भारत मे छत्तीस राग प्रचलित थे । भरतमुनि ने अपने नाट्य-शास्त्र मे स्वर के विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाला है । भेरी, मृदग, झाँभ, वीणा, बांसुरी, टिपरी एवं अन्य मगल कारक वाद्यो का वर्णन है

प्राचीन भारत में विज्ञान तथा अन्य क्षेत्रों में भी चमत्कारपूर्ण प्रगति हुई । लीलावती, आर्यभट्ट, भास्कराचार्य और ब्रह्मगुप्त प्रसिद्ध गणितज्ञ थे । भारतीयों ने शून्य एवं अंक का आविष्कार कर गणित के क्षेत्र मे महान परिवर्तन ला दिया । इस प्रकार प्राचीन भारत में ज्योतिष-शास्त्र का भी विकास हुआ। चिकित्सा-शास्त्र ने भी काफी उन्नति की । शल्य चिकित्सा भी प्रचलित थी। पशु-पक्षियों का भी उपचार होता था । ज्योतिष-शास्त्र, रसायन-शास्त्र तथा धातु-शास्त्र का नाम भी कम उल्लेखनीय नही है । दिल्ली का लौह-स्तम्भ आश्चर्यचकित करने वाली वैज्ञानिक कृति है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय सभ्यता मे मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है । व्यक्ति की सर्वाङ्गीण उन्नति-शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक-यही इसका उद्देश्य था । बौद्ध काल व गुप्तकाल में बड़े-बड़े विद्या के केन्द्र जैसे—तक्षशिला, नालन्दा, पाटलिपुत्र, वल्लभी, उज्जयिनी आदि की स्थापना की गई । इसमें तक्षशिला तथा नालन्दा तो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुके हैं ।

जिस समय डेरियस का आक्रमण सन् ५१८ ई० पूर्व हुआ, तब से ही भारतवर्ष का अन्य देशों से सांस्कृतिक सम्पर्क प्रारम्भ होता है । मध्य एशिया प्रारम्भ से ही धर्म, सभ्यता व भाषाओं तथा भिन्न-भिन्न जाति के लोगों से भरा रहा है । इस हिस्से में बौद्ध धर्म, ईसा से एक शताब्दी पूर्व स्थापित हुआ था । यहाँ अनेक बौद्ध-स्तूप, गुफा-मूर्तियाँ, अश्वघोष के लेखों के चित्र आदि मिलते हैं । लंका में बौद्ध धर्म महेन्द्र ने फैलाया । इसी प्रकार अशोक के प्रचारक ब्रह्मा में भी पहुँचे । इण्डोचीन मे अनेक हिस्सों में हिन्दू-साम्राज्य स्थापित हो गए, जैसे चम्पा व कम्बोज । यहाँ पर संस्कृत साहित्यिक भाषा हो गई । पूर्वीय आरचीपेलेगो मे भारतीय संस्कृति का बड़ा प्रभाव पड़ा । भारतीय लिपि में संस्कृत लेख, देवताओं की मूर्तियाँ, सब इस

बात की द्योतक है। राष्ट्र ने रामायण व महाभारत को इतना माना कि वे राम इत्यादि को अपने यहाँ का बतलाने लगे। बाली द्वीप में रहने वाले अब तक हिन्दू हैं, वे हिन्दू देवताओं को मानते हैं। जाति-पाँति का भेद मानते हैं तथा हिन्दू तिथियों के अनुसार काम करते हैं। जावा की कला को देखने से भी भारतीय संस्कृति का प्रभाव प्रकट होता है। जावा का स्तूप यह बात बतलाता है। चीन ही शायद एक ऐसा देश है जिससे भारत का आरम्भ से ही सम्बन्ध रहा है। यह अवश्य है कि आरम्भ में सम्बन्ध धार्मिक व व्यापारिक तथा सांस्कृतिक न हो। चीन में बौद्ध धर्म सन् ६२ ई० में पहुँचा और तब से भारत व चीन में निरन्तर सम्बन्ध बना रहा। लगभग उस समय में ही तिब्बत में पहला बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राय. एशिया के समस्त देश प्राचीन समय में भारतीय संस्कृति से प्रभावित रहे।

धीरे-धीरे भारतवासी अपने जीवन में उच्चस्तरीय संस्कृति से गिरने लगे। हमारा सांस्कृतिक ह्रास प्रारम्भ हो गया, वर्धन साम्राज्य तक तो हम येन-केन-प्रकारेण सम्हलते भी रहे, परन्तु लगभग नवीं शताब्दी में आकर तो हम बिलकुल आगे न बढ़ सके। जिस प्रकार संस्कृति का निर्माण एक दिन में नहीं होता अथवा संस्कृति बनती हुई नहीं दिखाई देती, उसी प्रकार उसका पतन भी एक दिन का काम नहीं है। पहले उसकी गति अवरुद्ध होती है और फिर धीरे-धीरे अदृश्य रूप से घोर पतन हो जाता है। जिस प्रकार प्राचीन विद्यालयों अथवा विश्वविद्यालयों द्वारा सर्वाङ्गीण विकास किया जा रहा था। हम दर्शनशास्त्र और विज्ञान में उच्चकोटि का स्थान लिये हुए थे, उसी प्रकार महाराज हर्षवर्द्धन के बाद ये सब निर्जीव होने लगे। अब न वैसे साहित्यकार थे, न कलाकार, न दार्शनिक और न ही वैज्ञानिक। अतः यह आवश्यक था कि प्रगति रुके। उत्तरी भारत में तो सब कलात्मक प्रवृत्तियों की समाप्ति ही हो गई। दक्षिण भारत में कुछ और अवधि तक ये प्रवृत्तियां कार्य-शील रहीं। अब धीरे-धीरे भारतीय संस्कृति केवल कहानी-मात्र रह जाती है। सामाजिक जीवन नीरस व भौतिक हो जाता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अफ़-गानों अथवा मुगलों के काल में कोई कलात्मक कार्य नहीं हुआ। हम आगे चलकर देखेंगे कि ललित कलाओं में इन मध्यकालीन शासकों ने एक नये जीवन का संचार किया, तथा एक नई संस्कृति का सृजन किया किन्तु वैज्ञानिक क्षेत्र में तथा उससे भी अधिक भारत की आध्यात्मिक दार्शनिक प्रणालियों में वैसा जीवन नहीं रहा। वे सब अन्धकार रूपी अज्ञानता में खो गईं।

अनेक कारणों से ऐसा हुआ। परिस्थितियाँ बदल गईं। भारत में इतनी विदेशी जातियाँ आईं और आकर उन्होंने इतनी दरबारी की कि सामाजिक

जीवन ग्रस्त-व्यस्त हो गया और भारतवासी जो नितांत शान्तिप्रिय थे, एक लम्बे समय तक—लगभग एक सहस्त्र वर्ष तक दास हो गये। राजनैतिक दासता ने सब ही उत्साह समाप्त कर दिया और भारत के जीवन में हीनता आ गई। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे सांस्कृतिक पतन का एक महत्वपूर्ण कारण हमारी लम्बी परतन्त्रता भी था।

हमारे समाज में अनेक दोष आ गये थे। वैदिक आर्यों ने जो प्रणालियाँ उत्तम विचारों से चलाई थीं वह सामाजिक व्यवस्था अब अपना रूप बदल चुकी थी। वर्ण-व्यवस्था ने जाति-पाँति के भेदभाव को उत्पन्न कर दिया। समाज की एकता समाप्त हो गई और ऊँच-नीच, छुआ-छूत आदि दुर्गुणों का समावेश हो गया। अब केवल क्षत्रिय ही देश की रक्षा करते थे एवं उनमें भी फूट पड़ गई थी। विदेशियों के लिए ऐसी बिखरी दशा में पड़े देश को रौंदना कठिन अवश्य हुआ, परन्तु वे सफल हुए और भारत दासता की जंजीरों में जकड़ा गया। इससे भारत को भारी दंड चुकाना पड़ा। फलतः सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक प्रत्येक क्षेत्र में पतन हो गया।

मध्ययुगीन व मुगलकालीन कला

मुसलमानों के पहले भारत पर विदेशियों के आक्रमण हुए थे। पर्शियन, यूनानी, सीथियन व मंगोलियन तथा पार्थियन —ये कुछ विदेशी जातियाँ थी जिन्होंने भारत पर आक्रमण किया। जो भी विदेशी भारत में बस गये, वे कालान्तर में हिन्दू समाज के ही अंग बन गये। भारतीय संस्कृति एक विशाल समुद्र के समान है जिसमें अन्य विचार-धाराएँ सुगमतापूर्वक मिलती रही हैं। किन्तु एक आक्रमणकारी वर्ग ऐसा आया जो यहाँ के समाज का अभिन्न अंग न बन सका। यह वर्ग मुसलमानों का था, जिन्होंने अरबों, अफ़गानों व मंगोलों के रूप में आक्रमण किया और शासक के रूप में बस गये। मुसलमानों को भारतीय समाज अपने में न खपा सका। इसका प्रधान कारण यह था कि भारत में इस्लाम राज-धर्म के पद पर आरूढ़ था। किन्तु यह भी सत्य है कि जहाँ अन्य देशों में राजनैतिक सत्ता के साथ इस्लाम की भी विजय हुई वहाँ भारत में राजनैतिक विजय होने पर धार्मिक विजय न हो सकी। फिर भी हिन्दू तथा मुस्लिम सभ्यताएँ कब तक एक-दूसरे से अलग रह सकती थीं। उनके बीच में कोई अभेद्य दीवार खड़ी नहीं की जा सकती थी। जब दोनों का सम्मेलन हुआ तो दोनों ही एक-दूसरे को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकीं। विचारों के आदान-प्रदान को रोकना शक्ति के परे जो है।

सैकड़ों वर्षों के हिन्दू-मुस्लिम सम्पर्क ने दोनों संस्कृतियों में समन्वय उत्पन्न किया। प्रारम्भ में दोनों जातियाँ एक-दूसरे से हर प्रकार से दूर रहने का प्रयत्न करने लगी। किन्तु कालान्तर में एक-दूसरे के गुणों का परस्पर समावेश हो गया।

सातवीं शताब्दी में अरबों के आक्रमण से मुस्लिम सम्पर्क स्थापित होता है। दोनों जातियों के व्यापारिक सम्बन्ध पहले से चले आ रहे थे। प्रारम्भ किसी प्रकार के संघर्ष से नहीं हुआ; अपितु शांतिमय सम्पर्क से हुआ। धीरे-धीरे राजनैतिक क्षेत्र में संघर्ष हुआ। मुसलमानों के आक्रमण होने लगे। महमूद गजनवी ने अपने लालच को पूरा करने के लिए तथा इस्लाम के प्रचार के लिए भारत को रौंद डाला। धार्मिक क्षेत्र में संघर्ष हुआ और हिन्दू अपनी रक्षा का उपाय सोचने लगे। शक्ति-बल से तत्कालीन निम्न वर्ग के हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया गया। महमूद गजनवी की परम्परा को मोहम्मद गौरी व उसके बाद आने वाले अफगान विजेताओं ने चालू रक्खा। मुसलमान अब भारत में बस चुके थे। जिन भारतवासियों ने मुस्लिम-धर्म को अपना लिया था, उनका दैनिक जीवन भारतीय परम्परा लिए हुआ था और यहाँ से ही हिन्दू-मुस्लिम समन्वय प्रारम्भ हो जाता है।

इस युग की कला में भी हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों प्रभावों का समन्वय था। इस मिश्रित कला को हिन्दू-इस्लामी कला कहते हैं। इस काल में अनेक नगर बसाये गये। नगरों में भवन, मन्दिर व मस्जिदों का निर्माण किया गया। इसमें सन्देह नहीं कि मुस्लिम कला में हिन्दू कारीगरों के सहयोग से बहुत सुधार हुआ है, परन्तु यह भी कहना ठीक न होगा कि मुस्लिम कला सर्वदा आदर्श-रहित है। मुसलमानों की भवन-निर्माण-कला में बड़ी अभिरुचि थी और उसमें उन्होंने अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट किये हैं। जिन स्थितियों में हिन्दू-मुस्लिम कला का विकास हुआ, उससे स्पष्ट जान पड़ता है कि उसमें दोनों का सम्मिश्रण है। हिन्दू-धर्म ने मूर्ति-पूजा की प्रशंसा की मुसलमानों ने उसका विरोध किया, हिन्दू धर्म ने सजावट, चमक-दमक को पसन्द किया, मुसलमानों ने सादगी को अपनाया। एक-दूसरे के विरोधी इन विभिन्न आदर्शों के हेल-मेल से एक नई कला का प्रादुर्भाव हुआ जिसे हिन्दू-मुस्लिम अथवा इण्डो-सारसेनिक कला कहते हैं। मुसलमानों ने भारत में आकर हिन्दू कला के आदर्शों से लाभ उठाया। बहुत से मन्दिर मस्जिदों में बदल गये और विजेताओं ने उन्हीं का अनुसरण करके मस्जिदें बनवाईं। जिस विशेषता ने इन दोनों शैलियों का सम्मिश्रण किया, वह थी मुस्लिम तथा हिन्दू कलाओं की स्वाभाविक आभूषण-प्रियता। आभूषण जितना एक के लिये महत्वपूर्ण था, उतना ही दूसरे के लिये। अरब आक्रमणकारियों ने हिन्दू कारीगरों और शिल्पकारों के चातुर्य को स्वीकार

किया। महमूद गजनवी मथुरा से हिन्दू शिल्पकारों को अपने साथ ले गया तथा उससे गज़नी की प्रसिद्ध मस्जिद का निर्माण कराया। कुतुबी मस्जिद, जो कुतुब-मीनार के पास बनी हुई है, प्राचीन मन्दिरों के अवशेषों से ही निर्मित हुई थी।

इसी प्रकार प्रान्तीय शिल्पी शैली में गुजरात की शैली सबसे सुन्दर है। मुस्लिम विजय के पहले गुजरात में जैन धर्म का बड़ा प्रभाव था। जब देश पर मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित हो गया, तो उन्होंने अपनी इमारतें बनाने के लिये कुशल कारीगर नियुक्त किये। स्वभावत: कुछ परिवर्तन के साथ कारीगरों ने मुसलमानों की सादा रुचि के अनुकूल हिन्दू-जैन मिश्रित कला का प्रदर्शन किया।

मुगल काल में हिन्दू और मुस्लिम शैलियों का स्वतन्त्रता पूर्वक प्रयोग किया गया। अक़बर ने आगरा, अजमेर, लाहौर और इलाहाबाद में किले व अन्य भवन बनवाये; उसने फ़तहपुर सीकरी बनवाया। जहांगीर तथा शाहजहाँ ने यहाँ के संगमरमर का उपयोग किया। ताजमहल, आगरा का किला, दिल्ली की जामा-मस्जिद व सीकरी के भवन इस समन्वय के अपूर्व उदाहरण हैं।

इसी प्रकार मुगलों के समय में चित्रकला का भी पर्याप्त विकास हुआ। यहाँ भी हिन्दू-मुस्लिम शैली का समन्वय हुआ। मुगल शैली ने राजपूताने को प्रभावित किया जिससे राजपूत शैली का विकास हुआ। चित्रकला की तरह संगीत ने भी संगम हुआ। मुसलमान संगीत ख्याल, ठुमरी, आदि का निर्माण हुआ। कुछ-कुछ, नये-नये साज व वाद्य-यन्त्र जैसे सितार, सारंगी आदि इस समय ही बनाये गये। मुगलकालीन तानसेन, बाबा हरिदास व बैजूबावरा के नाम से कौन परिचित नहीं है। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ने संगीत के वैज्ञानिक मार्ग को अपनाया।

आधुनिक कला

भारतीय ललित कलाओं का वैभवकाल मुगलों के पतन के साथ समाप्त हुआ। अठारहवीं शताब्दी भारतीय ललित कला के क्षेत्र में एक अन्धकारमय युग था। इस समय विदेशियों के और मुस्लिम शासकों के बीच राजनैतिक संघर्ष हो रहा था। अंग्रेज भारतीय राजनीति में घुस रहे थे और देशी राजाओं के निकम्मेपन का व उनकी आपसी फूट का लाभ उठा रहे थे। कलाकार का जीवन आर्थिक संकट का जीवन हो गया और ये लोग अब देशी राजाओं के पास भाग-भागकर आश्रय ले रहे थे। उधर पाश्चात्य प्रभाव ने जनता की रुचि बदल दी थी। अब लोग पाश्चात्य

रहन-सहन व पाश्चात्य कला को महत्व देने लगे थे। अतः मुगलों के पतन से लेकर भारत में पुनर्जागरण के समय तक का सांस्कृतिक इतिहास निराशाजनक है।

धीरे-धीरे अंग्रेज भारत में स्थायी शासन की नींव डालने में सफल हुए भारत में पुनर्जागरण हुआ और ललित कलाओं को पुनः जीवन प्रदान हुआ। प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वानों ने भारतीय कला की महत्ता पर प्रकाश डाला। फर्गुसन, हैवेल, पर्सीब्राउन तथा भारत के कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा उनके भाई अरविन्द ठाकुर आदि ने भारतीय कला के क्षेत्र में नवजागरण कर दिया। उन्होंने भारतीय कला की सम्पन्नता, महानता तथा उसके वैभव का सजीव चित्रण किया। प्रसिद्ध विद्वान हैवेल ने भारतीय ललित कलाओं के गूढ़ तथ्यों का अध्ययन कर, उन्हें अपने अमर तथा मौलिक ग्रन्थों द्वारा जनता को सुलभ कराया। पर्सीब्राउन ने भारतीय चित्रकला तथा स्थापत्यकला पर मौलिक ग्रन्थ लिखे।

इन सबका प्रभाव यह हुआ कि भारत में प्रत्येक ललित कला को प्रोत्साहन देने के लिए संस्थाओं की स्थापना की जाने लगी। बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता में इस प्रकार के विद्यालयों की स्थापना की गई, जिनमें विभिन्न ललित कलाओं का ज्ञान कराया जा सके।

स्थापत्य कला—मुगलों के पतन से मुगल-भवन-निर्माण-कला का भी पतन हो गया। यूरोपियन लोगों ने अपने ढंग के भवन बनाने शुरू किए। अंग्रेजों ने कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई में सरकारी इमारतें इंग्लैंड के ढंग पर ही बनवाई, मुगल भारत की देशी रियासतों राजा, नवाब तथा धनाढ्य लोग उसी शैली का अनुकरण करने लगे। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कुछ व्यक्ति भारतीय स्थापत्य-कला को प्रोत्साहन देने के पक्ष में थे किन्तु शासकवर्ग तथा उनके मातहत इन्जीनियर पाश्चात्य ढंग की शैली ही अपनाते रहे। नई दिल्ली का निर्माण पूर्णतया यूरोपियन ढंग पर किया गया। इस प्रकार प्राचीन तथा मध्यकालीन व मुगलकालीन भारतीय स्थापत्य कला की परम्पराएं लुप्तप्राय हो गईं। कहीं-कहीं राजाओं ने इस परम्परा को अपने महलों में जीवित रखा। भारत के तीर्थ-स्थानों पर मन्दिर आज भी प्राचीन शैली का स्मरण कराते हैं।

चित्रकला—मुगलों के पतन के साथ-साथ मुगल-शैली के चित्रकार लखनऊ और पटना चले गये तथा राजस्थानी कलाकार पंजाब की पहाड़ी रियासतों में बस गये, वहाँ उन्होंने पहाड़ी शैली का निर्माण किया। इनके चित्र चित्रण में और भी अधिकतर प्राकृतिक सौन्दर्य प्रदर्शित किया करते थे। इस प्रकार के

विशेषज्ञों में मालाराम, मानुक, चैतू तथा रणजीतसिंह के दरबारी कपूरसिंह
का नाम उल्लेखनीय है। भूकंप के कारण कांगड़ा के कई चित्रकार मर गए थे।
पटना के मुगल कलाकारों ने पाश्चात्य प्रभाव से एक नई शैली को जन्म दिया,
जिसमें भावना के साथ कठोरता के सभी तत्व थे। इस शैली को पटना-शैली
कहते हैं। १८वीं शताब्दी में मुस्लिम चित्रकार हैदराबाद में फले-फूले और हिन्दू
कलाकार मैसूर और तंजौर में; किन्तु इसके बाद आश्रय के अभाव में वहाँ भी
चित्रकला का पतन हो गया। १९वीं शताब्दी में गदर के बाद बम्बई, कलकत्ता
तथा मद्रास में कलाशालाएँ बनाई गईं, जिनमें पाश्चात्य ढंग की कला सिखाई
जाने लगी। इससे पाश्चात्य कला पूर्णतया भारतीय कला को प्रभावित करने
लगी। चित्रकार रवि वर्मा ने भारतीय भावना तथा विषय को पाश्चात्य शैली में
अंकित करने का असफल प्रयत्न किया।

बीसवीं शताब्दी पुनर्जागरण का युग माना जाता है। फलस्वरूप पुनः
चित्रकारों ने भारतीयता और पाश्चात्य शैली का प्रभाव रहते हुए भी भारती कला
का प्रारम्भ रखा। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर तथा हैवेल ने चित्रकला के क्षेत्र में अजन्ता
और मध्यकालीन कला को आधार बनाया। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने पूर्वी तथा
पश्चिमी शैली का समन्वय किया। यह शैली बंगाल शैली कहलाई। इस प्रकार
अजन्ता शैली से प्रेरित कला एक बार फिर उच्च स्तर प्राप्त कर सकी। अवनीन्द्र-
नाथ के शिष्यों में नन्दलाल बोस, असित हलदार, सुरेन्द्र गंगोली तथा क्षितीन्द्रनाथ
प्रसिद्ध चित्रकार हुए हैं। असित हलदार ने लखनऊ में प्रसिद्ध चित्रकला केन्द्र स्थापित
किया। 'बंगाल शैली' का प्रभाव गुजरात पर भी पड़ा। रविशंकर रावल ने
अहमदाबाद में कला-केन्द्र स्थापित किया। कनु देसाई इस कला-केन्द्र की ही उपज हैं।
इस शैली के प्रसिद्ध कलाकार हुसैनकर, मालखारा, यामी, जे० पी० गंगोली
और मुकुल बोस हुए। देवीप्रसाद राय चौधरी तथा रहमान चगताई भी प्रसिद्ध
कलाकार हुये।

अमृता शेरगिल इस समय की प्रसिद्ध चित्रकार थीं। इन्होंने पहले लन्दन
और पेरिस में शिक्षा पाई, फिर भारत आकर भारतीय कला में सरल, कोमल और
[illegible] शैली से प्रभावित कल्पना की उड़ान लेते हुए, चित्रों का निर्माण किया।
[illegible], मद्रास, लखनऊ, जयपुर, बम्बई और इन्दौर में कलाशालाएँ स्थापित की
। आज के चित्रकार का विषय राजा महाराजा नहीं बल्कि कृषक और श्रमिक
[illegible] चित्रों में स्वाभाविक भावना और प्राकृतिक सौन्दर्य चित्रित किया जाता है।

संगीत —मुसलमानों के भारत में आने [illegible] १४वीं शताब्दी में संगीत और नृत्य

दोनों ही कलाओं का पतन हो गया। मुगल सम्राट मोहम्मदशाह के दरबार प्रसिद्ध दरबारी संगीतज्ञ अदारंग और सदारंग थे। इस समय फारसी और हि संगीत शैलियों में सम्मिश्रण हो गया था। दिल्ली के सभी प्रसिद्ध संगीतज्ञ देश राज्यों मे चले गये। अब संगीत और नृत्य केवल जीविका के साधन रह गए, औ कला का स्तर नीचा गिर गया। समाज में इन कलाओं की प्रतिष्ठा गिर गई फिर भी यदा-कदा संगीत-सम्मेलन आदि से यह कला जीवित रही। दक्षिण मे तंजौर के राजा इन कलाकारों को आश्रय देते थे। यहाँ के प्रसिद्ध संगीतज्ञ त्यागराज थे। कोचीन और ट्रावणकोर मे भी संगीत को प्रोत्साहन मिला। गदर के बाद भारतीय भावना को लेकर पुनः संगीत की प्रगति हुई। बंगाल ने इस प्रगति मे बड़ा योग दिया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'रवीन्द्र संगीत' की स्थापना की। २० वी शताब्दी मे कलकत्ता मे संगीत-समाज, बम्बई मे ज्ञानोत्तेजक मण्डल, लाहौर से गन्धर्व महा-विद्यालय मण्डल तथा पूना, बड़ौदा, इन्दौर, लखनऊ, ग्वालियर और पटना मे अनेक शालाएं स्थापित की गईं। संगीत में नवज्योति व नव-जीवन प्रदान करने का समस्त श्रेय विष्णु दिगम्बर तथा भातखण्डे को है। इनके प्रयासों से अनेक संगीत-सम्मेलन हुए, जिससे भारत के विभिन्न भागों से संगीतज्ञ एकत्रित होकर कला का आदान-प्रदान करते थे। शिक्षा के पाठ्य-क्रम में भी संगीत को उच्च स्थान मिलने लगा। रेडियो और फिल्मकारों ने भी संगीत की वृद्धि हुई। शिक्षित वर्ग तथा उच्च वर्ग ने इस कला को अपनाकर पुनः इसे गिरने से उठाया।

भारतीय नृत्य-कला मे भारतनाट्यम्, कथाकली, मणिपुरी और कत्थक अधिक प्रचलित हैं। रुक्मिणीदेवी और रामगोपाल भारतनाट्यम् के प्रसिद्ध नृत्यकार है। कथाकली कठिन कला है और अधिकतर पुरुष ही इस नृत्य को अपनाते है, किन्तु सासिया, मोहिनी और सिमकी ने इस नृत्य मे बहुत प्रसिद्धि पाई है। भारत के प्रसिद्ध नृत्यकार उदयशंकर हैं। इन्होंने भारतीय नृत्य में नवीनता प्रदान की है। लोक-नृत्य द्वारा जन-जीवन का प्रदर्शन तथा नृत्य-कला की शिक्षा के लिए संस्थाओं की स्थापना उनकी प्रमुख देन है।

नाट्यकला और रङ्ग-मंच मे भी कुछ प्रगति हुई है। अब नवीन ढंग के नाटक-मण्डल और नाटक-गृह स्थापित किये जा रहे हैं। फिर भी संगीत, नृत्य और नाट्यकला को उच्चतर प्राप्त करने के लिए अधिक प्रोत्साहन की आवश्यकता है। भारतीय ललित कला अकादमी तथा विभिन्न राज्यों की ललित कला अकादमी इस ओर प्रयत्न कर रही है।

कुछ विशेषतायें

भारतीय कलाओं ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के श्रेष्ठ आदर्श निर्माण किये हैं, जिनसे भारत के पड़ौसी देश भी बिना प्रभावित हुए न रह सके। भारतीय कलाओं में जो एक निरन्तरता (Continuity) का क्रम चला है, वह हमारी एक सांस्कृतिक देन है। ललित कलाओं के क्रमिक विकास एवं मुख्य विलक्षणताओं का परिचय आप इन पृष्ठों में प्राप्त कर चुके हैं, अब हम सामूहिक रूप से भारतीय कलाओं की विशेषताओं का वर्णन करेंगे।

१. भारतीय कलाओं में सौंदर्य और प्रतिबन्ध की विलक्षणता है। सभी कलायें स्वच्छन्द रूप से रूढ़िवाद के घातक बोझ से मुक्त हैं।

२. कलाओं के क्षेत्र में कुशल कलाकारों ने जो कुछ चित्रित व वर्णित किया है वे उसके स्वाभाविकता, यथार्थवादिता एवं सन्तुलन से ओत-प्रोत हैं।

३ भारतीय कलाओं की विशेषता एक यह भी रही है कि कलाकारोंने सुन्दर कला पूर्ण आकृतियों का भारतीय संस्कृति के अनुरूप सृजन कर उन्हें सर्वांग जीवन की आवश्यकताओं के लिये उपयुक्त किया, जिससे स्वर्णीय सामंजस्य और अनुरूपता प्राप्त हुई। कलाओं में चित्रित सांस्कृतिक और प्राकृतिक सौन्दर्य की विशाल भावना ने मानव जीवन को प्रेरणा तथा उत्साहन प्रदान किया।

४ प्राचीन काल की कलाओं ने गहन धार्मिक और आध्यात्मिक आदर्श प्रस्तुत कर, राष्ट्र जीवन को विघटित होने से बचाया और राष्ट्र का दैनिक जीवन सबल बना।

५. कलाओं का टेकनीक या प्रणाली सादगी और अभिव्यंजना का आनन्द है। इसी का परिणाम यह है कि ऊँचे से ऊँचे विचार भाव और मुद्रायें सरल रूप में अंकित कर दिये गये हैं।

६ कलाकारों ने सदैव ही लावण्य और लालित्य का मर्यादित प्रयोग कर कलाओं को पथभ्रष्ट और अनुपयोगी नहीं होने दिया।

७. भारतीय कलाओं पर विदेशी प्रभाव अवश्य पड़ा है, किन्तु कालान्तर में विदेशी तत्व लुप्त हुए और उसका विशुद्ध भारतीय स्वरूप ही सामने आया, जिन्हें मध्य एशिया, चीन तथा पूर्वीय देशों में अनुकूल वातावरण मिला और विदेशी

जातियों ने जो धर्म, साहित्य, संस्कृति के विषय में भारत से प्रेरणा के लिए मुंह ताकती थीं, उनका बड़े भाव से स्वागत किया।

८. हमारी ललित कलाओं में मौलिक लावण्य और पार्थिव सौन्दर्य के साथ-साथ आन्तरिक शांति, ओज की, अभिव्यक्ति के आनन्द की अनोखी झलक है, जिसमें प्रौढ़ परिकल्पना का बहुत ही परिष्कृत रूप दिखाई पड़ता है।

६. ये सुन्दर आकर्षक कलायें सादगी से भरे स्पृह सामाजिक जीवन के चित्र प्रस्तुत करती हैं, जिनसे उत्कृष्ट आदर्शवाद और सौन्दर्य भावना का उत्कृष्ट समन्वय प्रतिलक्षित होता है।

१०. भारतीय कलाओं में चित्ताकर्षक, प्रभावोत्पादक दृश्यों, रूप रेखाओं की सुकुमारता, रसों की प्रतिमा और चमक तथा उच्च कोटि के भावों का समावेश है।

११. देश में अनेक शैलियों का सृजन हुआ, जिनके द्वारा कलाओं को निरंतर नया रूप मिलता गया।

इस प्रकार कला, साहित्य, व अन्य संस्थायें संस्कृति के कार्य हैं। कलाओं के साथ तत्सम्बन्धी संस्थायें सांस्कृतिक प्रेरणा के साधन और अभिव्यक्ति बन जाते हैं जो सांस्कृतिक जीवन को परिछिन्न और मूर्त रूप देते रहते हैं।

स्वतन्त्र भारत में कला, साहित्य तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में पुनर्जागरण हो रहा है। विभिन्न अक[illegible] ो की स्थापना इस और ठोस कदम है। आशा है कि निकट भविष्य में कला [illegible] संस्कृति के क्षेत्र में भारत अपना खोया हुआ स्थान प्राप्त कर सकेगा।

योग्यता प्रश्न

1. Write an essay on (निबन्ध लिखिये)

   (i) Indian Arts.
   (भारतीय कलायें)

   (ii) Indian Literature.
   (भारतीय साहित्य)

   (iii) Place of Arts in our life.
   (हमारे जीवन में कलाओं का स्थान)

   (iv) Salient features of Indian Arts.
   (भारतीय कलाओं की विशेषतायें)

2. Write short notes on (Not more than 100 words)

   (i) Indian Languages. (भारतीय भाषायें)

(ii) Languages under Dravid family.
(द्रविड़ परिवार के अन्तर्गत भाषायें)

(iii) Contribution of Urdu Literature. (उर्दू साहित्य क

(iv) Our achievements in the field of Arts.
(कलाओं के क्षेत्र में हमारी उपलब्धियां)

(v) Art during Mughal Period. (मुग़ल कालीन कला

(vi) Avanindra Nath (अवनीन्द्र नाथ)

(vi) Nand Lal Bose (नन्दलाल बोस)

(viii) Kadambari (कादम्बरी)

(ix) Abhigyan Shakuntalam (अभिज्ञान शाकुन्तलम्)

3. Objective Type Questions. (नवीन शैली के प्रश्न)

(i) Name a few Indian Arts. Is literature an Art
कुछ भारतीय कलाओं के नाम दीजिये । क्या साहित्य ए

(ii) How do these arts iufluence our life ?
हमारे जीवन को ये कलायें कैसे प्रभावित करती हैं ?

(iii) Describe the progress made by Art during mod
आधुनिक काल में भारतीय कलाओं द्वारा की गई प्रगति
कीजिये ।

(iv) Give a brief description of Sculpture in I
भारत में मूर्तिकला का वर्णन कीजिये ।

4. Answer is 'Yes' or 'No'

निम्नलिखित का उत्तर 'हां' या 'न' में दीजिये :—

(i) Indian Arts occupy a special place in the world
भारतीय कलायें विश्व कलाओं में एक विशिष्ट स्थान रखती

(ii) Kadambari was written by Kalidas